

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

**TEXT CROSS
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180615

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No.

H 83/K454

Accession No.

H 2645.

Author

रवांजकर, V.S.

Title

हराथपा 1957

This book should be returned on or before the date last marked below.

खांडेकर-साहित्य : १०

आत्माराम एन्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

हरा चं पा

वि. स. खांडेकर

मूल्य छः रुपये

प्रकाशक :

रा. ज. देशमुख

देशमुख आणि कंपनी

२२ कसबा, पूना २

• • •

अनुवादक :

रा. र. सर्वटे

• • •

सब हक स्वाधीन

• • •

मुखपृष्ठ :

दलाल आर्ट स्टूडिओ

बम्बई

• • •

मुद्रक :

शि. गो. भावे, मैनेजिंग डाइरेक्टर

मुद्रण-स्थल :

विमा मुद्रक और प्रकाशक लि. का

विमा छापखाना, सतारा

• • •



मराठी

प्रथम संस्करण	१९३८
द्वितीय संस्करण	१९३९
तृतीय संस्करण	१९४४
चतुर्थ संस्करण	१९४९

गुजराती

प्रथम संस्करण	१९४७
द्वितीय संस्करण	१९५६

तामिल

प्रथम संस्करण	१९५४
---------------	------

हिन्दी

प्रथम संस्करण	१९५७
---------------	------

ती. सो.
बं बा का म णे री क र
इनको

पत्र और फूल

‘वेल प्लेड, तात्यासाहब!’— प्रोफेसर गरुड जोरसे चिल्लाये। छोटे बालककी तरह तात्यासाहब खेलमें खो गये थे।

परंतु गरुडसाहबके प्रोत्साहनका तात्यासाहब कालेलकरके आजके खेलपर कुछ भी परिणाम न हुआ। ऐसे टेनिस चैम्पियन—यानी ‘वृक्षद्रवकंदुकक्रीडनकुशल’—की हैसियतसे, उनकी बड़ी ख्याति थी। परंतु आज प्रतिस्पर्धीके नाते, सामने खड़ी हुई तरुणी उन्हें धड़ाधड़ हरा रही थी। वैसे देखा जाय तो जब वे टेनिस खेलना शुरू करते तब उनकी समाधि लग जाया करती और वह सबह धूपके कारण और शामको अँधेरा हो जानेके कारण ही भंग हुआ करती थी। लेकिन आज वे रह-रहकर कलाईपर बँधी अपनी घड़ीकी ओर उत्सुकतासे देख रहे थे। ठीक छः बजे वे सामनेवाली लड़कीसे बोले, — ‘क्षमा कीजिये, मुझे एक ज़रूरी काम है।’

उस तरुणीने हँसते हुए उनकी क्षमा स्वीकार कर ली। वह इस खुशीमें ही खोयी हुई थी कि मैंने आज तात्यासाहब जैसे चोटीके खिलाड़ीको चुटकीमें हरा दिया।

तात्यासाहबके कोट पहनते हुए गरुडसाहब उनके पास जाकर मन्द स्वरमें बोले, — ‘स्त्री-प्राश्निक तो जैसे व्यापकी रग-रगमें घिरे गया है तात्यासाहब।’

तात्यासाहबने किंचित क्रोधसे उनकी ओर देखा। परंतु उनके माथेके तीन अस्पष्ट ब्रलोसे डर जानेके लिये गरुडसाहब कच्चे गुरुके चेले थोड़े ही थे! उनकी कॉलेजकी लोकप्रियता उनके गहन ज्ञानकी तरह ही उनके उथले विनोदपर भी अवलंबित थी। क्लबमें वे शामको नियमित रूपसे आया करते। किन्तु खेलनेके लिये नहीं, बल्कि दूसरोंको खिलानेके लिये। तात्यासाहब कोटके बटन लगा रहे थे, तभी गरुडसाहबने कहा, - 'क्या, फ्राइड पढ़ा है आपने, तात्यासाहब?'

आजकलके अखबारोंकी धुलेंडीमें फ्राइडका नाम तात्यासाहबके कानोंपरसे निकल गया था। परंतु वे विश्वासपूर्वक यह नहीं जानते थे कि उसने किसी नये तारेकी खोज की है, अथवा किसी नये यंत्रका अन्वेषण किया है।

गरुड-पुराण आरंभ हुआ, - 'स्त्री-पुरुषोंका आकर्षण, जवसे वे जन्म लेते हैं, तबसे शुरू हो जाता है —'

अब तात्यासाहबसे बिलकुल न रहा गया। वे चिड़चिड़े स्वरमें बोले, - 'और उनके मरनेपर वह समाप्त हो जाता है —'

'बिलकुल स्पष्ट ही है यह!' - अपने चढ़ते हुए हास्यसे पड़ोसके तिमंजले बँगलेको लज्जित करते हुए गरुडसाहबने कहा, 'वरना आप जैसे साठके नज़दीक पहुँचे हुए मनुष्य एक तरुणीके साथ खेलनेका अवसर आते ही, इस तरह क्यों गड़बड़ा जाते हैं? इस पृथ्वीमें रैकिटधारी अर्जुनके नामसे आपकी बड़ी ख्याति है! परंतु ज़रा माफ-सुथरी दोखनेवाली उम लड़कीके सामने खड़े होते ही क्या स्थिति हो गयी थी आपकी, तात्यासाहब? 'गांडीवं संसते हस्तात् त्वक्चैव परिदह्यते। वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।''

फ्राइडसे भगवान श्रीकृष्णतक पहुँचे हुए गरुडजीने अब अट्टहास आरंभ कर दिया।

तात्यासाहब अपनी कारकी ओर जाते हुए बोले, - 'कॉलेजमें क्या यही वाहियात बातें पढ़ाते हो, प्रोफ़ेसरसाहब?'

तुरंत ही उनके मनमें विचार आया - सुलभा जब फर्स्ट इयरमें थी, तब अपने पत्रोंमें इसी गरुडकी कितनी प्रशंसा किया करती थी! उन्हें उसके एक पत्रका स्मरण हो आया —

'तात्या, प्रोफ़ेसर गरुड इतना सुंदर पढ़ाते हैं कि क्या कहूँ! और श्लेष भी कितना मजेदार करते हैं! एक दिन मैं अपनी पसंदका हरे चंपाका फूल केशोंमें लगाकर कक्षामें गयी थी। पढ़ाई आरंभ हुई। इधर उधर देखकर

गरुडजीने पूछा, - ' क्लसमें कोई खुफिया पुलिस है क्या ? '

पीछेसे एक लड़का चिह्नाया, - ' जी नहीं, सिर्फ मामूली पुलिसवाले ही हैं ! '

इस पर गरुडजीने बड़े विनोदसे कहा, - ' ठीक है । तुम्हें उनके हवाले कर दूंगा । ' उनकी इस चोटसे कक्षामें हँसीका सागर उमड़ उठा । इसके बाद वे बोले, - ' यहाँ अभिनव मधुमधुर सुगंधि फैली हुई है । यदि इस समय यहाँ कहीं आसपास बाण कवि होता, तो इस मोहक सुवासके कारण उसके मरिचकमें कम-से-कम चार उपमाएँ, तीन उत्प्रेक्षाएँ और एक रूपक तुरंत आ जाते । परंतु मेरे दिमागमें — '

एक लड़का बीचहीमें उठा और बोला, - ' सर, यह हरे चंपाके फूलकी सुगंध है । '

' गरुडजीने हँसते-हँसते कहा, - ' अच्छा यह बात है ? मुझे कुछ समझमें ही न आ रहा था । और समझता भी कैसे ? मैं पचासकी ओर बढ़ रहा आदमी हूँ और हरा चंपा है तरुणाईका प्रतीक । '

सारी कक्षा उनकी बात सुनकर खिल गयी । '

सुलभाके द्वारा की गयी गरुडकी यह प्रशंसा तात्यासाहबके ध्यानमें थी । इस-लिये दो-तीन साल पहले जब वे पूनामें स्थायी रूपसे रहनेके लिये आये, तब बड़े शौकसे उन्होंने गरुडसे पहचान कर ली थी । परंतु बेरके पेड़पर चढ़नेवालेको बेर मिलनेके बदले काँटे ही अधिक लगे इस प्रकार तात्यासाहबकी स्थिति हो गयी । गरुडकी बातोंमें विनोद न हो, यह बात न थी । परंतु गंदी गप्पों और स्त्री-पुरुष विषयक हँसी-मज़ाक मिश्रणसे गंदे हुए उनके विनोदको वस्त्रमें छानते छानते ग्रहण करनेमें अनेक लोगोंकी नाकमें दम आ जाता था । संभाषणके समय यदी स्त्रियाँ होतीं, तब तो गरुडसाहबकी ज़वानको लगाम लगानेके बदले उसकी धुड़-दौड़ ही शुरू हो जाती !

कारकी ओर जाते हुए तात्यासाहबके मनमें गरुड संबंधी यही विचार उठ रहे थे । उन्हें एकदम लगा - क्या, प्रत्येक मनुष्यके मनके दो पहलू होते हैं या कि बख्शोंकी तरह बातोंको भी बदलनेकी कला कुछ व्यक्तियोंको सिद्ध हुई होती है ? प्रोफेसरके दरजेके मनुष्यको —

कारकी ओर नज़र जाते ही तात्यासाहबने देखा कि उनका ड्राइवर अपनी जगहपर हाज़िर नहीं है । वे मन-ही-मन क्रोधसे बोले, - ' कहीं बैठा बीड़ी फूँक

रहा होगा !' वे कारका हॉर्न बजानेकी सोच ही रहे थे, तभी नज़दीकवाले आमके पेड़की ओटमें खड़ा हुआ विठू उन्हें दिखायी दिया। उसके साथ दूसरा भी कोई था। वह व्यक्ति मुँह मोड़कर विरुद्ध दिशामें चलता बना। तात्यासाहब उसकी पीठ देख सके। परंतु उसकी पोशाकसे तात्यासाहबने सहज-भावसे जान लिया कि वह कोई पठान है। उसका चेहरा न देखकर भी उनका मन एकदम बैचैन हो गया। मनके कोनेमें रही सामानकी तरह पड़ी हुई स्मृतियाँ एकदम उनकी दृष्टिके सम्मुख नाचने लगीं। तीन वर्ष पहलेका वेश्याकी कलका मुकद्दमा — उस समय फरार हुआ अपना कपूत मनोहर, उस मुकद्दमेके कारण विरक्त होकर अपनी खुशीसे त्याग दिया हुआ वकालतका पेशा — तात्यासाहबने अपने भटकनेवाले मनको एकदम मर्यादामें रखा। बहुत दिन पहले बार-रूममें उन्होंने एक श्लेष किया था, उसका उन्हें सहज-भावसे स्मरण हो आया।

‘पठान, साहब और कैफियतें कितनी भी देखिये — सब जगह एक ही नमूना मिलेगा।’

उन्हें विश्वास हो गया कि यह कोई दूसरा ही पठान होगा और फिर कुछ समय पहले उनके मनमें जो गड़बड़ी मच गयी थी, उसपर उन्हें स्वयं ही हँसी आयी। उन्हें लगा, मनुष्यका संतुलन ग्यो ज्ञानेपर वह ज़रासा धक्का लगनेसे ही गिर पड़ता है। टेनिस खेलनेवाली उस लड़कीको देखकर सुलभाके विषयमें अनेक विचार मेरे मनमें कुहगम मचाने लगे। इसके कारण मेरा मन हड़बड़ा गया और किसी भी तरह आज खेलमें मेरा मन ही न लग सका। ऐसी हालतमें यह पठान दिखायी दिया और पुरानी अप्रिय स्मृतियाँ जागृत हो गयीं।

विठूने कारका दरवाज़ा खोल दिया। तात्यासाहबके भीतर बैठते ही दगवाज़ा लगाकर वह अपनी जगहपर जा बैठा और उसने मोटर स्टार्ट कर दी।

तात्यासाहबने उससे एकदम पूछा, — ‘तुम्हारे पास यह पठान कैसे आया था, विठू?’

‘कुछ नहीं, साहब यों ही चला आया था।’

‘यों ही? क्या, तुम हिंदु-मुस्लिम एकता कैसे हो, इस विषयकी चर्चा कर रहे थे?’

विठूने कोई उत्तर नहीं दिया।

तात्यासाहब अपने विनोदपर खुश होकर पीछे निकल रहे बँगलेकी ओर देख रहे थे।

‘तुमने उस पठानसे कुछ कर्ज़ी लिया है क्या?’ — उन्होंने विठूसे पूछा।

नुकड़पर कारको कुशलतासे मोड़ते हुए विठूने जवाब दिया, - 'मेरे भाईने लिया है !'

'तुम्हारा भाई तो सांगली-कोल्हापूर तरफ रहता है न ?'

'यह पठान भी तो वहींका है, साहब ! अभी कुछ दिनोंसे पूनामें आकर रहने लगा है । कहते हैं, बंबईमें उसका बड़ा रोज़गार है !'

उस वाक्यपर तात्यासाहबको बड़ी विचित्र हँसी आयी । लेकिन मोटर रुकनेकी आवाज़में विठू उसे न सुन सका ।

• • •

तात्यासाहब कपड़े उतारकर खूँटीपर टँग रहे थे; तभी मौसीजी द्वारमें आकर खड़ी हो गयीं । जाने क्या, मौसीकी देखते तो तात्यासाहबको अपने कालेली गाँवके घरके खलिहानमें लगे तुलसीके पौधेका स्मरण हो आता था । वह पौधा बहुत बड़ा नहीं है, उसमें फल-फूल भी नहीं हैं - कुछ भी नहीं है । उसका सारा वैभव यदि कुछ है, तो वह उसकी मंजरियाँ हैं । फिर भी वृंदावनमें लगी उस तुलसीकी ओर दृष्टि जाते ही मन एकदम उल्लसित हो जाया करता था । मौसीजीके चेहरेकी शिकनें उनके हँस देनेके कारण जाने कहाँ लुप्त हो जातीं ? और उनकी भावुक आँखें - जैसे सायंकालके समय तुलसी वृंदावनके पास रखे हुए नीरांजन ही हो !

'आया क्या ताई' का उत्तर ?'

'मेलसे निकलना है इसलिये शायद उसने उत्तर न भेजा हो ।'

'परंतु ज़रूर आयेगी न ?'

'लगता है, लाइली नातिनके लिये तुमने कोई खास पकवान बना रखा है आज ?'

'बहुत बड़ा पकवान है जो कभी किसीने भी न बनाया होगा ।'

'यदि इतना नया पकवान होगा तो हम उसे तुम्हारे नामसे अखबारोंमें छपवा देंगे । ज़रा हम भी तो सुनें कि सुलूके लिये क्या क्या तैयारियाँ हो रही हैं !'

'कढ़ी-लिब^१ मँगवा रही हूँ । उसे खट्टा सार बहुत पसंद है न ?'

१ लडकीके लिये आदरसूचक शब्द ।

२ नीमकी जातिका एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ स्वादके लिये कढ़ा, दाल या सारमें डाली जाती हैं ।

तात्यासाहबको हँसी आयी। परंतु उसे छिपानेके लिये वे सामने दीवालपर लगे चौखटवाले मानपत्रकी ओर देखने लगे। कालत छोड़ते वक्त उनके व्यवसायी बन्धुओंने उन्हें यह मानपत्र भेंट किया था।

मौसीने आगे कहा,— ‘और हरा चंपा करीब ही है यहाँसे। देखती हूँ उसके फूल भी मिल सकते हैं या नहीं? बचपनसे ब्रिटिया पागल है उन फूलोंके लिये?’

मौसी भीतर चली गयीं।

तात्यासाहबको इस समय यह बात पूर्ण रूपसे जँच गयी, कि लड़के कितने भी बड़े हो जाये, पर स्त्रियोंको वे छोटे ही लगते हैं। सायंकालसे वे तो अपनी डाक्टरी पास हुई लड़कीके विवाहके बारेमें विचार कर रहे थे, और इधर मौसी इस फिक्रमें मशगूल थी कि अपनी मातृहीना नातिनके लिये कढ़ी-लिंब और हरे चंपक किस तरह पैदा किये जाये? वे एकदम उठे और लिखनेकी मेज़के पास जाकर सुबह आये हुए बैरिस्टर देशपांडेके पत्रको उठाकर पढ़ने लगे—

‘सादर प्रणाम,

पूनाकी ‘वसंत-व्याख्यान-माला’ में मुझे ‘स्त्री और पुरुषोंकी समता’ विषयपर भाषण देना है। भाषणके लिये यद्यपि अभी चार दिनका समय है, पर मैं कल ही मेलसे आ रहा हूँ। आपके और सुद्ध-ताईके सहवासका उतना ही अधिक लाभ होगा। जूनमें कोर्ट खुल जानेपर तो फिर घानीमें जुतना ही है! एक खुश-खबरी सुनिये। ऐसा रंग दीख रहा है कि जिस ज़मींदारीके वरासती हकके लिये मैं लड़ रहा था, वह मुझे ही मिलेगी। उसके वर्तमान मालिक तपेदिकसे बीमार हैं और जानकारोंकी राय है कि धन्वंतरी भी उतर आयें तो वे भी उन्हें नहीं बचा सकते। दूसरेके दुःख-पर हमारे सुखका अवलंबित होना तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे उचित न हो, पर हम और आप जैसे वकीलोंका यह नित्यका अनुभव है कि इस कटु सत्यपर ही दुनिया चल रही है।

पिछले साल मुझपर इतना काम पड़ा कि मैं बिल्कुल थक गया हूँ। नये वकीलका आगे बढ़ना घुड़दौड़के नये घोड़ेके जीतनेके समान होता है। काफ़ी छाती फोड़नी पड़ती है। सुलभाताईसे कहियेगा कि जानबूझकर आपके घर चार दिनके लिये रहनेको आ रहा हूँ। मुझे एक अच्छी

दवाकी जरूरत है। पर हाँ, कह दीजियेगा कि दवा मीठी होनी चाहिए !
एम.बी.बी.एस.की परीक्षासे भी यह परीक्षा उन्हें कठिन मालूम होगी ! है न ?

आपका स्नेहांकित—
विजय देशपांडे'

तात्यासाहबने सुबहसे कम-से-कम दस बार पढ़ा होगा इस पत्रके मज़मूनको। पत्रको तीन-चार बार पढ़कर ही उन्होंने सुलभाको एकदम खाना हो जानेका तार दे दिया था। यह सच है कि अनुभव प्राप्त करनेके लिये वह एक बड़े अस्पतालमें काम कर रही थी। परंतु वहाँ आठ दिनकी छुट्टी मिलना मुश्किल न था। और अगर कोई कठिनाई आ ही गयी, तो कौन उसे वहाँ ज़िंदगी-भर नौकरी करनी थी ? कल विजय देशपांडेसे उसका प्यार हो गया, तो आसानीके साथ वह लाख डेढ़ लाख आमदनीवाली ज़मींदारिन हो जायेगी। ज़मींदारिनका एम. बी. बी. एस. होना, अथवा लोगोंके स्वास्थ्यके लिये प्रत्यक्ष रूपसे काम करना—दोनों बातें हर हालतमें अच्छी ही हैं। ग़रीबोंके स्वास्थ्यकी जाँच करनेवाली ज़मींदारिनको यदि महात्मा गांधी देख लें, तो सुलभाको तुरंत राम-राज्यकी सिफारिशी चिट्ठी भी मिल जायेगी।

सुबह जबसे विजयका पत्र आया था तबसे तात्यासाहब इसी मनोराजमें विहार कर रहे थे। वैसे देखा जाये तो इस विवाहके तय हो जानेमें कोई कठिनाई न थी। तात्यासाहबने अपने कुछ मुवक्किल विजयको देकर उसकी वकालतको जमा देनेमें मदद की थी। वर और वधू दोनों ही सुशिक्षित थे—निखालस एक जातिके न हों, फिर भी समान संस्कृतिके और अनुरूप—

अनुरूप कहनेके बदले तात्यासाहबका विश्वास था कि रूपका पलड़ा सुलभाकी तरफ ही झुकेगा। सुलभाके हालहीमें खींचे फोटो विजयको दिखें, इसलिये उन्होंने अपने पारिवारिक फोटोंका अलब्रम ऊपर निकालकर रख लिया था। उसे उठाकर चे सुलभाका बिलकुल नया खींचा हुआ फोटो देखने लगे। सुलभाके जन्मकी याद आते ही उनके चेहरेपर स्मितकी रेखा खिंच गयी। उस समय उन्हें थोड़े समय-तक यह सच ही न लगा था, कि उनके घर चाँद जैसी सुंदर लड़की हुई है। आज भी सुलभाके फोटोको देखते हुए उनके मनमें आश्चर्यका यह भाव आये बिना न रहा, कि क्या, यह अपनी ही सुलभा है ? वे धीरे धीरे अलब्रमके पिछले फोटो उलटाकर देखने लगे। सुलभाके उन विचित्र छाया-चित्रोंको देखते-देखते

उन्हें लगा — मनुष्य कितनी जल्दी बदल जाता है ! यौवनके उपवनमें संचार करनेवाली आजकी सुलभाकी निर्भय दृष्टि और छः-सात वर्ष पहले इस उपवनके प्रवेश-द्वारमें खड़ी हुई सुलभाकी शरमीली आँखें ! उन्होंने एकदम पिछले फोटो निकाले । छः महीनेकी सुलभाका निद्रित अवस्थामें खींचा गया फोटो, 'चल चल बेटा चल चल' कहते हुए उससे एक एक कदम चलाते हुए खींचा गया उसका फोटो ! तात्यासाहबको कुछ समय पहलेकी उम्र टेनिस कोर्टकी लड़कीका स्मरण हो आया । एकदम उनके मनमें आया — मेरो अँगुली पकड़कर चलनेको सीखी हुई सुलभा अब मेरा हाथ झटकाकर कहीं भाग तो नहीं जायेगी ? क्या ठिकाना ? उस मनोहरसे —

अन्यमनस्कतासे वे अलबमके फोटो पलटाने लगे । सुलभाके फ्रॉक पहने हुए फोटो उनकी आँखोंके सामने आये, लेकिन उन्हें देखते ही उनके माथेके तीनों बल साफ़ दिखायी देने लगे । प्रायः उन सब फोटोमें उसमें एक-दो सालसे बड़ा एक लड़का उसके साथ था । फोटोके इस लड़केकी खरगोशकी तरह भीरु आँखें देखकर उन्होंने एक साँस ली । ऐसा लगा जैसे उस साँसके जरिये उनके मनने ये मूक उद्गार निकाले हों कि इन निष्पाप आँखोंको देखकर क्या किसीको कल्पना हो सकती थी कि बड़ेपनमें यह लड़का किसीका खून कर डालेगा ।

• • •

गाड़ी आनेसे दस-पन्द्रह मिनट पहले तात्यासाहबका स्टेशनपर पहुँच जाना उनके सिद्धान्तके विरुद्ध था । कहते हैं कि दत्तात्रेयकी तरह प्रत्येक मनुष्यको जीवनमें एक-दो गुरु बनाने पड़ते हैं । नियमिततामें मंडलिक, सादगीमें गांधी, धार्मिक मामलोंमें ऐनी बेज़ांट, राजनीतिमें गोखले — इत्यादि उनके अलग अलग आदर्श थे । परंतु आज भावनाने सिद्धान्तपर हरताल पोत दी थी । उन्हें ऐसा हो गया था कि सुलभा कब आती है । प्लेटफार्मपर खड़े हुए उन्हें एक एक मिनट एक एक घंटेकी तरह लगने लगा । समय बितानेके लिये वे वहाँके बुक-स्टॉलकी ओर मुड़े । दो-चार पुस्तकें इधर उधर देखनेके बाद, एक पुस्तकने उनका ध्यान विशेष रूपसे आकृष्ट कर लिया — 'अनंगरंग' ! यह देखनेके लिये कि इस तरहकी पुस्तकोंमें आखिर रहता क्या है, उन्होंने उसे उठाकर खोला ही था — तभी उनके नज़दीक खड़ा हुआ पैजामेवाला तरुण बड़े कुत्सित ढंगसे हँस पड़ा ! तात्यासाहबको एड़ीसे चोटीतक जैसे आग लग गयी । चालीसकी उम्रमें पत्नीका देहान्त

हो जानेपर भी मैंने दूसरा विवाह न किया। सहकारियों द्वारा दिये गये मानपत्रमें उन्होंने मेरे शीलको दूध-सा धोया हुआ कहा है। और यह पैजामेवाला, नंग सिरका युवक सिर्फ मेरे इस पुस्तकको हाथमें लेते ही मुझपर शरारतसे हँसता है! ऐसी पुस्तकोंके सच्चे ग्राहक इस जैसे तरुण व्यक्ति होते हैं!

इस समय तात्यासाहबको लगने लगा कि यौवन एक बिकट पहेली है। कुछ समय पहलेकी टेनिस-कोर्टवाली वह तरुणी! - पतिसे उसने साफ कह दिया —

‘मुझे अब खेलनेकी धुन लगी है। तुम्हारी इच्छानुसार नाचनेके लिये मैं वेणीमें जेवर गूँथकर घरमें रसोई बनानेवाली कोई पुराने ढाँके औरत नहीं हूँ।’

लोगोंके सामने पतिसे भला-बुरा कहनेवाली वह तरुणी और मेरी उम्रका ख्याल न कर मुझपर शरारतसे हँसनेवाला वह तरुण — आजकी पीढ़ीके ये आसार अच्छे हैं क्या? मेरी सुलभा भी तो इसी पीढ़ीकी है! फिर —

प्लेटफार्मपर कुलियोंकी गड़बड़ी मच गयी। गाड़ीने स्टेशनके भीतर प्रवेश किया। तात्यासाहबकी आँखोंके सामनेसे एकके बाद एक डिब्बे सरक गये। परंतु उनमें सुलभा कहीं भी न दिखी। उन्होंने जनाने डिब्बेके पास जाकर देखा। यह सोचकर कि शायद सेकंड क्लाससे आयी हो, वे वहाँ भी जाकर झाँक आये। परंतु सुलभाका कहीं पता न था। निराशा और क्रोधके विचित्र मिश्रणसे उनका मन भर गया। शायद उसे छुट्टी न मिली हो — पर ज़रूरी तार पाकर क्या उस तुरंत खाना नहीं हो जाना चाहिए था? उनके मनमें आया — हो सकता है कि यहाँ लानेके लिये कुछ चीज़ें खरीदनेको वह बाज़ार गयी हो और इस खरीदमें देर लग गयी हो और मेल चूक गयी हो। डेकन क्वीनसे वह ज़रूर आ जायेगी।

स्वस्थ मनसे वे मुड़ ही रहे थे, तभी उन्हें कुछ समय पहलेका वह पैजामेवाला उद्धत तरुण उनकी ओर अँगुली दिखाता हुआ दिखायी दिया। उसके साथ दूसरा एक तरुण और था — उसी तरह पैजामा पहने हुए, और नंगा सिर, लेकिन चेहरेसे बहुत होशियार दिखनेवाला। वह साँवले रंगका था। परंतु उसकी वे तीव्र तेज-स्विनी आँखें -- तात्यासाहबके मनमें आया कि मैंने इस तरुणको पहले ज़रूर कहीं देखा है।

इसी समय वे दोनों तरुण उन्हींके पास आये। नये तरुणने उन्हें प्रणाम किया और कहा, — ‘मैं आपके बैंगलेपर ही आनेवाला था। परंतु मेरे इस मित्रने कहा कि आप स्टेशनपर ही आये हुए हैं।’

‘आप क्या चाहते हैं ?’

‘सुलतानने यह पत्र दिया है ।’

‘किसने ? सुलतानने ?’ — पत्र हाथमें लेते हुए तात्यासाहब बोले ।

‘जी हाँ ।’

‘और वह कहाँ है ?’

इस प्रश्नपर आयी हँसीको मुद्रापर न दिखाते हुए वह तरुण बोला, — ‘बंबईमें !’

‘पर यहाँ कब आ रही है वह ?’

‘कल सुबहकी गाड़ीसे मेरे वापस वहाँ जानेके बाद ।’

‘तुम्हारा उससे क्या संबंध है ?’

‘मेरी बहन बहुत बीमार है । उसीके सिरहाने बैठी हुई हैं वे !’

तात्यासाहबसे अब अपना क्रोध न रोका गया । वे चिड़चिड़े स्वरमें बोले, —

‘बहनका भाई पूनामें भटकने आता है —’

उस तरुणने शान्तिपूर्वक पूछा, — ‘यह आपने कैसे जाना कि मैं पूनामें भटकनेके लिये आया हूँ ?’

किंचित् नरम होकर तात्यासाहब बोले, — ‘परंतु यह फौज़की रोटियाँ सेंकनेका धंधा —’

‘फौज़की लड़ाई जीतनी है, तो उसके लिये रोटियाँ भी किसी न किसीको सेंकनी ही होंगी !’

परसां ही क्लबमें किसीने कहा था कि आजकल कोल्हटकर^१, गडकरी^२, अत्रे^३ आदि लोगोंका साहित्य पढ़कर, तरुण लोग यों ही एक ना एक श्लेश करते रहते हैं । उसका उदाहरण इस समय तात्यासाहबको मिल गया । बीमार बहनको छोड़कर यह तरुण पूना क्यों आया है ? एक ही रातमें पूरा हो जानेवाला क्या काम है इसका ? और सुलभा और इस तरुणका किसी भी निमित्तसे परिचय हो गया हो, पर उसकी

१ श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर : मराठीके आद्य विनोदी लेखक, नाटककार और आलोचक ।

२ राम गणेश गडकरी : मराठीके प्रतिभाशाली नाटककार और कवि ।

३ प्रल्हाद केशव अत्रे : मराठीके प्रसिद्ध नाटककार, संपादक और चित्रपट निर्माता ।

मृतप्राय बहनके सिरहाने बैठे रहनेके फंदेमें पड़नेकी सुलभाको ज़रूरत क्या थी ? सभी विचित्र प्रश्न थे ।

वे दोनों तरुण अभिवादन करके जाने लगे । तात्यासाहब सुलभाके पत्रको वहीं खोलकर पढ़नेका विचार कर रहे थे । इसी समय कुछ समय पहलेके उस तरुणको जैसे किसी बातका स्मरण हुआ और वह एकदम फिर लौट पड़ा । तात्यासाहबके हाथमें एक पुड़िया थमाते हुए बोला, — ‘सुलभाताईने मौसीको देवताकी पूजाके लिये ये फूल भेजे हैं ।’

‘क्या पगली है !’

‘हाँ, भूल ही गया था मैं ! बिल्कुल जताकर कहा था उन्होंने !’

‘कौनसे फूल भेजे हैं, पगलीने ?’

‘हरे चंपाके !’

तात्यासाहबके मुँहसे सिर्फ ‘हरा चंपा !’ शब्द ही बाहर निकले । फिर उन्हें प्रोफेसर गरुडकी हरे चंपेकी मल्लिनाथीका स्मरण हो आया, अथवा सामने खड़े तरुणके कोटमें लगे हरे चंपकको देखकर आश्चर्य हुआ, कौन जाने !

उनके मनमें विचार आया — इस तरुणको यह चंपाका फूल क्या सुलभाने दिया होगा ? यदि ऐसा हुआ हो, तो —

सुलभाका वह पत्र !

उन्हें यों ही लगाने लगा कि उस पत्रमें कोई विलक्षण मज़मून है ।



२ आँधी

तात्यासाहबने उस पत्रको घर जाकर पढ़नेका निश्चय किया। अपने मनकी इस दुर्बलतापर उन्हें थोड़ा क्रोध भी हो आया। लेकिन भयंकर बीमारीसे उठे हुए मनुष्यके पैर, खड़े होनेका प्रयत्न करते ही जिस तरह थरथर काँपने लगते हैं, उस तरह उनके मनकी दशा हो गयी थी। तीन साल पहले कल्लके एक मामलेमें फँसकर मनोहर फरार हो गया। यह सच है कि मैट्रिकके आगे उसका क्रदम कभी बढ़ा ही न था और नृत्य और संगीतके शौक्रमें ही वह नित्य मग्न रहा करता था। यह बात भी न थी कि ये शूल तात्यासाहबके हृदयमें चुभते न हों। उन्हें हमेशा लगता कि मेरा लड़का खूब पढ़े और मेरी बकालत आगे चलावे। मनोहरकी शिक्षापर उन्होंने इतना रुपया खर्च किया कि उतनेमें कोई दूसरा लड़का बैरिस्टर होकर आ जाता! बोर्डिंग, ट्यूशन, सिफारिशें—सब कुछ हो गये। लेकिन विश्व-विद्यालयकी वैतरिणीको मनोहर कभी पार न कर सका। कक्षामें पढ़ायी जानेवाली पुस्तकोंकी अपेक्षा, शहरमें लगे नाटकोंके विज्ञापनोंकी ओर ही उसका अधिक ध्यान रहा करता था। वह भी क्या करता? यदि वह यह कहता कि इतिहासकी लड़ाईयाँका वर्णन पढ़ते ही मेरे कानोंमें ग्रामोफोनके मधुर गीत गूँजने लगते हैं, तो क्या, तात्यासाहब उसका यह समर्थन सुन लेते?

कोई शिल्पकार सिर्फ़ दो ही मूर्तियाँ मन लगाकर बनावे, उस तरह तात्यासाहबका सारा जी मनोहर और सुलभापर था। सुलभा द्वारा प्राप्त किये यशसे उन्हें यह विश्वास होने लगा था, कि एक मूर्ति मध्यम दरज़ेकी निकल गयी हो, पर दूसरी निश्चित ही असाधारण निकलेगी। मनोहरपरसे उनका ध्यान बिलकुल ही उड़ गया। जब मनोहरको किसी चीज़की ज़रूरत होती, तो वह उसे मौसीके द्वारा प्राप्त कर लिया करता! मैट्रिकमें सुलभाका नंबर बहुत ऊँचा आया। वह इंटर सायन्स पहले दरज़ेमें पास हुई। मेडिकल कॉलेजमें भी वह अपनी होशियारीके लिये प्रसिद्ध रही। इस आनन्दमें तात्यासाहबका सारा पारिवारिक जीवन बीता करता। उन्हें लगता कि मेरी एक मूर्तिकी कीमत पत्थरसे भी अधिक न हो, पर दूसरी मूर्ति इतनी सुंदर होगी कि कोई उसकी कीमत ही न आँक सकेगा! परंतु जिस दिन एक वेश्याके कत्लके मामलेमें फंसकर मनोहर घर छोड़कर भाग गया, उस दिनसे तात्यासाहबकी स्पष्ट रूपसे यह कल्पना हो गयी, कि अपने आशा-मन्दिरके नीचे भूचाल होनेकी संभावना है। मनोहर उनका नाम चाहें उज्ज्वल न करें, पर उन्होंने स्वप्नमें भी यह नहीं सोचा था कि वह उसे कलंकित कर देगा। किन्तु मानवी संसारकी ऐसी ही विचित्र रचना है कि स्वप्नमें भी न दीखनेवाली बातें उसमें प्रत्यक्ष रूपसे हो जाती हैं। इस घटनाके बाद पिछले तीन सालोंतक उनके जीवनका प्रवाह मन्द गतिसे बह रहा था। मनोहरका आगे चलकर कोई पता न चला। परंतु तात्यासाहब उसके विषयमें यह कह चुके थे कि मेरे लिये वह मर गया और उसके लिये मैं मर गया। लेकिन स्वाभाविक वात्सल्यके कारण हो, या कि अपनी अधिक बढ़नामी न हो इस वजहसे हो, उन्होंने समयपर ही ऐसा प्रबंध कर दिया था जिससे शिरगाँव रियासतकी पुलिसकी बला उसके पीछे न लगे।

उस अपरिचित तरुणके द्वारा दिये गये सुलभाके पत्रको हाथमें नचाते हुए उनका क्रोधित मन तीन साल पहलेकी उस दुःखद घटनाको ही दोहरा रहा था।

विठ्ठका यही ख्याल था कि ताईसाहब बंबईसे आयेंगी, इसलिये तात्यासाहबके कारमें बैठ जानेके बाद भी वह क्षण-भर बाहर अपने ही स्थानपर थोड़ा संभ्रममें खड़ा रहा। उसने तात्यासाहबके चेहरेकी ओर देखा। उनसे कुछ पूछनेकी उसे हिम्मत न पड़ी। कुसमय रातको थोड़ा-सा द्वार खोलते ही अँधेरा दीखनेपर छोटा

लड़का धड़-से द्वार लगाकर घरमें आ जाता है। बिटू उसी तरह अपनी सीटपर जाकर बैठ गया।

सड़कपर एक तौंगवाला अपने मरियल घोड़ेको बेतहाशा पीट रहा था, एक छोटा लड़का बीचहीमें कारके सामने आ जानेसे बिटूने ज़ोरसे हॉर्न बजाया। उसकी आवाज़ विलक्षण कर्कश हो गयी। पुलके दूसरे किनारेकी नदीका पात्र मंद संधि-प्रकाशमें बिलकुल उदास दीख रहा था। परंतु इनमेंसे किसीकी भी तरफ तात्या-साहबका ध्यान न गया। ज्वरकी ग्लानिमें जिस तरह मनुष्यको अपनी आस-पासकी दुनियाका कोई ज्ञान नहीं होता, उस तरह उनकी स्थिति हो गयी थी।

कारके बंगलेके द्वारपर रुकते ही मौसीने दरवाज़ा खोला। यह देखकर कि कारसे तात्यासाहब अकेले ही उतरे हैं, मौसीने पूछा, - 'और ताई ?'

'ताई क्या अब छोटी बच्ची है ?'

मौसी तात्यासाहबकी ओर देखती ही रहीं। अभ्याससे अंधा मनुष्य भी रास्ता पहचान सकता है। मौसीकी तो सारी ज़िंदगी ही तात्यासाहबके घर बीती थी ! वे इतना ताड़ गयीं कि कोई विचित्र बात हो गयी है। उन्होंने धीरेसे फिर प्रश्न किया, - 'बीमार है क्या ताई ?'

अपने कमरेकी ओर जाते हुए तात्यासाहबने उत्तर दिया, - 'दूसरा ही कोई बीमार है !'

'दूसरा कौन ?'

'कौन है सो भगवान जाने !'

मौसीने झट आगे बढ़कर तात्यासाहबके कमरेकी बत्तीका बटन दबाया। मेज़की ओर अँगुली दिखाती हुई वे बोलीं, - 'कुछ देर पहले वह तार आया है।'

तात्यासाहब मेज़पर रखे तारपर क़रीब क़रीब झपट ही पड़े। उनके मनमें आया कि तार सुलभाका होगा और उमने रातकी गाड़ीसे आनेकी सूचना दी होगी। इस विचारसे उन्हें बड़ा आनंद हुआ और इस अभिमानकी छटा भी, कि लड़कीपर परोपकारकी सनक सवार हो गयी हो, फिर भी वह मेरी बातको टालनेवाली नहीं है, उस आनंदके साथ आँख-मिचौली खेलती हुई भाग गयी।

उन्होंने तार खोलकर देखा। तार विजय देशपांडेका था।

तात्यासाहबके गरदन ऊपर उठाते ही मौसीने पूछा, - 'क्या कहती है ताई ?'

'वह तो बात भी नहीं करना चाहती !'

‘इसका मतलब ?’

‘उसका तार नहीं है। विजय देशपांडेका है। मेलसे न आकर पैसिंजरसे आ रहे हैं वे।’

मौसीकी शान्त मुद्राकी ओर आश्चर्यसे देखते हुए तात्यासाहब बोले, — ‘ताई नहीं आयी, इसलिये क्या तुम्हें बुरा लग गया ?’

मौसीने हँसते हुए उत्तर दिया, — ‘छि, लड़के बड़े हो गये, इसलिये हम कुछ छोटे नहीं हो जाते !’

‘ताईका तो यही ख्याल है !’

‘कैसे ?’

‘एक पुड़ियामें कुछ चिज्जी भेजी है उसने तुम्हारे लिये !’

तात्यासाहबके विनोदका अर्थ मौसीकी समझमें न आ रहा था। इसी समय उनके हाथमें एक पुड़िया आयी। सिर्फ सुगंधसे ही वे जान गयीं कि उसमें हरे चम्पक हैं। आनंदसे बोलीं, — ‘ताईने भेजे हैं ये ?’

‘स्टेशनपर फूल नहीं बिका करते !’

‘बचपनसे ही लड़की बड़ी चतुर है। उसे जब कोई कुछ खानेको देता था, तो वह मेरे पास आकर कहा करती, — ‘मौसी, तुम खाओगी चिज्जी ?’

मौसी रसोईघरकी ओर चल दी। तात्यासाहबने सुलभाका पत्र खोला। प्रारंभमें ‘श्री’ नदारद थी ही। उनके मनमें आया — बचपनमें ‘श्री’ लिखनेके लिये सुलभाने कितनी हठ की थी ! मनोहर किसी भी तरह उसे लिखनेमें मदद नहीं करता था। मैं एक दिन किसी मुकद्दमेके गवाहोंको सिखा रहा था। अन्तमें वह मेरे कमरेके द्वारपर आकर रोने लगी। मैंने मुकद्दमेके सब कागज़ात एक ओर हटाकर उसे अपनी गोदमें खींच लिया। उसकी स्लेटपर ‘श्री’ लिख दिया और उसका हाथ अपने हाथमें पकड़कर उससे वह लिखवा भी दी। परंतु बचपनमें ‘श्री’ लिखनेके लिये हठ करनेवाली सुलभाको अब ‘श्री’ लिखनेकी इच्छा भी नहीं होती। मौसी बेचारी बड़ी भोली हैं ! उनके ध्यानमें ही यह नहीं आता कि नदी पर्वतके आसपास ही चक्कर नहीं काटती रहती। किंतु वह कई मोड़ें लेती हुई अन्तमें किसी दूरके सागरमें जाकर मिल जाती है !

नदीकी यह कल्पना तात्यासाहबके मनमें सहज-भावसे आ गयी थी। परंतु

सुलभाके पत्रके मज़मूनपर दृष्टि डालते ही उन्हें लगा कि वह विलकुल ठीक थी।

उसने लिखा था —

‘तात्या, आप मुझपर बहुत बिगड़ गये होंगे। है न ? यदि हवाई जहाज़ होता तो मैं खुद ही आकर आपको तसल्ली दे जाती। परंतु एक रोगी हाथमें ले लिया है। उसके बिस्तरके पाससे उठ नहीं सकती। उसके सिर-हाने बैठे रहनेकी ज़रूरत है !

यह सब हुआ भी बड़े विलक्षण ढंगसे। आपका तार मिलते ही मैंने छुट्टी छी दरखास्त दी। छुट्टी मिल गयी। जो चीज़ें घर लानेके लिये खरीदनी थीं उन्हें खरीद लिया और बहुत दिनोंसे चान्द्राकी एक महेलीके घर जानेको रह गया था उसके घर गयी। उसके घर हरे चंपाका पेड़ था — फूलोंसे लदा हुआ। वहाँ मैंने बहुतसे फूल तोड़े। मौसीके देवताके पूजनके लिये भी एक पुड़िया बना ली। वापस लौटते समय गाड़ीमें बड़ी भीड़ थी। मैं इस मनोराजमें खोयी बैठी हुई थी कि आज शामको पूना पहुँचनेपर मेरा वचन लौट आयेगा। और सच कहती हूँ, तात्या, जब मुझे मौसी दीख जाती है, तो मुझे लगता है कि मैं कितनी नन्ही हो गयी हूँ ! उस समय प्रश्न, परीक्षा, पुस्तकें सब कुछ एकदम भूल जाती हूँ मैं। माँकी बीमारीके समयकी खीरकी स्मृति मौसी अभीतक कहती हैं ! मौसीने कहा था कि खीर खानेसे माँकी ज़िंदगी बढ़ती है और फिर पसंद न होते हुए भी मैं बहुत खीर खाया करती थी — और मनोहर भैया — क्या खानेसे पिताकी ज़िंदगी बढ़ती है, यह किसीने न बताया ! नहीं तो उसे भी रोज़ खानेका नियम बना लेती मैं !’

इस वाक्यको पढ़ते समय तात्यासाहबके मनमें आया कि मौसी सुलभाको जो चतुर कहती हैं, कह विलकुल सच है। पत्तोंके भीतर छिपे हुए फूलकी सुगंधसे मन उल्लसित हो जावे, उस तरह इस विनोद-पूर्ण वाक्यके पीछे उनके प्रति सुलभाका जो स्नेह छिपा हुआ था, उसे देखकर उनका मन प्रसन्न हो गया। वे आगे पढ़ने लगे —

‘यह क्या लिख रही हूँ मैं पगलीकी तरह ! इसे यदि कोई पढ़ ले, तो उसे यह शक होगा कि एम. बी. बी. एस. की परीक्षामें, मेरे बदले किसी दूसरी ही लड़कीने मेरे पेपर लिखे होंगे।

गाड़ीमें दरवाज़ेके पास ही जैसे तैसे मुझे थोड़ी-सी जगह मिल गयी थी। कल विजयसे मेरी भेट होगी, इस साल उन्होंने जो मुकद्दमें जीते होंगे उनके विषयकी मज़ेदार बातें मुझे सुननेको मिलेंगी, टेकड़ीपर चुप्पी साधकर हवा खानेकी सज़ासे बरी रहूँगी - इस तरहकी एक नहीं, दो नहीं, बल्की अनेक कल्पनाएँ मेरे मनमें नाच रही थीं। इसी समय दादर आया। भीड़मेंसे कौन कौन भीतर घुसे, यह मैंने देखा तक नहीं। एक पैजामे-वाला तरुण मेरी तरफ पीठ किये खड़ा हुआ था। पीछेसे वह ठीक विजयकी तरह लगा रहा था। मेरे मनमें विचार आया - चेहरेसे भी मनुष्य एक दूसरेसे मिलते-जुलते दीखते हैं, फिर यदि पृष्ठ-भागसे भी वे मिलते-जुलते दिखें, तो आश्चर्य क्या है ?

लेकिन मैं इस तरह देख रही थी तभी उस तरुणने एकदम पीछे मुड़कर मेरी ओर देखा। यह देखते ही, कि मैं उसे देख रही हूँ, वह बोला, - 'माफ़ कीजिये। हरे चम्पाकी सुगंध आयी इसलिये मैंने पीछे मुड़कर देखा !'

उसकी क्षमा याचनामें मनका कितना बड़प्पन था। फिर यह देखनेकी वृत्ति कि समीप बैठी हुई स्त्री कैसी दीखती है, उसकी दृष्टिमें कहाँ से दिखायी देगी ? मैंने उससे तुरंत ही कहा, - 'लगता है आप किसी पत्रके संपादक हैं शायद !'

मेरे प्रश्नका रुख समझमें न आनेके कारण वह मेरी ओर देखता रहा। मैंने हँसते हुए कहा, - 'इस तरह बार बार माफी क्या माँगते हैं आप ?'
'पर —'

'पर क्या ? बचपनके मित्रको अपनी मित्रानीकी ओर देखनेमें क्या हर्ज़ ?' वह एकदम चौंक पड़ा। मैंने उसे तुरंत पहचान लिया था। यह बात ज़रूर थी कि मैं उसे आठ-दस सालके बाद देख रही थी। परंतु उसमें फर्क सिर्फ़ इतना ही हुआ है कि उसकी दृष्टिमें कठोरता आ गयी है !

मेरी ओर ध्यानसे देखकर वह बोला, - 'सुलभा ?'

मैंने उत्तर दिया, - 'हाँ, सुलभा कालेलकर ।'

'एम. बी. बी. एस.' - वह हँसकर बोला।

'वाह, आपको छिप्रियाँ भी याद हैं ? क्या, सी. आइ. डी. में हैं आप ?'

वह सिर्फ़ हँसा। वह अपनी बीमार बहनके लिये गिरगाँवसे अपने

परिचयके एक डॉक्टरको लाने जा रहा था। मुझसे बिलकुल न रहा गया। मैंने उससे कहा, — ‘क्या, आपको मेरी डिग्रियाँ ‘बोगस’ माहूम होती हैं?’

‘इसका मतलब?’

‘आपके सामने एक डॉक्टरनी उपस्थित होते हुए आप एक डॉक्टरको लाने जा रहे हैं। स्त्री-जातिका कितना बड़ा अपमान है यह! एक बढ़िया नाटक हो जायेगा इस विषयपर!’

बहुत सालोंके बाद वह मिला था। इसलिये हँसी-मज़ाकसे मैंने उससे खूब दिल खोलकर बातें कीं। अन्तमें ग्रैंट रोडपर उतरकर हम फिर परेल लौटे।

रास्तेमें मैंने उससे कहा, — ‘तुमने आखिर मुझे नहीं पहचाना। कहते हैं कि पुरुष चंचल होते हैं, सो इसे झूठ नहीं मानना चाहिए। क्यों?’

उसने हँसते हुए उत्तर दिया, — ‘चंचल कोन है यह तुम्हीं तय करो। मुझमें कोई फर्क नहीं हुआ है, तभी तो तुमने मुझे पहचान लिया। परंतु तुम इतनी बदल गयी हो अब!’

मैंने सोचा था कि उसकी बहनकी जाँच करके और उसे दवा देनेके बाद लौटकर मेल पकड़ लूँगी! परंतु मनुष्यके इरादोंका घास-पात संयोगकी आँधीमें जाने कहाँके कहाँ उड़ जाता है! उसकी बहनकी हालत बहुत खराब है। विशेष चिन्ताकी बात यह है कि उसका ‘हार्ट’ कब फेल हो जाये, इसका कोई ठिकाना नहीं। बेचारीका पति मिलमें गया है, बाल-बच्चे पड़ोसीके घर खेल रहे हैं। भाईको किसी आवश्यक कार्यवश आज पूना जाना है। मैंने जब उससे उसके कामके विषयमें पूछा, तो बोला, — ‘सी. आइ. डी. के लोग क्या कभी अपने काम बताते हैं?’

बड़ी भीतरी गाँठका हो गया हुआ दीखता है वह! बचपनमें, क्रिकेट-में रन कितने बनाये, किस मास्टरने किसे जानबूझकर ज्यादा नंबर दिये, यह सब कुछ मुझे बता दिया करता था। क्षण-भर मनमें मुझे क्रोध भी हो आया। लगा, जब वह यह बतानेके लिये तैयार नहीं है कि पूनामें कौनसा उसका ज़रूरी काम है, तो फिर मैं भी क्यों अपना जाना रोककर यहाँ उसकी बहनके सिरहाने बैठी रहूँ? लेकिन दया तो हमारे व्यवसायका ध्येय है। इसलिये कल पूनासे उसके लौटतेतक उसकी बहनकी सेवा-शुश्रूषा करनेका मैंने तय किया। इन्जेक्शन देनेके कारण उसकी बहनको गहरी

नींद लगी है और यह किसी दोस्तसे मिलने कहीं बाहर चला गया है। आप यदि स्टेशनपर न मिले, फिर भी वह इस पत्रको आपके बँगलेपर जाकर दे आयेगा।

लिखना तो बहुत थोड़ा चाहती थी, पर कितना लंबा पत्र लिख डाला मैंने ! और वह भी ऐसी दशामें जब कि पास ही बिस्तर पड़ा रोगी मौतकी घड़ियाँ गिन रहा है ! एक आख्यायिका है कि नेपोलियन समर-भूमिपर रेखा-गणितके प्रश्न हल किया करता था। आपकी सुलू भी नेपोलियन होगी, तात्या ! अरे, पर यह उपमा गलत हो गयी। नेपोलियनको अन्तमें एक वीरान द्वीपमें अपनी ज़िंदगी बितानी पड़ी थी ! सच तो यह है कि डॉक्टरकीको इस उपमाके रास्ते ही न जाना चाहिए।

जब विजयवाबू मुझे वहाँ नहीं देखेंगे, तो उनका बड़ा मनोभंग होगा। इंग्लैंडमें इतना रहकर आये हैं ! फिर भी आपकी टेनिसके पक्के दुश्मन हैं। मेरे आतेतक उन्हें घूमने अकेला ही जाना होगा। उनसे कह दीजियेगा कि आनेपर ब्याजसहित यह कर्ज़ा चुका दूँगी ! अब पत्र पूरा कर ही देती हूँ। श्रद्धेय मौसीजीको प्रणाम। उनसे कह दीजिये, कल ज़रूर ही आ रही हूँ।

आपकी —

सुलभा

पुनश्च : पत्र दोबारा पढ़कर देखा और मुझे अपने आपपर हँसी आयी। सारी बात ऐसी हो गयी जैसे रामके बिना रामायण ! मैंने अपने पत्रमें यह कहीं लिखा ही नहीं है कि वह कौन है ? शिरगाँवमें हमारे घर एक नौकरानी थी। उसके भांजेकी आपको याद है क्या ? वही हज़रत मिले थे मुझे आज !

सुलभा'

तात्यासाहबने स्टेशनपर जिस तरुणको देखा था, उसकी मूर्तिको स्मरण करनेका प्रयत्न किया। परंतु किसीभी तरह वह उनकी आँखोंके सामने खड़ा नहीं होता था। लेकिन अब उन्हें इस बातकी कल्पना ज़रूर हो गयी कि, उन्हें यह क्यों लगा, कि उसको उन्होंने पहले कहीं देखा था। हमारा मनोहर पहली बार मैट्रिकमें फेल हुआ और उसी साल यह लड़का—हमारी नौकरानीका भांजा पहले नंबरमें पास

हुआ और उसे जगन्नाथ शंकरसेठ स्कॉलरशिप मिली। उस दिन मुझे दैवके खेल-पर विलक्षण क्रोध हो आया था। क्या, वही खेल दैव अब फिर खेलेगा? सुलभाको तुरंत चली आनेके लिये मैंने तार दे दिया और आठ-दस सालसे लापता हुए इस लड़केसे उसकी भेंट क्या हो जाती है? सुलभाके बचपनमें तात्यासाहब थिऑसफीपर जोरशोरसे भाषण दिया करते थे। जब सुलभा हाइ स्कूलमें पढ़ती थी उस समय अपने पिताजीकी इस विद्वत्तापर उसे कितना अभिमान था! परंतु उस समय तात्यासाहबने यह कभी नहीं सोचा था कि जिस विश्व बंधुत्वके तत्त्वको मैं अपने लड़कोंके गले उतार रहा हूँ उसे सुलभा इस रीतिसे पालन करेगी!

यह सोचकर कि सुलभाका आना आखिर एक दिनके लिये ही टला है, तो इसमें मनको उदास करनेकी क्या ज़रूरत है, तात्यासाहब भोजन करनेके लिये उठे। लेकिन देवघरसे ओर ही घंटेकी मधुर ध्वनि सुनकर, रसोईघरके बदले वे देवघरकी ओर मुड़ पड़े। द्वारमें खड़े होकर वे देखने लगे। सुलभा द्राग भेजे गये फूल देवताओंकी मूर्तियोंपर सुशोभित हो रहे थे। उनकी सुगंधमें कपूर और अगरबत्तीकी सुगंध मिल जानेके कारण देवघर किसी पुष्प-गुच्छकी तरह सुगंधित प्रतीत हो रहा था।

भगवानके सामने टिका हुआ मौसीका मस्तक ऊपर उठा और वे गद्गद स्वरमें बोली,—‘मेरे दोनों बच्चोंको सुखी रखना, भगवान!’

मौसीकी उस प्रार्थनासे तात्यासाहबका मन हिल गया। मनोहरका मैं कभी नाम तक नहीं लेता। आज सुलभा नहीं आयी इसलिये मैं इतना नाराज़ हो गया। परंतु मौसी—मौसीके मनमें निरंतर चाँदनी ही खुली हुई है। उसकी यह इच्छा है कि मनोहर और सुलभा जहाँ हों वहाँ सुखी रहें! आठ वर्षकी उम्रमें ही विधवा हुई मौसीको मनःशान्ति प्राप्त हो सकी। और मुझे? संपत्ति, संतति, कीर्ति—किसीमें भी कोई कमी न होते हुए मेरे मनको कभी शान्ति न मिली। सुख किसमें है? स्वामित्वकी कल्पनामें अथवा सेवाकी भावनामें?

यह देखकर कि मौसी उठ रही हैं, तात्यासाहब दबे पाँव रसोईघरकी ओर चल दिये। उन्हें मौसीकी देव-पूजा छोटे बच्चेकी नींदकी तरह लगी। रसोईघरमें पांडुरंग चूल्हेके पास ‘नव बहर येई लतिकांना’^१ गीत गुनगुनानेमें निमग्न हो गया था।

१ ‘नयी बहार आती है बेलोंमें’।

भोजनके बाद विठ्ठोको सुबह सात बजे स्टेशनपर जानेकी याद दिलाकर तात्या-साहब अपने कमरेमें आकर पलंगपर लेट गये। परंतु 'टाइम्स'में प्रकाशित टेनिस संबंधी खबरोंमें अथवा 'How To Be Young In Old Age' नामक पुस्तकमें—जिसे उन्होंने कल ही खरीदा था—किसीमें भी उनका मन नहीं लगता था। वे आँखें मूँदकर स्वस्थ पड़े रहे। स्टेशनपर उन्हें जो तरुण मिला था उसका नाम याद करनेकी उन्होंने कोशिश की। परंतु किसी भी तरह वह उन्हें याद नहीं आ रहा था। एक बार उनके मनमें यह भी आया कि जाकर मौसीसे पूछ लूँ। परंतु इस विचारपर उन्हें अपने आपपर ही हँसी आयी। हर रोज़ व्यवहारमें हमें क्या कम लोग मिला करते हैं? उनके बारेमें कहाँ हम पूछताछ करते रहते हैं? पड़े-पड़े उन्हें अधिक बेचैनी मान्द्रूम होने लगी, इसलिये खिड़की खोलकर वे बाहर देखने लगे। अँधेरा पाख होनेके कारण बाहर अँधेरा था। उस अँधेरेमेंसे किसीके द्वारा लगाये गये ग्रामोफोनके गीतके मधुर स्वर उनके कानोंमें पड़े।

‘झोक तोल तोल तोल ग

आडाचें पाणि लई खोल ग’^२

नाद-माधुर्यके कारण क्षण-भरके लिये तात्यासाहब अपने मनकी वेदनाको भूल गये। पर दूसरे ही क्षण उन मधुर स्वरोंने उन्हें मनोहरके मीठे गानेकी याद दिला दी। खिड़की बन्द करके वे फिरसे पलंगपर आकर लेट गये।

उनकी झपकी लग गयी। बीच-बीचमें उन्हें लगता कि मौसी द्वारा पढ़ा जा रहा 'शिवलीलामृत' उन्हें सुनायी पड़ रहा है। फिर उन्हें एकदम एक भिन्न ही स्वप्न दिखायी देने लगा। एक सुंदर तीन मजला बँगला! पर एकदम वह उलटा हो गया। उसकी नींवके पत्थर एकके ऊपर एक खड़े होने लगे। सबसे ऊपरवाले पत्थरकी ओर उनकी नज़र गयी। बात-की-बातमें उस पत्थरकी मूर्ति बन गयी। वह मूर्ति—करीब तीस साल बीत चुके थे, पर उस स्त्रीकी वह करुण दृष्टि तात्या-साहब नहीं भूले थे। उनकी वकालत ठीक तरहसे नहीं जम पायी थी उससे पहलेकी घटना है। वे एक कलके मुकद्दमेकी पैरवी कर रहे थे। वे जान चुके थे कि मुकद्दमा जीतना असंभव है। अभियुक्तके मित्रोंने मुकद्दमा जीतनेका एक

१ गुदापेमें जबान किस तरह बने रहना।

२ 'भरी, अपना संतुलन सम्हाल। कूँका पानी बहुत गहरा है।'

अलग ही उपाय निकाला। न्यायाधीशके पास भेजनेके लिये उनके द्वारा लायी गयी वह युवती — चित्रमें भी वैसा सौन्दर्य न दिखायी देता। कोनेमें नीचे गर्दन झुकाकर खड़ी हुई वह स्त्री। सायंकालकी छाया जब समुद्रके पानीपर पड़ने लगती है, तब वह जिस तरह मनोहर पर उदास दीखता है, उसी प्रकार उसकी दृष्टि थी। पति फाँसीपर न चढ़े, इसलिये वह यह कठिन परीक्षा देनेके लिये तैयार हुई थी। तैयार क्या हुई थी ? अभियुक्तके बदमाश मित्रोंने ज़बरदस्ती उसे राज़ी किया था। शायद उसे यह आशा थी कि मैं एक सुशिक्षित वकील हूँ और अच्छी सलाह देकर उसे इस विलक्षण संकटसे बचा दूँगा। परंतु इसी मुकद्दमेपर मेरी वकालत अवलंबित थी। मैंने सबकी भर्त्सना करनेवाली उसकी नज़रकी ओर कोई ध्यान न दिया। और —

तात्यासाहब जब जागे तो पसीनेसे तरबतर थे। उनके मनमें यह विचार आ गया कि मनोहरके जीवनका सत्यानाश अपने उस पापका ही फल है। रातके भयानक एकान्तमें मनुष्यका मन और भी अधिक दुर्बल हो जाता है। मनकी घुटनसे बचनेके लिये वे बाहर बागमें आये। बाहरकी ठंडी हवासे उन्हें अच्छा लगा। लेकिन आकाशके तारोंको देखकर उनके मनमें आया — क्या, कोई भी यह कह सकता है कि इनमेंसे कौनसा तारा किस आगामी क्षणमें ढीला होकर नीचे आ गिरेगा ? और एक ग्रह दूसरे ग्रहके चारों ओर घूम रहा है उसका भी अखिर क्या कारण है ?

यह दृढ़ निश्चय करके कि अब बिलकुल विचार न करूँगा, उन्होंने दरवाज़ेपर लगी हुई बत्ती जलाई और वे फाटकके आसपास चहलकदमी करने लगे। पाँच-दस मिनटके बाद उन्हें सड़कपरसे शब्द सुनायी दिये —

‘तुम निरे प्यूरिटन हो —’

‘यह गाली है या प्रशंसा ?’

‘बिलकुल होलीकी गाली है ! रात-भर जागना है। थोड़ी बियर ले लेते तो —’

दूसरा व्यक्ति सिर्फ़ हँसा। इसी समय वे दो व्यक्ति फाटकके सामने आये। यह कहकर कि इतनी रातको सामनेके द्वारपर बत्ती क्यों जल रही है, उन्होंने बँगलेकी ओर देखा। उनका आश्चर्य द्विगुणित हो गया। वह जोड़ी — और कोई न होकर सुलभाका पत्रवाहक बंबईका तरुण और ‘अनंगरंग’ पुस्तक हाथमें लेनेके कारण स्टेशनपर तात्यासाहबपर हँसनेवाला गूनाका तरुण — इन्हींकी जोड़ी थी वह। उन्होंने

जब टेकड़ीका रास्ता पकड़ा तब तात्यासाहबका आश्चर्य अधिक बढ़ गया। उनकी समझमें ही नहीं आता था कि टेकड़ीपर रात-भर जागकर ये लोग क्या करनेवाले हैं।

• • •

और जब दूसरे दिन सुबह विजयको लेनेके लिये वे बेलगाँव पैसिंजरके सेकंड क्लासके डिब्बेके पास गये तब तो उनके आश्चर्य-सागरमें जैसे ज्वार ही आ गया। विजयके साथ उसके डिब्बेसे करीब बीस-इक्कीस वर्षकी एक तरुणी भी नीचे उतरी। उसके चेहरेको—खासकर उसकी आँखोंको देखते ही तात्यासाहबको रातके स्वप्नकी याद हो आयी। मेरे जीवन-मंदिरकी वेदीपर बलि चढ़ा दी गयी वह सुंदर स्त्री!—उन्हें लगा, इतने वर्ष बीत गये यही गनीमते हैं। वरना मुझे यही भ्रम होता कि वही देहाती स्त्री आजकी सुशिक्षित भद्र समाजकी महिलाकी पोशाक पहनकर आयी है।

कुली डिब्बेसे सामान निकाल रहा था तभी विजयने उस तरुणीसे कहा,—‘केशरजी, आप ही तात्यासाहब कालेलकर हैं।’ और तुरंत ही तात्यासाहबकी ओर मुड़कर उसने पूछा,—‘डॉक्टरनीजी नहीं दीख रही हैं कहीं यहाँ? कहीं बीमार बीमार तो नहीं हैं वे? हाँ, आजकलके जमानेमें यदि केस चाहिए है तो बहुतसे डॉक्टरोंके लिये एक ही उपाय बचा है और वह है खुद ही बीमार हो जाना!’

विजयके इस विनोदका केशरने इतने खुले मनसे हँसकर स्वागत किया कि सुलभाके कल न आनेपर तात्यासाहबको जो क्रोध आया था, वह फिरसे जागृत हो गया। सुलभाकी गैरहाजिरीका कारण वे बताना चाहते थे।

लेकिन इसी समय विजय बोला,—‘तात्यासाहब, ये हैं केशरदेवी। आपके पिता मेरे मुक्किल हैं। बंबईमें रहती हैं आप।’

‘लेकिन स्कूल और कॉलेज तो बंद हैं आजकल?’

‘हाँ, मैं यह कहनेको तो भूल ही गया। बहुत सुंदर गाती हैं आप। जिस विद्यालयमें पढ़ती हैं, वहाँ एक जलसा है कल और परसों—ए कुली, बंबई गाड़ीमें चढ़ाना है वह सामान।’

किसी लतामें दो ही फूल लगे, परंतु उनसे दुनियाको उन्मत्त कर देनेवाली सुगंध फैलती हो उस तरह केशरकी आँखें तात्यासाहबको लगीं। इस लड़की और विजयका परिचय? सुलभाके पत्रके एक वाक्यका तात्यासाहबको स्मरण हो

आया। संयोगकी आँधी! उनका मन कह रहा था—सच तो यही है कि कलसे यह अजीब आँधी उठी है।

जब केशर डिब्बेमें बैठ गयी तब विजयने उससे कहा,—‘देखो, सम्हालकर जाना; यदि चाहो, तो मैं साथ चला चलता हूँ।’

गरदन उड़ाती हुई और हाथसे वेणीके पुछलेसे खिलवाड़ करती हुई केशर बोली,—‘हुश! पिताजीने तो कुछ भी कह दिया आपसे। वैसे मैं कोई डरपोक नहीं हूँ। दिन-दहाड़े तो गाड़ीमेंसे कोई पठान भगा नहीं ले जायेगा मुझे!’

केशरके मुँहसे यह वक्या निकल ही था कि इसी समय उसने किंचित् डरी हुई नज़रसे एक तरफ देखा। विजय और तात्यासाहबने मुड़कर उस तरफ देखा, तो देखते हैं कि एक पठान ठीक उस डिब्बेकी ओर जिसमें केशर बैठी हुई थी, देखता खड़ा हुआ है। उसका चेहरा देखते ही तात्यासाहबके रोंगटे खड़े हो गये। उस वेश्याके कल्लके मामलेमें मनोहरपर इल्जाम लगाकर यही शास्स बेदाग छूट गया था। उन्हें लगा—कल विठूके साथ भी मैंने इसे ही देखा होगा।

शून्य दृष्टिसे उन्होंने केशरकी ओर देखा। वह बड़े लाड़से विजयसे कह रही थी,—‘आप आर्येगे न कल जलसेमें?’

‘सुलभातार्इने छुट्टी दी तो!’

‘तो फिर मैं ही नहीं छोड़ती अब आपको।’

इसी समय सुलभाका पत्र लानेवाला वह तरुण जल्दी जल्दी गाड़ी पकड़नेके लिये आया। उसके साथ उसका मित्र था ही। उसकी ओर देखकर विजय बोला,—‘देखिये, कॉमरेड आये हैं।’

‘कॉमरेड?’

विजयकी समझमें न आया कि तात्यासाहबके स्वरमें इतना आश्चर्य क्यों व्यक्त होना चाहिए!

३

चील या कोयल ?

गाड़ीके डिब्बे लगातार आगे सरकने लगे । केशर खिड़कीसे पीछे मुड़कर देखती हुई हाथका रुमाल हिला रही थी । उसकी ओर विजय प्रसन्न मुद्रासे देख रहा था, तभी उसकी ओर तात्यासाहबकी नज़रोंके सामनेसे जो डिब्बा गुज़रा उसमें कुछ समय पहलेका वह तरुण और वह पठान दोनों आमने-सामने बैठे हुए दिखायी दिये । इस दृश्यको देखकर विजयको हँसी आये बिना न रही । यह देखते ही कि तात्यासाहब उनकी ओर प्रसन्न मुद्रासे देख रहे हैं, वह बोला, — ‘आपने नहीं देखा ?’

‘क्या ?’

‘वह कॉमरेड और पठान दोनों नज़दीक नज़दीक बैठे हुए हैं गाड़ीमें ! क्या, यह इसी तरह नहीं है कि नेवला और अजगरको एक बोरेमें बन्द कर, उसका मुँह सी दिया हो ?’

इस समय हँसते हुए विजयके सफ़ेद और स्वच्छ दाँत दिखायी दिये । लेकिन उसके ऊपरके दो दाँतोंमें बहुत अन्तर है, यही बात तात्यासाहबके एकदम ध्यानमें आयी । अपने मनके इस विचित्र विचारपर उन्हें हँसी आये बिना न रही । इस हँसीके कारण जैसे कुछ प्रोत्साहन पाकर विजयने कहा, — ‘अच्छा होता यदि इसी गाड़ीसे मैं भी बंबई चला जाता ।’

तात्यासाहबको लगा कि उसके इन शब्दोंमेंसे केशरके साथ बंवाई जानेकी उसकी इच्छा झॉककर देख रही है। उन्होंने जितना संभव था उतने निर्विकार चेहरेसे पूछा, — ‘क्यों?’

‘कम-से-कम पठान और कॉमरेडकी गप्पें ही सुननेको मिलतीं! वैसे यह साफ ही है कि ऐसे वादोंमें कॉमरेड ही हारेगा, क्यों कि जहाँ पठानने अपना छुरा निकाला कि कॉमरेडसाहबके मार्क्स और लेनिन जाने कहाँके कहाँ रफूचक्कर हो जायेंगे!’

अपनी ही बातका स्वागत स्वयं ही हँसकर करनेवाले मनुष्योंमें विजयकी गिनती होती थी। ऐसे मनुष्योंकी समझमें ही नहीं आता कि इस प्रकारका हास्य अनेक बार अहंकारका मनोहारी अवतार होता है। पहलेकी तरह तात्यासाहब इस बार न हँसे, यह बात विजयके ध्यानमें न आयी। कुछ समयके पहलेके तरुणके साथ आया हुआ दूसरा तरुण बाहर जानेके लिये तीसरे दरज़ेके गेटकी ओर जाता हुआ दिखायी दिया। विजयने एकदम पुकारा —

‘कदम —’

उस तरुणने पीछे मुड़कर देखा। क्षण-भरके लिये ऐसा प्रतीत हुआ कि पुकारने-वाले व्यक्तिको वह ठीक तरहसे नहीं पहचान पाया है। परंतु विस्मृतिका यह कुहरा दूसरे ही क्षण साफ हो गया। जल्दी जल्दी आगे बढ़ते हुए वह ज़ोरसे बोला —

‘ओ हो! विजय देशपांडे?’

उसके नज़दीक आते ही विजय मंद हास्य करता हुआ उसकी ओर देखकर बोला, — ‘क्यों भाई कदम, हाथ आगे बढ़ाऊँ? या कि शेकहैंडके लिये हाथ आगे बढ़ाना पूँजीपतियोंका शिष्टाचार है? हाँ, भाई, क्या ठिकाना? हम हाथ आगे बढ़ायें और तुम उसे जड़से ही उखाड़ दो!’

विजयकी बात समाप्त हो ही रही थी तभी कदम आगे बढ़कर उसके नज़दीक आया और उसने अपना हाथ आगे बढ़ा भी दिया।

तात्यासाहबकी ओर गर्दन मोड़ते हुए विजय बोला, — ‘आप हैं तात्यासाहब कालेलकर। पुरानी पीढ़ीके शिरगाँवके प्रमुख वकील। आपहीके चरणोंपर चरण रखकर मैं वहाँ चल रहा हूँ।’

‘तो तुम भी अन्तमें एक सुन्दर बँगला बनाओगे! मेरी यह भविष्यवाणी नोट कर लो!’— विजयने कुछ समय पहले उसपर जो व्यंग्य कसा था उसका बदला लेनेके लिये कदमने कहा।

परंतु विजय भी कोई कम न था। वह हँसते हुए बोला,—‘अरे, तुम माई लोग तो भगवानको भी नहीं मानते हो न ? और यदि तुम्हें भविष्यकथन आता है, तो किसी अखबारको दे दिया करो। कॉमरेडका भविष्य-कथन होनेके कारण उसकी कम-से-कम कुछ बिक्री ही बढ़ जायेगी !’

‘देशपांडे, कॉमरेडका भविष्य उसके माथेपर ब्रह्माजी द्वारा नहीं लिखा जाता !’

‘जेलर उसे कोइसे उसकी पीठपर लिख देता है। है न ?’—विजय हँसा।

परंतु पतला कागज़ लगा देनेसे दीपकके प्रकाशकी तीव्रता आखिर कितनी कम होगी ? अपनी मुद्रासे यह दिखाता हुआ कि उसके शब्दोंका व्यंग जैसे उसकी समझमें ही नहीं आया है, कदमने उत्तर दिया, ‘—वह उसे स्वयं ही अपने सीनेपर लिख रखता है !’

‘अच्छा, यह बात है ? परंतु सीनेपर लिखे वे अक्षर पसीनेसे पुछ नहीं जाते क्या ?’

‘खूनकी स्याहीसे लिखे रहते हैं वे ।’

दूसरे दरजेके गेटके पास आ जानेके कारण यह अजीब झगड़ा लू संवाद रुक गया। इस संवादमें यदि विजयकी जीत हुई होती, तो तात्यासाहबको आनन्द होता। परंतु विजय वाग्युद्धमें चतुर हो, पर कदमके पास भी गोला बारूदकी कोई कमी न थी।

शायद यह सोचकर ही कि संभाषणको बहसका रूप देनेकी अपेक्षा, उसे मित्रतापूर्ण बनाना ही अधिक इष्ट है, विजयने पूछा, — ‘लगता है किसीको भेजने आये थे शायद ?’

‘हाँ ।’

‘किसे ? पत्नीको ?’

‘तुम्हारे सरीखा अमीर नहीं हूँ जो पत्नी बनाऊँ !’

‘अरे, पर मेरी भी शादी कहाँ हुई है अभीतक ?’

‘यही सच है कि दो सिर अंतमें एक हो जाते हैं !’

कदमकी इस बातपर सभीको हँसी आ गयी।

वह आगे बोला,—‘एक मित्रको बिदा देने आया था मैं।’

‘कहाँ रहते हैं तुम्हारे ये मित्र ?’

‘बंबईमें ।’

‘हमेशा ?’

‘नहीं, पहले कराचीमें था वह ।’

‘क्या करते थे कराचीमें ? प्रोफेसर थे, या —’

‘मज़दूरोंके कॉलेजमें प्रोफेसर था वह ! परंतु सरकारको उसके पढ़ानेका ढंग पसन्द न पड़ा । कराचीकी सीमामें प्रवेश करनेकी मनाही हो गयी है उसे —’

‘नाम क्या है उसका ?’ — विजयने प्रश्न किया ।

‘मुकुन्द काम्बली ।’

‘ऐसा कोई नाम अखबारमें पढ़ा ज़रूर था । कहीं कोई हड़ताल हो गयी थीं — है न ?’

विजयके ‘कहीं कोई’ शब्द कदमको लग गये । कोई तीखा जवाब देनेके लिये उसके होंठ हिले भी । परंतु तात्यासाहबकी चुलबुलाहटसे उसे दीख रहा था, कि स्टेशनके बाहर बातें करते रहनेकी मर्यादा, कुछ समयके पहलेसे ही, समाप्त हो गयी है । विजयके ध्यानमें भी यह बात आयी । वह तात्यासाहबसे बोला, — ‘हवाके साथ लड़नेवाला आदमी हूँ मैं । हूँ न ?’

‘हवाके साथ कितना भी लड़े, परंतु वह जिस तरह आती है, मनुष्यको उसी तरह अपनी पीठ फेर लेनी पड़ती है !’

वर्षाके छोटे-से झलेसे सड़ककी धूल नीचे बैठ जाये, उस तरह कदमके इस श्लेषके कारण संभाषणका वातावरण प्रसन्न हो गया । तात्यासाहब कारकी ओर गये ।

उनके साथ जानेसे पहले विजयने कदमसे पूछा, — ‘कारमें चलते हो ?’

‘ले चलो, तो आता हूँ । कम-से-कम ताँगेके तीन आने ही बच जायेंगे मेरे ।’

तात्यासाहबने विट्टूसे कारको शहरमेंसे ले चलनेके लिये कहा । कदम कसबा पेठमें किसी जगह रहता था । उसने खुद ही कहा कि बुधवार चौकमें उतरकर मैं वहाँसे फिर पैदल चला जाऊँगा, इसपर विजयने कहा भी, — ‘क्यों, क्या हमें अपना घर नहीं दिखाना चाहते ? शायद डरते होंगे कि कहीं किसी दिनमें चाय पीने न आ धमकूँ ?’

लेकिन कदम सिर्फ़ हँसा ।

कारमें विजयके यह कहते ही कि मैं यहाँ भाषण देने आया हूँ, कदम बोला, — ‘मुझे मादम है !’

‘तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?’

‘तुम्हारे शिरगाँवके संवाददाताके पत्रमें थी यह बात, परसोंके अखबारमें !’

‘लगाता है संवाददाताओंके सब पत्रोंको भी पढ़ते रहते हो ! हाँ, तुम जैसे लोगोंको तो उन्हें पढ़ना ही चाहिए । जिसे आग लगानी है उसे यह पता लगाकर रखना ही चाहिए कि घासकी ऊँची गंजियाँ कहाँ कहाँ हैं ?’

‘परंतु तुम्हारे शिरगाँवमें घासकी ऊँची गंजियोंके बदले घुटना-भर कीचड़ ही दीखता है ।’

‘कीचड़ ?’

‘और नहीं तो क्या ? आज क्या हुआ, तो महारानीसाहबाने बुलावेके समय विचार-प्रवर्तक भाषण दिया ? यानी प्राइवेट सेक्रेटरीने लिख दिया था, उसे पढ़कर सुना दिया । कल क्या हुआ, तो महाराजके अत्यन्त प्रिय घोड़ेको जुकाम हो गया और वह बीमार है । तुम्हारा वह युवराज फर्स्ट इयर पास हो गया, इसलिये कहते हैं कि परसों उसे रियायाकी तरफसे मानपत्र भेंट किया गया । उस मानपत्रपर तुम्हारे दस्तखत हैं या नहीं ? हाँ, तुम्हारे शिरगाँवके संवाददाताके पत्रमें अभी एक ही बात आनेको रह गयी है ।’

‘कौनसी ?’

‘महाराजकी बिल्लीके बच्चोंकी चारहवींको धूमधामसे मनानेकी ! इस क्रान्तिकारी समारोहमें तोपें ज़रा सभालकर दागी जायें । वरना वे पिल्ले डरकर प्राण त्याग देंगे और —’

इसी समय बुधवार चौक आ गया ।

‘फिर मिलेंगे ही’ — कहकर कदम नीचे उतरा । उसने तात्यासाहबसे ‘नमस्ते’ किया । तब उन्हें भी उलटकर नमस्कार करना ही पड़ा ।

कारके फिर शुरू होते ही विजय बोला, — ‘इसी तरह पागल है यह । जब कॉलेजमें था —’

‘यह क्या तुम्हारा सहपाठी था ?’

‘पहले साथ पढ़ता था । पर बादमें पीछे रह गया । बड़ा ऊधमी और आन्दोलक है । कॉलेजमें पढ़ते समय ब्राह्मणेतर^१ दलके किसी अखबारमें खूब

लिखा करते थे हज़रत ! हमने अपने कलत्रमें जत्र गणेशोत्सव^१ मनाया था, तो आपने ज्योतिबाका^२ उत्सव मनाया था । उस समय धार्मिक विधियाँ करनेवाले पुरोहितों और पंडितोंपर बड़ी आफत आ गयी थी । पर यह बात ज़रूर है कि उसका पागलपन कभी झूठा नहीं होता । पहले सिरका मुँहफट होनेके कारण किस समय किसे दुख दे देगा, इसका कोई ठिकाना नहीं । पहलेसे ही इसी तरह बातूनी है ! हम दोनों बहुत दिनोंतक एकसाथ घूमने जाया करते थे । एक दिन हमें रास्तेमें साँप मिला था । तुरंत ही अपने बूटसे उसके मुँहको कुचल डाला इसने— ज़रा भी न डरा ।’

कदमके साहसका यह वर्णन सुनकर तात्यासाहबके मनमें यह विचार आया कि बेरड^३ भी बड़े साहसी होते हैं । अब उनके सामने यह प्रश्न एकदम आकर खड़ा हो गया कि वह मुकुंद और यह कदम, दोनों कल रातको उस टेकड़ीपर किस लिये गये होंगे ?

मोटर रुकनेकी आवाज़ होते ही मौसी द्वारमें आयी । सीढ़ियाँ तय करनेके बाद विजयने नीचे झुककर मौसीके चरण छुये । मौसीने कहा, — ‘जुग जुग जियो, बेटा ।’

‘इतनी ज़िंदगी लेकर क्या करूँगा, मौसीजी ?’

‘अजी, मुझे भी अभी ज़िंदा रहनेकी इच्छा है । फिर तुम्हारी अभी उम्र ही क्या है ? ज़रा दो हाथके चार हाथ तो हो जाने दो । फिर —’

‘फिर क्या ? आपके मेहमानोंकी संख्या ही बढ़ेगी ?’

‘अपने ही घरमें कोई मेहमान नहीं होता !’

मौसीने यह किसी भी मतलबसे कहा हो, परंतु विजय जिस खुशीमें ज़ीनेकी सीढ़ियाँ चढ़ रहा था, उससे उसने उस वाक्यका संबंध सुलभासे जोड़ दिया होगा । एक सालसे उसकी सुलभासे मुलाकात न हुई थी । वह इसी मनोराजमें खोया हुआ ऊपर पहुँचा कि अब ऊपर पहुँचनेपर वेशभूषा करके अपना स्वागत करनेके लिये

१ महाराष्ट्रमें गणेश एक लोकप्रिय देवता है । भाद्रपदमें दस दिन इसका उत्सव मनाया जाता है । लो. तिलकजीने इसे राष्ट्रीय स्वरूप देकर लोकजागरणका कार्य किया ।

२ ज्योतिबा फुले : महाराष्ट्रके एक उच्च कोटिके अछुतोधारके समर्थक ।

३ एक जाति ।

वह द्वारमें खड़ी होगी। मेरे यह कहते ही कि 'स्वागताध्यक्षकी अपेक्षा अध्यक्ष-का ही मान अधिक होता है', वह हँसकर कोई मजेदार उत्तर देगी। परंतु देखता है कि मेहमानके कमरेमें, दरवाजेपर सिरकी जटाओंके भारको ठीक तरहसे सम्हालता हुआ पाक-शास्त्र-विशारद पांडुरंग खड़ा हुआ है !

‘कहो पांडुरंग, सब ठीक है न ?’

इस प्रश्नको पूछते समय विजयके मनमें यह कल्पना आयी थी कि पांडुरंगकी हुकूमतमें अगर बड़ीसे बड़ी कोई क्रान्ति हो सकती है तो वह यही होगी कि उसके द्वारा पीसी गयी चटनी आगकी तरह तीखी और चिरपिरी हो जाये। लेकिन पांडुरंगसे इस प्रश्नको छोड़कर और दूसरा कोई प्रश्न पूछना संभव ही न था।

परंतु पांडुरंगने एक ऐसी बात कह दी जिसकी उससे आशा न थी। वह एकदम बोला, — ‘इस धंधेसे तो अब ऊब गया हूँ, साहब !’

‘अरे, तुम लोग यदि यह धंधा छोड़ दोगे, तो हम जैसे लोग भूखों मर जायेंगे न !’

‘अब तो इस धंधेमें रहना मुझे मंजूर नहीं।’

‘फिर क्या करोगे अब ?’

‘सोच रहा हूँ किसी सिनेमामें चला जाऊँ।’

विजयका विश्वास था कि चित्रपटमें ज़बतक कोई ऐसा लेखक या निर्देशक नहीं मिलता, जो अपने चित्रमें रसोइयाको नायक बनाये, तबतक पांडुरंगको वहाँ कोई स्थान प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिये वह चुपचाप अपने कपड़े उतारने लगा।

परंतु पांडुरंग पक्का खप्पी था। नज़दीक आकर वह धीरेसे बोला, — ‘साहब, किसी कंपनीमें आपकी पहचान हो, तो ज़रा देखिये न ?’

मन-ही-मन यह कहकर कि इस बलासे किसी तरह पिंड छुड़ाना चाहिए, विजयने कहा, — ‘पांडुरंग, जाओ, आजके अखबार तो ले आओ जल्दी !’

पैसे लेकर जाते जाते पांडुरंगने एक प्रश्न पूछा ही, — ‘भविष्य-सागर लाऊँ क्या ?’

‘सागर नहीं, नदी नहीं, नाला नहीं, नल भी नहीं ! जाओ !’ — विजयने उत्तर दिया।

इसी समय तात्यासाहब ऊपर आकर कुरसीपर बैठे। विजय कोचकी एक तरफ़ टिककर बैठ गया। तात्यासाहबके चेहरेसे दीख रहा था जैसे वे कुछ पूछना चाहते हैं और इस द्विधामें पड़े हुए हैं कि पूछूँ या न पूछूँ।

विजयने ही बोलना शुरू किया। उसने कहा, — ‘लगता है, सुलभाताईके घूमनेका नियम एक दिनके लिये भी नहीं टूटता !’

‘वह यहाँ नहीं है।’

‘फिर कहाँ है ? बंबईमें ?’

‘हाँ।’

‘तीन महीने पहले ही उसका अस्पतालका काम खत्म हो गया था न ?’

‘एक अधिक अनुभव लेनेके लिये वह जानबूझकर वहाँ रह गयी है। तुम आ रहे हो, इसलिये मैंने उसे कल तार भेजा था।’

दूसरा कोई होता, तो इसपर ‘फिर ?’ कहकर प्रश्न करता। कम-से-कम वह अपनी मुद्रापर इस आशयका प्रश्न-चिन्ह अंकित करता कि वह क्यों नहीं आयी। परंतु विजय बिलकुल शान्त था।

तात्यासाहब ही आगे बोले, — ‘गिरगाँवमें वह अपनी मौसीके घर रहती थी। उनके यहाँ कोई बीमार है। घरकी ही डॉक्टरनी है। इसलिये मज़बूरन उसे वहाँ रह जाना पड़ा। आज शामको आ जायेगी।’

मनुष्य कितनी सफाईसे झूठ बोल सकता है इसका अनुभव तात्यासाहबको पहले गवाहोंके रूपमें हुआ करता था। अब वह स्वतःके रूपमें ही प्रकट हो गया। परंतु यह विषय अधिक न बढ़े, इसलिये वे बोले, — ‘आपके यहाँका क्या हाल है ?’

हँसते हुए विजयने कहा, — ‘बहुत है। आजकल मैंने एक घोड़ा लिया है।’

‘घोड़ा ? तुम तो कार ले रहे थे न ?’

‘गांधीजीको शायद मेरी यह खरीद पसंद पड़ेगी। हाँ, बिलकुल लाचार हो गया था इसी लिये मैंने उसे खरीदा।’

‘इसका मतलब ?’

‘समर्थके घरका घोड़ा जो है। फिर क्या कर सकते हैं ?’

‘किसका ? महाराजाका ?’

‘जी हाँ; घुड़दौड़के लिये जो घोड़े बेकार हो जाते हैं उन्हें प्रजाके मत्थे मढ़ देनेका एक ढंग निकल पड़ा है आजकल। खरीदनेवाला वह घोड़ा दूसरेको नहीं बेच सकता। हर दो-तीन महीनेमें उसके स्वास्थ्यकी पूछताछ करनेके लिये एक सरकारी कर्मचारी भी आता है।’

‘वह कदम कुछ समयके पहले जो कद रहा था वह कुछ झूट न था तो !’

‘झूट ? अतिशयोक्ति करनेमें अत्यन्त कुशल किसी लेखकको हमारी रियासतका विनोदपूर्ण वर्णन लिखकर देखना चाहिए । वस्तुस्थितिका दसवाँ हिस्सा भी न दिखेगा उसके लेखमें । परंतु मुझ जैसांको तो अपना काम कर लेना है ! जो बदनपर आ गया उसको सींगपर लेकर —’

‘उस केशरके पिता क्या शिरगांवके ही हैं !’ — तात्यासाहबने एकदम पूछा ।

उनके प्रश्न करनेके ढंगसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वे इसके विषयमें बहुत देरसे सोच रहे होंगे ।

‘आप शायद कभी मराठी अखबार नहीं पढ़ते ?’

‘मनोहरके उस मामलेसे मुझे इन ग्रामीण अखबारोंसे बड़ी नफरत हो गयी है । ‘टाइम्स’को छोड़कर मैं बहुधा और कुछ नहीं पढ़ता ।’

‘रियासतमें एक मनुष्य कारखाना खोलनेके लिये आया है ।’

‘क्या, कोई महाराष्ट्रीय है ?’ — तात्यासाहबके स्वरमें ही उनके मनका संदेह प्रकट हो गया था ।

‘नहीं, गुजराती है । मनसुखलाल नामका बंबईका एक बड़ा व्यापारी है ।’

‘केशर क्या उसीकी लड़की है ? मराठी कितनी साफ, बिलकुल हम लोगोंकी तरह बोल रही थी !’

‘कहते हैं मनसुखलालकी तीन-चार पीढ़ियाँ बंबईमें ही रही हैं ।’

विजयकी समझमें न आया कि इस समय तात्यासाहबके चेहरेपर संतोषकी छटा क्यों चमक गयी । पर वह आगे बोला, — ‘बहुत पैसेवाला है यह मनसुखलाल !’

‘हाँ, सो तो दीख ही रहा है । वरना रेगिस्तानमें पानी बहानेके शौक्रमें क्यों पड़ता ?’

‘एक बार बंबईमें किसी समारोहके समय महाराजा और उसकी भेंट हो गयी । महाराजाने उसे कुछ सहूलियतें देना मंजूर कर लिया । मैं उसका कानूनी सलाहकार हो गया हूँ । कल आपको तार देनेके बाद उसके पास गया था कुछ कानूनी सलाह देने । लगता है केशरकी माँका स्वास्थ्य ठीक नहीं है । इसलिये सेठजी सोच रहे थे कि लड़कीको बंबई किसके साथ भेजूँ । जब उन्हें पता चला कि मैं इस तरफ आ रहा हूँ, तो यह काम मेरे ही गलेमें बाँध दिया गया ।’

‘ फिर तुम मेलसे क्यों नहीं आये ? ’

‘ मनसुखलालका वह व्यापारी विचार था न ? मेलमें भीड़ बहुत होती है । तूफ़ानके कारण, गोवाके लोग भी बंबईको यहींसे जाते हैं आजकल । वे बोले पैसिंजरके सेकंडमें भीड़ नहीं होती — ’

इसी समय पांडुरंग चाय और अखबार लेकर ऊपर आया ।

चाय पीते-पीते अखबारके पृष्ठ उलटता हुआ विजय बोला,— ‘ यह समाचार सुना आपने ? ’

‘ कौनसा ? ’

‘ पुलिसको शक हुआ है कि उस पारकी टेकड़ीपर जाली सिक्के बनानेका कारखाना है ! ’

तात्यासाहबकी नज़रोंके सामने कल रातको टेकड़ी की ओर जानेवाले तरुण खड़े हो गये !

इसी समय विजय बोला,— ‘ अब कदमको जता देना होगा कि ज़रा सम्हलकर रहे । ’

‘ क्यों ? ’

‘ आज यह भी एक समाचार है कि पुलिसको शक है कि गैरकानूनी आन्दोलन करनेवाले कुछ तरुण यहाँ खुफिया तौरपर सभाएँ करते हैं । लगता है कि अब तलाशियोंका सिलसिला भी जल्द ही शुरू हो जायेगा । ’

तात्यासाहबको बंगालके क्रांतिकारियोंकी बहुत दिन पहले पढ़ी हुई बातोंका स्मरण हो आया—गीताके श्लोकोंको मुँहसे कहते हुए फाँसीपर चढ़नेके लिये तैयार रहनेवाले उन तरुणोंमेंका तो यह मुकुंद नहीं है कहीं ? उसकी और सुलभाकी इतनी आत्मिक घनिष्टता है, इसका नतीजा क्या होगा ? छोटे बच्चेको दीपकका प्रकाश मोहक लगता है । वह दाहक है इसका उसे ज्ञान नहीं होता । तरुणियोंको भी तरुणोंका साहस इस प्रकार आकर्षक लगे, तो आश्चर्य क्या है ? यही नहीं, बल्कि बात तो यह है कि अद्भुत-रम्यताकी रुचि, मनुष्य कितना भी विचारशील हो जाये, फिर भी उसके मनसे समूल नष्ट नहीं हो जाती । तात्यासाहबको अपने अनुभवकी एक बात याद हो आयी । वे एक डाकूके खिलाफ पैरवी कर रहे थे । परंतु दिन-दहाड़े गाँवमें जाकर उसने जो डाका डाला था, वह न्यायकी दृष्टिसे भले ही दण्डनीय हो फिर भी उसका वर्णन रोंगटे खड़े कर रहा था, वे अपना यह पुराना अनुभव अबतक नहीं भूले थे, कि मनुष्यकी नीरस ज़िंदगीमें, कम-से-कम एक बार कोई साहसिक

कार्य कर दिखानेकी जो अतृप्त अभिलाषा रहती है, वह ऐसे समय उमड़कर ऊपर आ जाती है।

यदि विजयने ब्रीचहीमें 'वाह, क्या अच्छी सूझ है' न कहा होता, तो तात्यासाहबका मन इसी तरह भटकता रहता।

'क्या है?' - उन्होंने पूछा।

'एक सिनेमा कम्पनीका समाचार है।'

'तो फिर किसी अभिनेत्रीके बारेमें ही होगा!'

'नहीं, यह एक बिल्कुल नया ही 'स्टण्ट' है!'

'कौनसा?'

'बंबईकी यह कम्पनी एक बंगाली म्यूज़िक डाइरेक्टरको ला रही है। क्या नाम है उसका? अभय मित्र!'

'कौकणसे लाये गये किसी! भी जातिके आमोंको यहाँ हापूस' कहकर मँहगे बेचते ही हैं न? उसी तरहका हाल है यह!'

'इससे भी सरल उपाय है एक! यहींके किसी आदमीको पकड़कर उसे पोशाक पहनाकर बंगाली-बाबू बना दिया जाये और उसका नाम रख दिया जाय - अभय मित्र, कि बस काम हो गया!'

तात्यासाहब हँसे।

यह देखते ही विजय आगे कहने लगा, - 'परसों मुझे भी इसी तरहका एक धोखा हो गया। एक समाचारमें छपा था कि किसी फिल्ममें रानीका काम पुष्पा-देवी नामकी किसी अभिनेत्रीने किया है। मुझे लगा, कम्पनी गोवासे किसी तरुणीको पकड़ लायी होगी। परंतु फिल्म देखते समय जब रानी परदेपर आयी तो मुझे अपनी आँखोंपर विश्वास ही न होता था। एक साल पहले यही औरत हमारे घरकी नौकरानी थी। आगे चलकर वह किसीके साथ बंबई भाग गयी और पुष्पादेवी हो गयी।' विजय नित्यकी भाँति बड़ा कहकहा लगाकर हँसा।

तात्यासाहबको याद आयी कि घरमें मेहमान हैं इसलिये सबज़ी आदि लानेके लिये पांडुरंगको बाज़ार भेजना चाहिए। वे विजयसे बोले, - 'मैं ज़रा नीचे हो आता हूँ।'

विजय उठकर कमरेके फोटो और चित्र देखने लगा। उनका चुनाव बहुधा सुलभाने ही किया होगा। उन चित्रोंमेंका एक चित्र उसे विशेष रूपसे अच्छा लगा। बर्फ पिघल गयी है। सूर्यकी किरणों चमक चमक रही हैं और 'आला वसंत, आला' १ गीत गुनगुनाते हुए एक वृक्षके अंग धीरे धीरे पल्लवित हो रहे हैं। उसे लगा कि यह मेरे आजके जीवनका ही चित्र है। उसने आनंदसे आगे देखा। सुलभाका एक नया फोटो वहाँ लगा हुआ था। उसकी ओर देखते हुए सुलभाके सहवासके आजतकके सब प्रसंग उसे स्मरण हो आये। उन दोनोंका स्नेह अभीतक आमके बौरकी तरह था। मोहक, सुगंधित, परंतु कब झड़ जाये इसका कोई ठिकाना नहीं! यह स्नेह सफलीभूत होकर, उसका रूपान्तर प्रेममें होगा या नहीं, यह देखनेका समय अब नज़दीक आ गया था।

उसकी इच्छा न होते हुए भी उस फोटोके समीप केशरकी सुडौल मूर्ति स्पष्ट रूपसे खड़ी हो गयी। सुलभा भले ही सुंदर हो, पर उसका सौंदर्य मानवी था। केशरका रूप देखकर अप्सराएँ भी लज्जित हो जातीं! उसके मनमें आया,— सुलभाकी आँखोंमें पानी होगा। लेकिन केशरकी आँखोंसे अमृत रसमसाकर बह रहा है। विजयकी आँखोंके सामने उसके साथ सफर करनेवाली केशर खड़ी हो गयी। उसकी मामूली बातें भी लड़-प्यार और नखरोंसे सराबोर थीं। केवल रिम्त मात्रसे मोहकताके फव्वारे थई थई नाचते थे।

सुलभा गुलाबके पेड़की तरह है जिसे बीच-बीचमें सुंदर फूल लगते हैं। परंतु उन्हें तोड़ते समय काँटे चुभे बिना नहीं रहते। केशर मोगरेकी लता है—कलियोंसे भरी हुई! उनकी एक एक कली सुगंधसे उन्मत्त कर देती है और काँटोंका भय तो बिलकुल ही नहीं होता।

विजयको सुख-स्वप्नमें खो जानेका अभ्यास न था। परंतु इस समय ज़रूर शीघ्र ही उसे प्राप्त होनेवाली ज़मींदारीकी कल्पना उसके मनमें आ गयी। उस आनंदमें खोकर वह गुनगुनाने लगा—

‘प्रेम कोणीही करीना
कां अशी फिर्याद खोटी?’ २

१ ‘आया बसंत, आया!’

२ ‘यह झूठी शिकायत क्यों कि प्रेम कोई भी नहीं करता?’

उसे लगा कि नीचे कोई बहुत जोरसे कुछ कह रहा है, इसलिये वह कमरेके द्वारमें आया। उसे स्पष्ट शब्द सुनायी दिये — ‘जय गंगे’। वह जान गया कि मौसीजी नलके पासीसे नहाती हुई ‘जय गंगे’ कह रही हैं। मौसीकी इस अंध-श्रद्धापर आ रही हूँसी उसके होंठोंके बाहर निकल भी पड़ती। परंतु सुलभाकी बातचीतमें समय समयपर दिखायी दिया हुआ मौसीका जीवन उसकी आँखोंके सामने मूर्तिमान हो गया। मौसीजीकी इस अंध-श्रद्धाके पीछे कितना त्याग और कितनी शान्ति थी। शिरगाँवमें घरकी कार होते हुए भी सायंकालको पैदल जाकर रामके दर्शन करनेका उनका दैनिक नियम कभी भी भंग न हुआ था। सुलभा शालामें चाहे जिस जातिकी लड़कीको छूकर घर आती, परंतु मौसीने यह हठ कभी न पकड़ा कि उसे छूआछूतके नियमोंका पालन करना चाहिए। इसके विपरीत, जब फलतू स्त्रियाँ इस भ्रष्टाकारके बारेमें उनसे शिकायत करने लगतीं, तब वे जवाब देतीं, — ‘क्या, मंदिरमें कोई छूआछूत मानता है कभी? शाला भी तो आखिर विद्यामंदिर ही है न?’ जब मनोहर लापता हो गया और कल्लाका मुकद्दमा शुरू हुआ, तब तात्यासाहब दिन-भर चिढ़कर, छटपटाकर, और झल्लाकर कुछ भी बका करते। परंतु मौसी शान्तिपूर्वक कहतीं, — ‘भूल भगवानसे भी हो जाती है। फिर मन्की क्या बात है? आज उसपर जो तोहमत लगायी गयी है, उसे निकल जाने दो, फिर तुम्हें पता चलेगा कि वह कितना सीधा है!’

मौसीके इस प्रकारके जीवनकी तुलनामें विजयको अपना जीवन कितनी व्यग्रता और गड़बड़ीका लगा। जैसे थोड़े थोड़े अन्तरपर बने पहाड़के सुरंगोंमेंसे जानेवाली रेलगाड़ी! ज़मींदारीका अधिकार प्राप्त करनेके लिये मेरे पिताजीने पानीकी तरह पैसा खर्च किया, परंतु अन्तमें ज़मींदारीके बदले भिक्षापात्र ही उनके हाथमें आया। गरीबीसे ऊपर उठते हुए, संगदिल दुनियाकी उन्हें जो ठोकरें लगीं—उनके सिर्फ स्मरण मात्रसे ही विजयने अनजाने अपना निचला होठ चचाया।

नज़दीक ही कहींपर अमराईसे कोयल कूक रही थी — ‘कुहू कुहू’। विजय बाहर अटारीपर आया। जीवनसंग्रामके विविध कोलाहलमें भी कोयलका मधुर स्वर स्पष्ट रूपसे सुनायी पड़ रहा था। कोयलका वह अर्थशून्य संदेश जो कि एक तकियाकलामकी तरह था, विजयको मौसीके ‘जय गंगे’ की तरह ही शान्त और मधुर प्रतीत हुआ। उसके मनने कहा भी, आजतक हज़ारों कवि कोयलपर

लुब्ध हुए, सो कुछ यों ही नहीं। शान्तिका आनंद ही जीवनकी आत्मा है। विजयके मनमें यह विचार आया ही था तभी एक चील वेगसे नीचे गिरी। वह किसपर झपटी यह विजय न देख सका। परंतु उसका दूसरा मन झट्टाकर बोला, — ‘कविके कोमल हृदय होते हैं, इसलिये वे कोयलपर कविताएँ रचा करते हैं ! चीलकी तरह विशाल आकाशमें कोयल कभी विहार करेगी क्या ? और चील जैसी झपट...

कुछ समय पहलेही की उस चीलकी याद आकर विजयके सिरमें विलक्षण चमक क्षणभर यों ही घूम गयी।

● ● ●

४

पहला स्पर्श

गाड़ी छूटी उस समय मुकुंद ज़रा विमनस्क ही था। पहले ही बहन के लिये उसे तीन-चार रात लगातार जागना पड़ा था। कदमकी ज़रूरी चिट्ठी आने के कारण, वह जल्दी पूना चला आया। परंतु उसने जो आशा की थी उससे यहाँ की सभी बातें निराली थीं। मुकुंद यह नहीं समझ पाया कि कदमको यह खबर कहाँ से मिली कि रातको अपने कमरे की तलाशी होने की संभावना है? पुलिस को चकमा देने के लिये उसने जो उपाय ढूँढ़ निकाला था, वह मुकुंद को विलक्षण ही लगा। टेकड़ी पर जाकर बैठने के बाद मुकुंद ने उससे हँसते-हँसते कहा था, — ‘यहाँ आस-पास अगर कोई बेताल हो, तो उसे भी तुम भगा दोगे!’

गाड़ी स्टेशन के बाहर निकली ही थी तभी एकदम बड़ा कोलाहल हुआ। गाड़ी को धक्का लगा और वह रुकी। मुकुंद ने सोचा — कोई गाड़ी के नीचे दब गया होगा। गाड़ी के रुकते ही डिब्बों से जल्दी जल्दी उतरकर लोग आगे की ओर दौड़ने लगे। मुकुंद के मन में विचार आया — खून देखने का जंगली शौक आज भी इन्सान के खून में भिदा हुआ है और वह मन-ही-मन हँसा। उसे लगा कि मैं भी उठूँ परंतु दुर्घटना में फँसे हुए मनुष्य की सहायता करने का प्रश्न न होने के कारण, वह जहाँ के तहाँ बैठा रहा। उसके नज़दीक बैठे हुए पठान से ज़रूर खेगों की भीड़

देखकर चुप न बैठा गया। खट्टसे दरवाज़ा खोलकर वह बाहर गया। सिर्फ़ हो-हल्ला सुनायी पड़ रहा था। परंतु उससे मुकुन्दको कुछ भी बोध न हुआ। तुरंत ही इस भयसे कि गाड़ी छूट जायेगी, लोग अपने अपने डिब्बेकी ओर वापस दौड़ने लगे। मुकुन्दके डिब्बेमें दूसरी तरफसे दो उतावले दर्शक घुसे।

पहला निराशासे बोला, — ‘फिज़ूल ही दौड़कर गये, भई।’

अपनी घुटी हुई चाँदपर हाथ फेरते हुए समीप ही बैठे एक वृद्ध महाशयने पूछा, — ‘क्या हो गया था?’

‘होगा क्या? सेकंड क्लासका एक मुसाफिर छूट गया था स्टेशनपर! उनके लिये गाड़ी रोक दी गयी।’

‘यही अगर कोई थर्ड क्लासका होता, तो!’ — इस प्रकार प्रश्न पूछकर वृद्ध महाशय आवेशसे आगे कहने लगे, — ‘कुछ दिन पहले मुझे भी ऐसा ही मौक़ा आया था। मेरी पत्नी गाड़ीमें बैठ गयी थी और सामान चढ़ानेकी गड़बड़ीमें मैं प्लेट-फार्मपर ही रह गया। मैं खूब चीखा — चिल्लाया — गिड़ गिड़ाया। लेकिन भैया, सेकंड क्लास सो सेकंड क्लास, और थर्ड क्लास सो थर्ड क्लास!’

मुकुन्दके पास बैठा हुआ पठान अपना एक साथी लेकर भीतर आया। उसकी ओर मुकुन्दने देखा। वे दोनों किसी खुबसूरत लड़कीके बारेमें बातें कर रहे थे। मुकुन्द दूसरी ओर देखने लगा और एक क्षणके भीतर विचारोंमें खो गया। बीच बीचमें उसको उँघाई आ जाती। परंतु उससे पीछा छुड़ानेके लिये उसके मनके विचारोंका तूफ़ान काफ़ी बड़ा था! उसकी अध-मूंदी आँखोंके सामनेसे जल्दी जल्दी स्मृति-चित्र सरक रहे थे।

शिरगाँवकी शालासे ‘जगन्नाथ शंकरसेठ स्कॉलरशिप’ प्राप्त करनेपर वह पहली बार पूनासे बंबई गया। उस यात्राका उसे स्मरण हुआ। बंबईकी कोई जानकारी नहीं। मैं इस फिक्कमें था कि बहनोईजी यदि स्टेशनपर न आये तो मुझे उसके घरका पता कैसे चलेगा? लेकिन अँधेरी रात होते हुए भी वह सफर कितना मज़ेदार लगा था मुझे! अपने भावी जीवनके चित्रको रंगते हुए उस एक रातमें मैंने कितने भिन्न भिन्न रंगोंका मिश्रण कर दिया था! मैं प्रोफ़ेसर बूँगा। विदेश जाकर अपनी प्रतिभा दिखाऊँगा, ग्रंथ लिखकर कीर्ति प्राप्त करूँगा, मेरी सुशिक्षित पत्नी कौकणके अपने घर जायेगी, तो कितनी आश्चर्यचकित हो

जायेगी। इस प्रकार एक-दो नहीं, बल्कि कितनी ही कल्पनाएँ उस रातके सफरमें मेरे मनमें नाच गयीं। भविष्य कालके बागमें खिलनेवाले फूलोंकी सुगंधि थी वह। वे फूल कभी नहीं खिले, पर काँटे ज़रूर...

गाड़ी स्टेशनमें आ जानेके कारण एक छोटासा धक्का लगा। मुकुन्दने आँखें खोलीं। अपने अन्तर्मनकी स्वच्छन्दतापर उसे अपने आप हँसी आयी। उसे अपने प्रिय वाक्य 'दावानलमें घासकी तरह आमके पेड़ भी जल जाते हैं' का स्मरण हुआ। अपने मनको दूसरी तरफ लगानेके लिये वह उन दो पठानोंकी बातें सुनने लगा। क़रीब क़रीब कानाफूसी ही कर रहे थे वे। अभी भी वे उस लड़कीके विषयमें ही बातें कर रहे होंगे। बाज़ारकी चीज़की तरह उन दोनोंमें शर्त लग रही थी कि उस लड़कीकी क्या कीमत मिलेगी? यह देखते ही कि मुकुन्दका ध्यान अपनी ओर है, वे ज़रा सहमे और चुप हो गये।

'चाय साहब' - पूछता हुआ एक लड़का हिल रहे डिब्बेसे अपना संतुलन सम्हालता हुआ चल गया। उसीके पीछे पीछे 'चाय पीनेके बुरे नतीजे' नामकी पुस्तक बेचनेके लिये कफनी पहने हुए एक महाशय पधारे। ज़ब्र वे मुकुन्दसे समझाकर कहने लगे कि 'चाय पीना छोड़ दो तो स्वराज मिल जायेगा', तब उसे अपनी हँसीको रोकना असंभव हो गया। उन महाशयके चले जानेपर वह गाड़ीकी तालपर हिल रहे सामनेके भागकी ओर यों ही देखता रहा। उससे ज़रा हटकर बैठी हुई एक लड़कीकी ओर देखते ही उसे सुलभाकी याद हो आयी।

मेरी बहन कैसी होगी, सुलभा उसकी सेवा-शुश्रूषाके लिये रही होगी, या ऊबकर अपने घर चल दी होगी, इसके बारेमें उसे स्वयं ही कोई निर्णय करते न बना। उसे लगा कि कलका मेरा बर्ताव पागलपनका था। यह देखते ही कि मैं पूना जा रहा हूँ, सुलभाने मेरी बहनके पास रहना स्वीकार कर लिया यह उसके मनकी श्रेष्ठता है! परंतु अपने जीवनमें वह ऐसी चालमें क्या कभी एक घंटा भी रही होगी? बचपनके स्नेहका स्मरण करके वह बड़े आदरसे आयी, उसने ऐसी व्यवस्था कर दी जिससे मेरी बहनको इन्जेक्शन देकर आराम मिले। इतनेपर ही मुझे संतोष मान लेना चाहिए था।

सुलभाके हठीले स्वभावकी स्मृतियाँ उसकी आँखोंके सामने खड़ी हो गयीं। एक भैयादूजको मुझे अपने घर बुलाया। मेरा ख्याल था कि उसके घरकी नौकरानी-का भांजा होनेके नाते मुझे बाहर ही खानेके लिये बैठना पड़ेगा। मैं सोचने लगा -

जाऊँ या न जाऊँ ? इस तरह मैंने उस समय कितना सोचा था । लेकिन अन्तमें यह तय कर कि सुलभाकी बात नहीं टालनी चाहिए, मैं उसके घर गया । वह मेरे साथ ही खानेपर बैठी । मौसीने भी उससे कुछ नहीं कहा । शाम हो गयी थी, फिर भी मनोहरका कहीं पता ही न था । उस दिन सुलभाने मेरी आरती^१ उतारनेका हठ पकड़ लिया । गनीमत थी कि तात्यासाहब घर न थे ! नहीं तो उन्होंने सुलभाकी अच्छी मरगमत की होती ! मौसीजीके गले पड़कर सुलभाने उनसे मेरी आरती उतारनेकी अनुमति प्राप्त कर ली । आरती उतर जानेपर उसकी थालीमें क्या भेट डालूँ, यह मेरे सामने एक सवाल था । परंतु उसीने मुझे एक नोट दे दिया और वही मैंने उसकी थालीमें डाल दिया । मैं अपने स्थानसे उठा ही था तभी मनोहर आ पहुँचा । किसी दोस्तके घर गाना था । उसीमें निमग्न हो जानेके कारण उसे इतना विलंब हो गया था । आते ही वह डाँटकर बोला, - 'सुद्ध, चल, उतार आरती जल्दी !'

सुलभाने पूछा, - 'किसकी ?'

'अपने भाईकी !'

'कुछ समयके पहले ही मैं उसकी आरती उतार चुकी हूँ ।'

'किसकी ?'

'अपने भाईकी ।'

'यह क्या वाहियातपन मचाया है ?'

'किसने मचाया है ?'

'तूने, और किसने ? मौसीके लाड़ने तुझे बिलकुल बिगाड़ डाला है ! और ऊपरसे अँग्रेजी स्कूलकी पढ़ाई !'

'लेकिन आप भी तो वही पढ़ रहे हैं !'

'चल, चल, अब अपनी बहुत होशियारी न बघार । मुझे वक्त नहीं है । दो मिनटके भीतर अगर नहीं आयी तो मुझसे कोई भेट नहीं मिलेगी ।'

सुलभा हाथमें रखे नोटको नचाती हुई उसके सामने गयी ।

उस नोटको चटसे उसके हाथसे खींचकर वह चिल्लाया, - 'कहाँ है वह तेरा भाई ?'

१ महाराष्ट्रमें भाईदूजके दिन बहन अपने भाईकी आरती उतारती है और भाई उस आरतीमें अपनी बहनको भेंट स्वरूप कुछ उपहार देता है ।

तब वह मुझे करीब खींचती हुई ही मनोहर के पास ले गयी। इसके बाद मनोहरका वह गुस्सेसे तड़पना ! आगे तीन दिनके बाद सुलभाने मुझसे वह सब किस्सा कह सुनाया। भाईदूजके दिन जब सुलभाने उससे घर जल्दी लौट आनेके लिये कहा था, उस समय मनोहरने बड़े गर्वसे उत्तर दिया था, - 'भाई जब चाहेगा तब आयेगा। बहनको अपनी जगहपर हाज़िर रहना चाहिए'। मनोहरपर मात करनेके लिये उसने मुझे उस दिन जानबूझकर बुलाया, मौसीसे तात्यासाहबके द्वारा भेंटमें देनेके लिये दिया गया नोट उसने मौसीजीसे माँग लिया और मेरे साथ भैयादूज मनाई। बंबई आनेपर इस मधुर प्रसंगका स्मरण होकर मैंने अपनी बहनसे कहा भी था —

‘और भी एक बहन है मेरी !’

‘कहाँ ?’

‘शिरगोंवमें ।’

‘क्या, अपनी ही जातिकी है ?’

‘क्यों ?’

‘कुछ नहीं, यों ही पूछा !’

‘यों ही नहीं पूछोगी तुम ! ज़रूर तुम्हारे मनमें कोई बात आयी है !’

मेरी बहनने हँसकर कहा, - ‘वह बात नहीं। पढ़े लिखे लोगोंकी विवाह निश्चित करनेकी भाषा है यह !’

मैंने साश्चर्य उसकी ओर देखा।

उसने हालमें सुनी हुई एक घटना मुझसे कही : कोंकणके एक विद्वान महाशय बंबईमें एक लड़कीके साथ बहुत दिनोंसे रोज़ घूमने जाया करते थे। यदि उनसे कोई उस लड़कीके बारेमें पूछता, तो कहते, वह मेरी दूरकी बहन लगती है। अन्तमें उन्होंने उसी लड़कीके साथ विवाह करके सब लोगोंको चकित कर दिया।

इस स्मृतिसे मुकुन्दको मन-ही-मन हँसी आयी। परंतु उसके बाद ही यह देखकर कि मेरी इस कल्पित बहनको मेरी सच्ची बहनकी सेवा-शुश्रूषाके लिये मज़दूरोकी गंदी बस्तीमें रहनेका विलक्षण संयोग आया है, इस विषयका आश्चर्य भी वहाँ नाचने लगा। क्षणभर उसे यह संदेह हुआ कि बहनकी तबीयत कहीं और अधिक तो न बिगड़ गयी हो। परंतु उसने यह कहकर अपने मनको संतोष दिया कि सुलभा जैसी डॉक्टरनी उसके पास होते हुए चिन्ता करनेकी क्या ज़रूरत है ? मेरे विषयमें

सुलभाकी क्या धारणा हुई होगी, इस विषयमें जरूर वह कोई तर्क न कर सका। मुझे भी निश्चित रूपसे यह कहाँ पता था कि पूनामें मेरा क्या काम है? इसलिये मैंने उससे इस संबंधमें कुछ भी नहीं कहा। और पता भी होता, तिसपर भी कुछ बातें गुप्त रखनी ही पड़ती हैं कि नहीं?

उसकी ऐंठी हुई पल्लोंपर निद्राने अपनी मायाका हाथ फेरा। उसने जागकर देखा, तो लोनावला आ गया था। हटकर बैठे हुए दोनों पठान उठे और डिब्बेसे उतरकर बाहर चले गये। वे जब फिरसे डिब्बेमें लौटकर आये, तो मुकुन्दको लगा कि वे किसी सुंदर लड़कीके बारेमें ही बातें कर रहे होंगे। उसके मनमें यह शक हुआ कि ये बदमाश किसी लड़कीको भगाकर तो नहीं ले जा रहे हैं। कर्जत स्टेशनपर उन पठानोंके उतरते ही वह भी उनके पीछे पीछे उतर पड़ा।

• • •

मुकुन्दके पूना-चले जानेपर, कितनी ही देरतक सुलभा विलक्षण खुशीमें थी। धुँघले प्रकाशवाला वह कमरा, उस कमरेका कवाड़ीकी दूकानको शोभा देनेवाला रही और पुराना सामान, एक फटी हुई धोती पहनकर गूदड़ीपर पड़ी हुई मुकुन्दकी बीमार बहन—इन सब बातोंकी जैसे उसे कोई परवाह ही न थी। मुकुन्द उसे बहुत बरसोंके बाद मिला था। और इस कल्पनासे ही कि बचपनकी तरह आज भी मैं उसके लिये उपयोगी हो रही हूँ, वह आनंदित हो गयी थी। उस विलक्षण भाईदूजका स्मरण होते ही उसे बीचहीमें हँसी आ गयी। एक बार उसने संस्कृतकी अपनी एक शंका मुकुन्दसे पूछी थी, उसकी उसे एकाएक याद हो आयी। भांडारकरकी पुस्तकके उसने चौबीस पाठ पूरे न पढ़े थे और वह एकदम आखिरी पाठके श्लोकका अर्थ करनेकी कोशिश करने लगी थी। उसमेंके ‘का ते कान्ता’ का अर्थ उसने धीरे धीरे उसे समझाया था। वह ज्ञात होते ही उसने एकदम उसकी ओर देखते हुए कहा था—‘तुम्हारी पत्नी कौन है?’ और उसने उत्तर दिया था—‘मैं विवाह ही करना नहीं चाहता।’ इस स्मृतिके बाद ही मुकुन्दके द्वारा शालाके स्नेह-सम्मेलनमें किये गये अभिनय उसकी आँखोंके सामने खड़े हो गये। एक बार अश्वत्थामा और कर्णके संवादमें वह कर्ण बना था। ‘दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्’ वाक्यको कहते समय उसके चेहरेपर विलक्षण आत्मविश्वास उमड़ पड़ा था! कहते हैं, दूसरे दिन शास्त्रीजीने इसके लिये कक्षामें उसे बधायी दी थी। बादमें दूसरे साल ‘शाकुन्तल’में उसने मछुवेका काम किया

था। उस मछुवेको पीटते-पीटते ही रंगभूमिपर लते हैं। सारी शालामें सबसे ताकत-वर और क्रूर चेहरेके दो लड़के मछुवेको बाँधकर लानेवाले सिपाहियोंका पार्ट करनेके लिये चुने गये थे। वे मुकुन्दको मारने लगे। तब मेरी आँखें अनजाने आँसुओंसे भर आयी थीं। मुकुन्दका चेहरा भी कितना दयनीय दीख रहा था उस समय! इसके बाद मैंने उससे पुछा था,— ‘आखिर तुम्हें यह काम इतनी अच्छी तरहसे सधा कैसे?’ उसने उत्तर दिया था,— ‘इसमें सधनेकी बात ही क्या है? क्या गरीबोंको रोज़ यही अनुभव नहीं होता?’

जब उसका यह वाक्य मुझे पूरी तरह जँच गया, वह प्रसंग! किसीके आग्रहसे तात्याने अपने घर एक गायकका जलसा किया था। मौसीजीने रातको कॉफीके प्याले धोनेके लिये नौकरानीको घर रख लिया था। मुकुन्द अपनी मौसीको खोज़ने घर आया। जब उससे कहा कि आज गाना है, तो वह भी रह गया। मनोहरके दो-चार धनी दोस्त जलसेमें आये थे। वह इतमीनानके साथ मसनदोंसे टिककर बैठे हुए थे। शालामें सबसे अधिक होशियार विद्यार्थी होते हुए भी मनोहरने मुकुन्दको भीतर बैठनेके लिये नहीं बुलाया। वह थोड़ी देर इधर-उधर चक्कर काटता रहा और अँधेरेमें ही तुरंत घर जाने लगा। मैंने उसे अंतिम सीढ़ीपर पकड़ा। वह आगे न बढ़ा, परंतु पीछे भी न लौटा। जलसेका कार्यक्रम समाप्त होतेतक हम दोनों उसी सीढ़ीपर बैठे रहे। इसके बाद कॉफी पीनेको भी वह तैयार न था। परंतु जब मैंने अपने गलेकी सौगंध दिलायी, तब कहीं उसने एक प्याला कॉफी ली। परंतु उसने ‘सुल्टाई, तुम जन्म-भर इसी तरह बनी रहोगी क्या?’ वाक्य उस समय क्यों कहा था यह मेरी समझमें न आया।

जब सुलभा कॉलेजमें गयी तब उसके ध्यानमें आने लगा कि शालामें रहते हुए मुकुन्दकी ओर उसका इतना खिंचवा क्यों था? उसके अन्तःकरणकी महत्वाकांक्षाकी ज्योति अनजाने उसने प्रज्वलित कर दी थी। दूसरी अँग्रेज़ीमें जातेतक शालामें हर साल पास होते रहनेवाली एक धनी वकीलकी लड़कीकी हैसियतसे ही उसकी कीमत थी। वकालत, ब्रह्मविद्या, नरमदल राजनीति इत्यादि अष्टावधानोंको सम्हालते-सम्हालते तात्यासाहबकी नाकमें दम आ जाता था। इसके कारण लड़कोंकी पढ़ाईका पता उन्हें सालाना परीक्षा-फल निकलनेपर ही लगता। मनोहर सर-स्वतीजीकी हाथमें रखी वीणापर लुब्ध था, परंतु उससे यह पहेली कभी भी हल न हुई कि उस आर्यदेवीको अँग्रेज़ी भाषाके पीछे क्यों पागल हो जाना चाहिए?

वीणावादनका गणितसे क्या संबंध है, यह प्रश्न भी उसे उसी प्रकार तंग किया करता था। वह चित्र साधारण अच्छा बना लिया करता था। वह हमेशा कहा करता कि बड़े होनेपर मैं सरस्वतीका एक अपूर्व चित्र बनानेवाला हूँ। उसमें सरस्वतीको एक बुढ़िया दिखाऊँगा, उसके हाथमें वीणाके बदले एक छड़ी दूँगा, उसे मोरपर न बैठाकर बड़े बड़े शब्द-कोषों और मोटी मोटी पुस्तकोंके ढेरपर बैठाऊँगा।

मनोहरका पढ़ाईसे इस तरह विपरीत संबंध होनेके कारण, सुलभा पहले पहले पढ़ाईके बारेमें उदासीन ही रहा करती थी। परंतु जब वह दूसरी अँग्रेज़ीमें थी, तब पारितोषिक वितरण समारोहके समय तालियोंकी कड़कड़ाहटके बीच मामूली पोशाक पहने हुए मुकुन्दको अपनी कक्षाका पहला पारितोषिक लेते हुए उसने देखा। अपनी मौसीके साथ मुकुन्द तात्यासाहबके घर भी कभी कभी जाया करता था। आगे चलकर सुलभाको अपनी पढ़ाईमें उससे मदद भी मिलने लगी। कॉलेजमें जानेपर सुलभाके मनमें अनेक बार आता कि यदि मुकुन्द मेरे जीवनमें न आया होता, तो मैं मैट्रिक भी पास न होती, और फिर किसी वकील या डॉक्टरकी पत्नी बनकर, उस नातेसे किसी छोटे-से शहरमें, वकीलन, या डॉक्टरनकी हैसियतसे ज़िंदगी काटती रहती। परंतु आगे मुकुन्दकी मौसीकी मृत्युके बाद, उसे कभी यह पता न चला कि वह कहाँ है और क्या करता है? लगातार कम-से-कम चार-पाँच सालोंतक हर साल यूनिवर्सिटिके परीक्षा-फलोंको पढ़ते समय उसे निश्चित रूपसे मुकुन्दका स्मरण हो आता। किसी भी परीक्षामें उसका नाम कभी न देखनेके कारण, उसे आश्चर्य भी होता। परंतु डॉक्टरी पढ़ने बंबई आनेपर, वह उसे प्रायः भूल-सी ही गयी। आगे चलकर, विजयसे उसका परिचय धीरे धीरे बढ़ता गया, और मुकुन्द सुलभाके जीवनका एक स्वप्न मात्र रह गया था। आज एकाएक वह स्वप्न फिरसे सत्य-सृष्टिमें उतर आया था।

मुकुन्दकी बहनके जाग जानेके कारण, सुलभाकी विचार शृंखला टूट गयी। यह पता चलते ही कि सुलभा कौन है, कृतज्ञतासे उसकी आँखोंमें आँसू आ गये। उसे आराम मिले इसलिये सुलभा द्वार भेड़कर बाहर आयी। समीपका तंग ज़ीना, दिन-दहाड़े कमरेके सामने दीख रहा अंधेरा, चीखनेवाले लड़केका दूर कहींसे आ रहा विचित्र स्वर, और विलक्षण महकका मिश्रण ले आनेके कारण त्रासदायक लगनेवाला हवाका झोंका — इन सबके कारण उसका मन अप्रसन्न हो गया। उसे लगा,

मैंने बड़ी भूल की जो मुकुन्दके कहनेसे यहाँ रह जाना स्वीकार कर लिया। उसे ऐसा लगा जैसे काँइसे आच्छादित और मेंढकोंसे भरे हुए पोखरेमें डूबकर वह नहा रही है। इसी समय एक बुढ़िया पत्र पढ़वानेके लिये उसके पास आयी। वह पत्र मोडी^१-में लिखा हुआ था। सुलभा स्वयं अपने हस्ताक्षर भी मोडीमें नहीं कर सकती थी। परंतु तात्यासाहब हमेशा अपने पत्र मोडीमें ही लिखा करते थे, इसलिये, वह मोडी लिपि साधारण तौरपर पढ़ लिया करती थी। काँडेमें लिखे शब्दोंको उसने पढ़ा, परंतु किसी भी तरह वह पूरा मतलब नहीं निकाल पा रही थी। अन्तमें बुढ़ियासे ही स्पष्टीकरण हुआ। कोंकणमें रहनेवाली उसकी बहूको एक भूत सता रहा था। उसे वशीभूत करनेके लिये किसी देवकी मनौती मानी थी। ओझाने पूजाके लिये आवश्यक चीज़ोंकी—भूसासे लेकर दुअत्रीतक—एक लंबी फेहरिस्त दे दी थी। पत्रके अन्तमें लिखा था कि बंबईसे रुपये आते ही भूतको संतुष्ट किया जा सकेगा। पत्रके इस अंतिम मज़मूनको पढ़कर, सुलभाका मन खिन्न हो गया। उसकी दुनियासे यह दुनिया पूर्णतया भिन्न थी। इस छोट-से पत्रसे उसे प्रतीत हो गया, कि डॉक्टरनी होकर दीन-दुखियोंका इलाज करनेका मेरा ध्येय कितना संकुचित है। उसे लगा, इस विपैले समुद्रमें करोड़ों लोग पीढ़ियोंसे गोते खा रहे हैं! और मुझे एक दिन भी इस बस्तीमें बिताना कठिन मालूम होता है। क्या यह उचित है?

जो हो, पर मुकुन्दके आतेतक वहाँसे न हटनेका उसने निश्चय किया। शामको मुकुन्दका बहनोई मिलसे घर आया। यह जानकर कि मुकुन्द पूना चल दिया है, उसने उसे गालियाँ तक दे डालीं। उसकी पत्नीने यदि उसे इशारा न किया होता, तो वह और भी बहुत बकता रहता। सुलभाको संकोच न हो इसलिये वह कमरेके बाहर जाकर सोया।

परंतु उस कमरेमें सुलभाको नींद आना ही संभव न था। उसे ऐसा हो गया था जैसे जेलकी कोठरीमें उसे किसीने एकदम लाकर डाल दिया है। पड़े-पड़े उसे अच्छा नहीं लगता था। इसलिये यह देखनेके लिये कि मुकुन्द दोपहरको जिस ट्रंकसे थोड़ा-सा सामान निकालकर अपने साथ ले गया था, उसमें कोई पुस्तकें भी हैं क्या, वह उठी। ट्रंक खुला ही था। उसे दो-तीन अँग्रेजी पुस्तकें मिलीं। परंतु

१ मराठी भाषाकी एक और लिपि जिसके अक्षर एक दूसरेसे जोड़कर लिखे जाते हैं।

नामपरसे ही वे उसे पसंद न आयीं। उसे लगा, उनमें कोई रूक्ष चर्चा होगी। पुस्तकें खोजते-खोजते, एक मोटी नोट-बुक उसके हाथ लगी। उसे शक हुआ कि मुकुन्द क्या कोई उपन्यास लिख रहा है? यदि ऐसा हो तो कम-से-कम मेरा थोड़ा वक्त तो मज्जेसे कट जायेगा। ऐसा सोचकर उसने वह नोट-बुक खोली। दीयेके पास जाकर उसने पहले ही पृष्ठपर लिखा हुआ वाक्य पढ़ा—‘जिसके पास हृदय हो वही इसे लेखककी अनुमतिसे पढ़े।’ सुलभाको हँसी आयी। उसकी जिज्ञासा बढ़ी। उसने बीचहीका एक पन्ना खोला और वह पढ़ने लगी—‘तरुणीके शरीरका पहला स्पर्श कितना उन्मादक होता है इसका मुझे आज पता चला। हम बड़े अभिमानसे कहते हैं कि मनुष्यने निसर्गको गुलाम बना लिया है। परंतु मुझे पूर्ण रूपसे प्रतीत हो गया कि मनुष्यका यह अभिमान बिलकुल व्यर्थ है। जबसे उस लड़कीको कमरेमें लाया हूँ तबसे—’

सुलभाने वह नोट-बुक बन्द कर दी। क्षणार्धमें मुकुन्दके विषयमें एक प्रकारका तिरस्कार लगने लगा उसे। सारी रात उसने बिस्तरपर तड़पकर काटी। उसके मनमें आया कि सुबह होते ही यहाँसे चली जाऊँ। परंतु इस भावनासे कि मुकुन्दके आनेके बाद जानेमें ही मेरी जीत है, वह वहाँ ठहरी रही। इस कल्पनासे कि एक दिनके लिये जानबूझकर उसने यह जेल स्वीकार कर ली है, वह अपने सारे व्यवहार कर रही थी।

• • •

गाड़ीका वक्त होते ही उसका मन अधीर हो गया। उसके मनमें यह विचार भी आ गया कि उस तरुणीके विषयमें मुकुन्दको कुछ ताना देनेके बाद ही यहाँसे जाऊँ। पर वह क्षण-भरके लिये ही।

ज़ीनेपर पैरोंकी आवाज़ हुई। मुकुन्द तो ऊपर आ ही रहा था। परंतु उसके पीछे—सुलभा चकित हो गयी। वह एक तरुण लड़कीको साथ लेकर आया था। सुलभाको देखते ही वह लड़की झटसे आगे बढ़ी और हँसते-हँसते बोली, — ‘लगता है बचपनमें पेट-भर आँखमिचौली नहीं खेली थीं, सुलभाताई!’

सुलभा उसकी ओर देखती ही रह गयी। वह लड़की गर्दन हिलाती हुई बोली, — ‘तुम्हारे लिये विजयबाबू उतरे पूनामें और आप तो हैं यहाँ बंबईमें!’

सुलभाको असमंजसमें पड़ी हुई देखकर मुकुन्दने कहा, — ‘ये हैं केशरदेवी!’

‘ये तुम्हारी - आपकी कौन ?’

उस स्वरमें कुछ ऐसा रूखापन भरा हुआ था कि मुकुन्द चौंककर स्तब्ध ही रह गया। मुलुभाकी आँखोंके सामने अक्षर नाच रहे थे - **स्त्रीका पहला ही स्पर्श कितना उन्मादक होता है !**

● ● ●

५ दो रहस्य

केशरकी ओर टकटकी लगाकर सुलभाने 'ये तुम्हारी - आपकी कौन ?' प्रश्न किया था। उसके 'तुम' का तुरंत आदरसूचक 'आप' में हुआ रूपान्तर मुकुन्दके ध्यानमें न आया हो, यह बात न थी। वैसे उसने इन शब्दोंका अर्थ यही किया होता कि पराये आदमीके सामने मुझे तुम कहकर पुकारना उचित नहीं है। परंतु वे शब्द जिस स्वरमें कहे गये थे, उसमें विलक्षण तीक्ष्णता थी। मुकुन्दके स्वाभिमानी मनको वह चट महसूस हुई। वह ताड़ गया कि सुलभा मुझपर नाराज़ हो गयी है। उसके मनमें आया, आम्रवृक्षपर रहनेवाली कोयलको यदि कबूतरोंके दरबेमें रग्व दें, तो उसकी इसी तरहकी स्थिति हो जायेगी !

सुलभा केशरकी ओर बड़ी तीखी नज़रसे देख रही थी। कुंद वातावरणमें एकदम धूप पड़ जाये तो आनंद होता है। परस्पर परिचय न होनेके कारण असमंजसमें पड़ी हुई वे दोनों आपसमें खुलकर बातें करने लगे, इसलिये मुकुन्द जानबूझकर बोला, - 'पुरानी कहावतोंपर मनुष्य पहले विश्वास नहीं करता। परंतु अनुभवसे —'

'किस कहावतका अनुभव हुआ तुम्हें इस समय ?' - केशरने पूछा।

'दस पुरुष एक स्थानपर रह जायेंगे, पर दो स्त्रियाँ ज़रूर —'

सुलभाके ध्यानमें आया कि मैं अपने मनका संतुलन खो रही हूँ। स्वयं अपने आपको समझालनेके लिये मुँहपर बनावटी हँसी लाती हुई वह बोली,—‘ इसका कारण है ! ’

‘ कौनसा ? ’—अपनी डॉक्टरनी मित्र कहकर मुकुन्दने जिसका पहले ही परिचय करा दिया था, वह सुलभा स्त्रियोंके झगड़ातू स्वभावका समर्थन कर रही है, यह देखकर केशरको बड़ा आश्चर्य हुआ।

‘ दो तलवारें क्या कभी एक म्यानमें रह सकती हैं ? ’—सुलभा मुकुन्दकी ओर देखती हुई बोली।

सुलभाके स्वरमें कुछ समयके पहले जो तीक्ष्णता थी उसका मुकुन्दको स्मरण हो आया। प्रतिश्लेष करनेकी इच्छा उसके मनमें तीव्र हुई, परंतु उसे रोककर वह हँसते हँसते बोला,—‘ तो फिर कहना चाहिए कि हथियारोंके कानूनके विरुद्ध यों ही नेता लोग चिह्लाते रहते हैं ! ’

मुकुन्द, उसके पीछे केशर और उसके बाद सुलभा कमरेमें गये। पहले केशरको सामनेसे देखकर सुलभाके ध्यानमें यह बात आ गयी थी कि उसकी आँखें अत्यन्त मोहक हैं। अब उसको पीछेसे देखते हुए उसे यह जाननेमें देर न लगी कि उसकी शरीरकी गठन कितनी आकर्षक है और चलते समय भी वह कितने शानसे कदम रखती है। उसकी पीठपर होनेवाला वेणीका मधुर नृत्य देखते ही अनजाने सुलभाका हाथ अपने केशोंपर पहुँचा। गंदी चालकी उस धाँधलीमें आज उसे किसी भी तरहसे सीधा-सादा जूड़ा ही बाँध लेना पड़ा था।

कमरेमें प्रवेश करते ही केशरने इधर-उधर देखा। मुकुन्दके ध्यानमें आ गया कि बैठनेके लिये वह कुरसी खोज रही है। एक तरफ पुरानी जाजम लपेटकर रखी हुई थी। मुकुन्द उसको लेकर बिछानेकी सोच रहा था।

इसी समय आड़े पड़े हुए एक खाली मिट्टीके तेलके पीपेको देखकर केशर उसपर जाकर बैठ गयी और हँसते हँसते बोली,—‘ क्यों सुलभा दीदी, कैसी रही मेरी कुरसी ? ’

उसकी इस बालवृत्तिसे सुलभाको क्षण-भर ईर्ष्या हुई। परंतु वह यह न समझ पायी कि ज़रीकी साड़ी पहननेवाली यह लड़की इस घरकी दरिद्री गृहस्थीके साथ झट-से एकरस कैसे हो गयी। बीमार बहनको चिन्ताजनक स्थितिमें छोड़कर

मुकुन्द कल पूना क्या इसी लड़कीको लाने गया था ? इस लड़कीकी ओर विजयकी कहाँकी पहचान है ? इसकी जाति - शिक्षा —

मुकुन्दकी नोट-बुकके वे विलक्षण वाक्य—अँधेरेमें बिजली चमक जावे उस तरह—उसकी आँखोंके सामनेसे नृत्य करते हुए चले गये : ‘स्त्रीका पहला स्पर्श कितना उन्मादक होता है ?’ वह स्त्री कहीं यह केशर ही तो नहीं है ?

यह देखकर कि सुलभा द्वारमें ही खड़ी है, मुकुन्दने कहा, — ‘भीतर आ जाओ न ?’

‘जहाँ हूँ वहीं ठीक हूँ !’

केशर बोली, — ‘इधर आओ न ! प्रातिका आधा हिस्सा तुम्हें देनेके लिये तैयार हूँ मैं ।’ तुरंत ही उस पीपेका कुछ हिस्सा उसने सुलभाके लिये छोड़ भी दिया ।

परंतु सुलभा द्वारमें ही खड़ी रही । मुकुन्द बहनके पैरोंको सहला रहा था । कृतज्ञता-भरी दृष्टिसे सुलभाकी ओर देखता हुआ वह बोला, — ‘दीदीका स्वास्थ्य ठीक दीख रहा है आज ! आगे कभी अगर मैं बीमार हुआ, तो तुम्हारे सिवा और किसीकी दवा ही न लूँगा अब !’

किंचित हँसती हुई सुलभा बोली, — ‘दीदीका स्वास्थ्य आज थोड़ा सुधरा है । परंतु —’ जैसे वह यह सोच रही थी कि जो कहना है वह किस तरह कहूँ । अन्तमें निश्चय करके उसने कहा, — ‘उन्हें दो बातोंकी ज़रूरत है ।’

‘कौन कौनसी ?’

‘पहली तो यह है कि उन्हें कहीं अच्छे जलवायुकी जगह ले जाना चाहिए ।’

मुकुन्दने सिर्फ ‘हूँ’ कहा । परंतु उस हुंकारने जैसे अपनी जवान खोल दी हो । उससे यही प्रश्न प्रकट हो रहा था कि बंबईकी भरपूर हवापर भी जिन मनुष्योंका हक नहीं, उन्हें दूसरी जगहकी अच्छी हवा कहाँ मिलेगी ?

‘दूसरी कौनसी बात है ?’—सुलभाको खासोश देखकर उसने पूछा ।

‘पूर्ण विश्राम ।’

अब अवश्य मुकुन्दका अपने मनपरका अधिकार जाता रहा । वह उदास स्वरमें बोला, — ‘मज़दूरोंको वह मरनेके बाद ही मिल सकता है ।’ उसका ध्यान एकदम बहनकी ओर गया । यह जानकर कि जो मुझे नहीं कहना चाहिए था, वह मैं कह

गया, बहनकी पलकें गीली हो गयीं। सांत्वनाके स्वरमें वह उससे बोला, — ‘दीदी, तुम जानती ही हो कि मैं जो मुँहमें आता है सो बक देता हूँ।’

दीदीने क्षीण हास्य किया।

उस हास्यमें मुकुन्दके द्वारा कहा गया भयंकर सत्य सुलभाको और भी अधिक भीषण प्रतीत हुआ। उसने केशरकी ओर देखा। वह मुकुन्दकी ओर स्निग्ध दृष्टीसे देख रही थी। अपना बैग, छाता आदि उठाती हुई सुलभा बोली, ‘तो अब मैं चलती हूँ।’

गंभीर बनी हुई केशर एकदम विनोद-प्रिय बन गयी, — ‘मैं कोई यहाँ रहने नहीं आयी हूँ।’ उसके इन शब्दोंको सुनकर सुलभाको हँसी आये बगैर न रही ?

‘मुझे पूना जाना है।’ सुलभाने कहा।

‘और मुझे भी बंबई जाना है।’

‘मेरे पिताजीका फिरसे एक तार आ धमकेगा पूनासे !’

‘लेकिन मेरे तो पिताजी स्वयं ही आ जायेंगे मुझे खोजनेको।’ केशरजी अभीतक नहीं आयी हैं — इस आशयका हमारे मुनीमजीने तो एक तार भी टोक दिया होगा शिरगाँवको अबतक। बेचारा कार लेकर बोरीबंदर आया होगा और मुझे गाड़ीमें न देखकर घबड़ा गया होगा। मैं सीधी आगे चली जाती, तो अच्छा होता, है न मुकुन्द ?’

सुलभाकी जिज्ञासा क्षण-क्षणमें बढ़ रही थी। यह स्पष्ट था कि केशर और विजयका परिचय शिरगाँवमें हुआ था। परंतु उसके पिता शिरगाँवमें क्या करते हैं ? उससे मुकुन्दकी पहचान कैसे और कहाँ हुई ? बोरीबंदरपर उतरनेवाली यह लड़की बीचहीमें क्यों उतर पड़ी ? उसके दिमागमें प्रश्नोंने बवंडर खड़ा कर दिया। और एकदम उसे लगा — मुकुन्द और केशरके बारेमें इतना विचार करके स्वयं अपनेको त्रास कर लेनेसे क्या लाभ ? हरएकको प्रति दिन बुरे-भले स्वप्न दीखते हैं। परंतु उन्हींके बारेमें सोचते रहनेमें चतुर मनुष्य अपना समय नहीं खोता।

मुकुन्द किसी विचारमें खो गया था। दीदीके विषयमें सुलभाके मनमें करुणाके सिवा दूसरी किसी भी भावनाके लिये स्थान न था। उसने मनीबैग खोला, एक नोट निकाला और दीदीके सिरहाने जाकर वह बोली, — ‘दीदी, मैं जा रही हूँ !’ यह कहते-कहते उसने वह नोट दीदीके हाथमें दे दिया।

दीदीमें अधिक ताकत न थी। फिर भी तुरंत ही हाथ झटकाकर नोटको अलग

करती हुई वह बोली, — ‘सगी बहन भी न करती उतनी तुमने मेरी सेवा की है। परंतु यह विष — यह विष मुझे नहीं चाहिए। यदि ज़िंदगी रह गयी, तो तुम्हारे एहसान —’

सुलभा एकदम नीचे बैठ गयी। दीदीके हाथको मज़बूत पकड़कर वह बोली, — ‘इस तरह नहीं बोला जाता, दीदी ! मुकुन्दको मैंने बचपनसे पहचान लिया है। तब मेरा और तुम्हारा बहनका ही नाता नहीं है क्या ? तुम्हें मेरी सौगंद है। इसे ले लो। यह तो बच्चोंके लिये दे रही हूँ —’

दीदी गदगद हो गयी। उसकी आँखोंमें आँसू भर आये।

सुलभा उठी और मनीषेण बन्द करने लगी। एकदम उसके मुँहसे उद्गार बाहर आये, — ‘ओ माँ ?’

मुकुन्द, केशर और दीदी उसके आश्चर्यका कारण समझ नहीं पा रही थीं। परंतु वह तुरंत ही हँसकर बोली, — ‘कितनी भुलक्कड़ हूँ मैं ! एक सहेलीके आग्रहसे किसी जलसेके दो टिकट खरीद लिये थे मैंने। शायद वह जलसा कल हो रहा है। मेरे साथ ये टिकट भी आज पूना चले जाते। अच्छा हुआ ! तुम दोनों हो आना कल जलसेमें।’

अंतिम वाक्य कहते हुए अपने मनमें कितनी भावनाओंका संकर हो गया है इसकी सुलभाको कल्पना भी न थी। वह टिकट बाहर निकाले इससे पहले ही केशरने कहा, — ‘हम दोनों कल जलसेमें जानेवाले हैं। पर हमें टिकटकी ज़रूरत नहीं है।’

‘क्यों, क्या पहलेसे ही खरीदकर रख लिये हैं ?’

‘अँ हँ। हमें खरीदना ही नहीं है।’

‘मतलब ?’

‘कलके जलसेमें मैं ही तो गा रही हूँ।’

• • •

केशरके साथ उसके बँगलेपर जानेकी मुकुन्द द्वारा की गयी प्रार्थनाको सुलभाने अस्वीकार न किया। यदि संभव होता तो वह स्वयं ही जाता। परंतु सुलभाकी उदारतामें कल जो ज्वार आया था, वह आज उतर गया है, यह वह तुरंत पहचान गया और चतुराईसे बहनके पास खुद ही बैठनेका उसने निश्चय किया। दूसरेके मनकी अस्पष्ट भावनाओंको भी सम्मानित करनेकी उसकी इस वृत्तिकी सराहना

किये बिना सुलभासे न रहा गया। दो वर्ष पहले विजयके सहवासमें उसे जो एक साधारण-सा अनुभव हुआ था, वह इस समय उसके मनःपटपर सूचक रीतिसे चमक गया। विजय और मैं—दोनोंने घूमने जानेका निश्चय किया था। ऐन वक्तपर मेरी एक सहेली जो सिनेमामें चली गयी थी मुझसे मिलने आ गयी। एक तो पहलेसे ही वह बड़ी बातूनी थी और ऊपरसे अब अभिनेत्री बन गयी थी! गरदनको लचकसे झुकाकर, नखरेसे होंठोंको आगे खींचकर, बीचहीमें छोटे-से रुमालसे पसीना पोंछनेका नाट्य करके, उसने हमारा खूब मनोरंजन किया। त्रिल्लीका बच्चा जब प्रथम बार ही दुनिया देखने लगता है तो वह लगातार आड़ा-टेढ़ा नाचता रहता है। उसकी भी दशा उसी तरह हो गयी थी। पहले तो उसके चेहरेकी ओर देखता हुआ विजय चुपचाप बैठा रहा। फिर ज़रूर वह कुछ झल्लया-सा और उससे बोला,—‘आत्म-चरित्र लिखने लायक काफ़ी मसाला जुट गया हुआ दीखता है आपके पास!’ पर इस तानेका उसपर कोई असर न हुआ। वह दोशमें न आयी। टेंपो, क्लोज़-अप, ऍगल, ग्रेटा गाबों, नॉर्मा शिअरर, बॉक्स, रिकार्ड इत्यादि विविध शब्दोंका जैसे सम्मेलन ही भरा दिया उसने। विजय होंठ चबाकर उससे बोला,—‘यहाँ हमारे पास इस समय सिनेमाका शब्द-कोश होना चाहिए था। हम तो भई, इनमेंसे एक भी शब्दको खाक नहीं समझे।’

‘आप समझ ही नहीं सकेंगे।’ उत्तर देकर वह दूने उत्साहसे अपनी कलाकी जानकारी देने लगी। वर्षाकी पहली झड़ीमें मज़ा आता है, उसके बादकी दो-चार झड़ियोंसे आनंद प्राप्त होता है, परंतु उसके बाद ज़रूर बारिशकी तड़फड़ आवाज़ असह्य होने लगती है। उसकी बातोंका भी यही हो गया था। मैंने जुम्हाई लेकर देखी, परंतु इससे उसे शायद यह लगा कि मैं आश्चर्यचकित हो गयी हूँ।

इसी समय विजयबाबू एकदम उठे और थोड़ी दूरपर पड़े हुए एक अँग्रेज़ी मासिक पत्रको उठाकर उसके पन्ने उलटाते हुए बोले,—‘अरे वाह, क्या क्या नयी बातें ईज़ाद हो रही हैं यूरोपमें?’

उसने अपनी गाड़ीको रोककर कहा,—‘कौनसी नयी खोज हुई है?’

‘एक तालेकी। पर यह मामूली ताला नहीं है!’

‘फिर कैसा है?’

‘मनुष्यके मुँहपर लगानेका ताला है! कितना भी मढ़ंगा हो, पर मैं तो इसे खरीदकर हमेशा अपने जेबमें रखे रहूँगा। जिससे आज जैसा भयंकर प्रसंग—’

आगेका सारा भयंकर प्रसंग सुलभाकी आँखोंके सामने खड़ा हो गया। किसी फिल्ममें न सधा होगा ऐसा गुस्सेका अभिनय उस अभिनेत्रीने कर दिखाया। एक दृष्टिसे विजयकी भी भूल थी उसमें। उसको स्वयं निश्चित होकर वहाँसे उठकर चले जाना चाहिए था। किन्तु उसके मुँहपर ऐसी बात कहना -- इसके बाद भी उसका उसे कोई खेद न हुआ। उलटे वह बोला, -- 'बड़ी तनतनाती हुई चली गयी है, तो चली जाये। कौन मुझे उससे शादी करनी है !'

टैक्सी आतेतक सुलभा विजयके उस समयके बर्ताव और मुकुन्दके इस समयके बर्तावकी तुलना कर रही थी। मुकुन्दके आते ही केशर बोली, -- 'अजी जनाव, आप अपना पता लिख दीजिये मुझे। नहीं तो दोगे पहले जैसा झाँसा !' मुकुन्दने अपना ट्रंक खोला। कागज़ कहीं जल्दी मिल नहीं रहा था। इसलिये ऊपर ही जो नोट-बुक रखी हुई थी उसको उसने उठा लिया। उसमेंसे एक पन्ना फाड़ा और उसपर अपना पता लिखकर वह कागज़ केशरके हवाले किया। उसे लेकर केशर बोली, -- 'और एक काम है !'

'क्या ?'

'वह नोट-बुक चाहिए मुझे !'

मुकुन्द उसकी ओर देखता ही रहा !

'इन्सानको इतना कंजूस नहीं होना चाहिए। चार आनेमें कहीं भी मिल जायेगी ऐसी नोट-बुक !'

'तो चार आने ही मैं दिये देता हूँ तुम्हें !'

'मैं उसे हमेशाके लिये नहीं ले जा रही हूँ। अब तो हुई आपकी तसल्ली ?'

'परंतु तुम्हें इसकी ज़रूरत क्या है ?'

'आजकल बड़े आदमियोंमें गिनती होने लगी है मेरी !'

'न होनेको क्या हो गया ? पिताजीकी कराचीमें मिलें हैं। बंबईमें स्टूडियो और बंगले हैं ! अब शिरगाँवमें भी एक कारखाना खुल रहा है ! ऐसा बड़ा व्यक्ति आज हमारे यहाँ पधारा है। चाहो तो दीदीकी तरफसे मैं तुम्हें धन्यवाद दिये देता हूँ।'

'बड़े आदमीका ऑटोग्राफ़ लेना तो दूर रहा ! चलो, लाओ वह नोट-बुक इधर। मैं अपना पता लिखे देती हूँ। यानी अगर कभी भूले-भटके मेरी याद आ ही गयी तो --'

मुकुन्दने नोट-बुकका आखिरी पन्ना खोलकर उसके सम्मुख बढ़ा दिया। परंतु केशरने उसके सारे पन्ने खोलकर जल्दी जल्दी उलटाकर देख ही डाले। वह आनंदसे बोली, — ‘लगता है कोई कहानी या उपन्यास लिखा जा रहा है!’

‘हाँ।’

‘क्या है उसमें?’

‘और सब है। सिर्फ किसीका किसीसे किसी भी तरह प्रेम नहीं होता। इस-लिये चुंबन नहीं —’

‘हुश! ऐसी कैसी कहानी है यह? उस दिन पिताजीके पास फिल्मके लिये एक कहानी लेकर एक लेखक आया था। प्रेम ही प्रेम था उसमें। रेलगाड़ीमें प्रेम, अस्पतालमें प्रेम, बागमें प्रेम, जेलखानेमें प्रेम।’

‘जेलखानेमें?’ — मुकुन्दने पूछा।

‘हाँ, नायकको जेलकी सज़ा हो जाती है। वह जेलमें जाता है। गुप्त रीतिसे अपनी प्रेयसीका फोटो अपने पास रखता है — उसकी पूजा करता है —’

अब ज़रूर मुकुन्द और सुलभासे अपनी हँसी न रोकी गयी। केशर आगे कुछ और भी कहने वाली थी, परंतु मुकुन्दने उसे नीचे खड़ी हुई टैक्सीकी याद दिला दी। तब कहीं उसने झटसे उस नोट-बुकके अंतिम पन्नेपर अपना पता लिखा। नोट-बुक उसे लौटाते हुए वह बोली, — ‘कलके जलसेकी याद है न?’

‘मुफ्तमें मिलनेवाली चीज़की याद रहना ज़रा मुश्किल ही होता है!’

दोनोंने दीदीसे बिदा ली। रुग्ण स्थितिमें भी उसका गृहिणी-धर्म जागृत था। वह बोली, — ‘इस समय आपको चाय भी न मिली। अब अच्छी हो जाऊँगी, तब जानबूझकर बुलाऊँगी तुम्हें। आओगी न गरीबके घर?’

गदगद मनसे ही दोनो नीचे उतरिं। मोटरमें सुलभा जिस तरफ बैठी थी उसी तरफके दरवाज़ेपर हाथ रखकर मुकुन्द खड़ा हो गया था। वह धीरेसे बोला, — ‘सुलभा, कलका दिन मैं कभी नहीं भूँखूँगा।’

सुलभा विनोदसे गर्दन हिलाती हुई बोली, — ‘मुझे भी जीवन भर इसकी याद रहेगी।’

‘चौबीस घंटेकी सज़ा तुम्हें मिली, इसलिये तुम उसे याद रखोगी! परंतु मुझे — मानवी हृदय कितना —’

आगेका मनोगत उसकी आँखोंने ही कहा। सुलभाको लगा, मुकुन्दसे कहूँ —

मेरा हृदय है यह तो तुम मानते हो न ? लाओ, मुझे दो अपनी वह नोट-बुक पढ़नेको । परंतु वह कुछ भी न बोली । उसकी आँखोंने ही मुकुन्दको उत्तर दिया । टैक्सी स्टार्ट हुई । मुकुन्द विचारोंमें खोया हुआ था । इसलिये उसे दरवाज़ेसे अपने हाथको हटानेका होश न रहा । टैक्सी चलनेके धक्केसे उसने उसे उठाया और उसी समय 'अच्छा तो चलती हूँ' कहनेके लिये किंचित आगे झुका हुआ सुलभाका हाथ भी वहीं जा पड़ा । क्षणमात्र उन दो हाथोंका एक दूसरेसे अस्पष्ट-सा स्पर्श हो गया ।

• • •

टैक्सीमें सुलभा केशरकी ओर सतत ध्यानसे देख रही थी । दोपहरका वक्त था, इसलिये लोगोंकी भीड़ कहीं न थी । परंतु बीचहीमें ट्राम पकड़नेके लिये दौड़नेवाले एक-दो मनुष्य बंबईके दौड़-धूपवाले जीवनका स्मरण अवश्य दिला देते थे । ऐन गरमीके दिनोंकी दोपहर और वह भी बंबईकी ! इसके कारण एक बार केशरने अचलसे हवा लेकर जोरसे 'हुश' कहा । पर वह शायद सुलभाको सुनाई ही न दिया था । उसकी आँखें खुली थीं, पर दृष्टि शून्य थी । टैक्सी चौपाटीकी तरफ मुड़ी, तब जैसे नींदसे जागी हो उसी तरह उसने एकदम केशरसे कहा,— 'मुकुन्दबाबू क्या तुम्हारे घर गये थे पूनामें ?'

'मेरे घर ? दो सालसे उन्होंने मुझे दो सतरोका खत भी नहीं भेजा !'

'फिर तुम्हारी उनसे मुलाकात कहाँ हुई ?'

'कर्जतपर वे मेरे डिब्बेके पास आये । मुझे मी ऐसा लगा जैसे भगवान मिल गये हों । पूना छोड़नेके बादसे दो पठान हर स्टेशनके प्लेटफार्मपर घूमते हुए मेरे डिब्बेके सामनेसे आते जाते मुझे लगातार घूरकर देखा करते । यहाँ आकर कुशलतापूर्वक पहुँचती हूँ या नहीं, यही मुझे —'

'इतनी डरपाँक हो तुम ? मेरा ख्याल था कि बातूनी लोग बड़े ढीठ होते हैं ।'

'कौन जाने ? लेकिन यह जरूर सच है कि जब चायसे मुँह जल जाता है, तो इनसान शरबतको भी फूँकफूँककर पीता है !'

सुलभा कुछ आगे पूछनेवाली थी, परंतु इसी समय केशरने ड्राइवरको अपना बैगला दिखाया और तुरंत ही मोटर नर्तकीकी तरह शानदार अंगविक्षेप करती हुई उसके पोर्चके नीचे जाकर खड़ी भी हो गयी । मोटरकी आवाज़ सुनते ही भीतरसे बूढ़ा मुनीम दौड़ता हुआ आया । केशरकी ओर देखकर वह चकित

हुए बिना न रहा। शायद यह पक्का करनेके लिये कि हमारी ताईसाहब ही हैं या कि कोई और आ गया है, उसने केशरकी तरफ़ ऐनकके आड़की अपनी निस्तेज आँखोंसे देखा और कहा, - 'अब दूसरा तार भेजना पड़ेगा शिरगाँवको !'

केशर सुलभाकी ओर देखकर सिर्फ़ हँसी और उसे साथ लेकर जल्दी जल्दी बँगलेकी सीढ़ियाँ चढ़ गयी। केशरके पीछे चलते-चलते बँगलेकी एक ही बाजू सुलभाकी दृष्टिमें पड़ी। परंतु उतनेसे ही वह ताड़ गयी कि केशरके पिताजी बहुत धनी होने चाहिए। ड्राइंग-रूमका फर्नीचर, मेहमानोंके कमरोंके पलंग, दीवालपर लगे चित्र, प्रत्येक कमरेमें दीखनेवाली मनोहारी मूर्तियाँ - धनाढ्यताको सौंदर्य-दृष्टिकी जोड़ मिल गयी थी। चाँदनी जब जलाशयपर पड़ती है, तो उसकी शोभा क्या अधिक नहीं खिल जाती ?

केशरके कमरेमें सुलभाने कदम रखा और क्षणभर वह चकरा गयी। किसी नाटकके सुंदर दृश्यकी तरह वह कमरा सजा हुआ था। संगमरमरके फर्शपर सौम्य रंगके भिन्न भिन्न प्रकारके कालीन कितने खुबसूरत दीख रहे थे। कालीनोंपर बुनी हुई चित्रविचित्र आकृतियोंमें भी अनुपम कला चमक रही थी। कमरेके एक कोनेमें तो संगीत-वाद्योंकी जैसे प्रदर्शनी ही भरी हुई थी।

सुलभाने अपने मनमें यह विचार किया था कि शिष्टाचारके लिये केशरके घर सिर्फ़ पाँच मिनट बैठ लूँगी और फिर पूना चली जाऊँगी। परंतु केशरने उसका हाथ पकड़कर उसे एक सुंदर चक्करदार कुरसीपर बैठा दिया और वह बोली -

‘अब आरामसे सारा कमरा देख लो।’

‘कमरा देखनेको फिर कभी आ जाऊँगी। आज मुझे पूना जाना है।’

‘मैं छोड़ूँगी तभी न ?’

केशरके प्रिय स्वभावकी सुलभाने मन-ही-मन सराहना की और उसपर उसे क्रोध भी हो आया। उसे लगा - इस सुंदर, सम्पन्न और भावुक लड़कीने यदि मुकुन्दको अपना बना लिया तो आश्चर्य क्या है ?

‘तुम्हारी मेहमानी लेनेके लिये मैं फिर कभी आऊँगी !’

‘छि, मुझे तुमपर विश्वास नहीं !’

‘क्यों ?’

‘मुकुन्दकी मित्रानी उसीकी तरह होगी ही। आज गाड़ीमें यदि वह पठान

न होता, तो राम जाने इस जन्ममें भी मुकुन्दजीकी कभी भेट होती या नहीं। दो सालके पहले पत्र भेजनेका वादा करके —

‘पहले कहाँ भेट हुई थी तुम्हारी उनसे?’

‘कराचीमें।’

सुलभा जान गयी कि रहस्य सुलझनेके बजाय और भी अधिक उलझ रहा है। उस दशामें भी उसके मनमें विचार आया केशर — किसी भी उपन्यासमें शोभा देने योग्य नायिका है। इसलिये उसके जीवनमें थोड़ा-बहुत अद्भुत-रम्य भाग हो, यह स्वाभाविक ही है।

सुलभाके दोनों हाथोंको मज़बूतीसे पकड़कर उन्हें हिलाती हुई केशर बोली, — ‘अच्छा, थोड़ा ठहरो; शरवत बनानेके लिये कहे आती हूँ। पर देखना, मेरी पीठके मुड़ते ही भाग न जाना यहाँसे, हँ?’

उसकी प्रिय हरकतपर मोहित होकर सुलभाने पूछा, -- ‘और भाग ही गयी तो?’

‘मैं भी दौड़ लगा दूँगी पीछे पीछे।’

‘तब तो सारी बंबईको एक मज़ेदार स्पर्धा देखनेको मिल जायेगी।’

‘हाँ! फिर हम दोनोंके फोटो निकलेंगे। अखबारोंमें मुलाकातें छपेंगी —’

सुलभाको हँसी रोकना असंभव हो गया। केशर भी हँसती हुई और क्रराब क्रराब दौड़ती हुई ही बाहर गयी। दरवाज़ेमेंसे एकदम पीछे मुड़कर उसने छोटे बच्चेकी तरह सुलभाको गर्दनका जो इशारा किया वह तो बहुत ही मज़ेदार था।

सुलभाने दरवाज़ेमें आकर देखा। ऐन धूपमें बागके फूल हँस रहे थे। दूर समुद्रके पृष्ठपर सूर्यकी किरणें नाच रही थीं। एकदम उसे मुकुन्दकी बहनके कुंद कमरेकी याद हो आयी। उसकी किस्मतमें वह कमरा क्यों होना चाहिए? इधर अच्छी अच्छी हवा जैसे फिज़ूल खर्च हो रही है और वहाँ माँगकर भी उसका प्राप्त होना असंभव है। उसे मुकुन्दके ‘मज़दूरोंको मरनेपर ही आराम मिलता है’ वाक्यका स्मरण हो आया। अस्वस्थताकी वेदनाएँ असहनीय होकर वह भीतर गयी। यहाँपर कुरसियाँ, चित्र, वाद्य, कालीन, शीशें — और दीदीके कमरेमें मिट्टीके तेलके खाली पीपेपर बैठना पड़ा उसे। परंतु इतनी अमीरीमें बढ़ी हुई यह लड़की वहाँ आनंदमें बैठ भी कैसे सकी?

मुनीमसे केशर बातें कर रही थी। सुलभा घूमती हुई मेज़के पास आयी। बंदकके आकारका एक सुन्दर पेपरवेट वहाँ उसे दिखायी दिया। उसको पाससे

देखनेके लिये उसने वह अपने हाथमें लिया। उसके नीचे एक पत्र था किसीका। बाहर केशरकी आवाज़ सुनायी दी, — ‘ मेरा पत्र है ! ’

सुलभा ब्रदकको मेज़पर रखनेके लिये झुकी। सहज-भावसे उसकी नज़र पत्रके अक्षरोंपर पड़ गयी। वह चौंकी और स्तंभित हुई। इस भयसे कि केशर अब जल्दी ही कमरेमें आ जायेगी, उसने जल्दी जल्दी उस पत्रको उठाकर फिरसे देखा। संदेह ही न था। वे अक्षर लापता हुए मनोहरके ही थे।

● ● ●

६

विचारवान अविचार

कमरेमें कदम रखते ही केशरकी दृष्टि सुलभाकी ओर गयी। उसकी मुद्रासे लगता था, कि वह असमंजसमें पड़ गयी है। केशरने सोचा—उसका मन घरकी तगफ खिंच रहा होगा। मैं जब माँको छोड़कर कहीं जाती हूँ, और जब वहाँसे लौटनेके दिन नज़्दाक आ जाते हैं, तब क्या मैं भी बैचैन नहीं हो जाती? डॉक्टरीकी परीक्षा दे देनेसे या मनुष्यके बड़े हो जानेसे क्या होता है? इसके कारण माँके प्रति उनका स्नेह थोड़े ही कम हो जाता है? मैंने व्यर्थ ही सुलभाको रोक रखा! वह डर रही होगी, कि कहीं गाड़ी न चूक जाये। इन विचारोंके मनमें उठनेके कारण, केशर सुलभाके पास आकर धीरेसे बैठ गयी। उसका दाहिना हाथ उसने अपने हाथोंमें जैसे सहज-भावसे ले लिया। पृथ्वीके उदरमें जलके स्रोत होते हैं और कभी कभी रुक्ष भू-भागको संजीवन देनेका कार्य वे कलकल आवाज़ न करते हुए करते हैं। केशरके स्पर्शसे प्रवाहित हो रहा सहानुभूतिका स्रोत सुलभाको उसी प्रकार लगा। उसके मनमें आया—‘क्या, मुकुन्द और मनोहरके बारेमें इस लड़कीसे खुल्लम-खुल्ला पूछ लूँ? भावुक स्वभावके कारण इसकी किसीसे भी घनिष्ठता हो सकती है। परंतु ऐसी घनिष्ठतामें जो गोपनीय बातें उसे मालूम होती होंगी, उन्हें गुप्त रखनेके लिये जिस व्यवहार-चतुरताकी जरूरत होती है, वह इसमें

बिलकुल नहीं है, यह बात पक्की है। मेरी और इसकी कुल चार घड़ीकी ही पहचान है। परंतु वह मुझसे इस तरह बातें करती रही है जैसे उसकी कोई सगी बहन ही बहुत दिनोंके बाद उससे मिली हो। सुलभाने केशरकी आँखोंकी ओर देखा। कितना निर्मल पानी चमक रहा था उनमें? कोई भी उनमेंसे खुशीसे उसके हृदयकी थाह ले ले।

सुलभाके इस प्रकार देखनेका अर्थ केशर समझ न पायी। हाथमें पकड़े हुए उसके हाथको मौजसे हिलाती हुई वह बोली, — ‘इसी तरह पकड़कर रखनेवाली हूँ मैं तुम्हें!’

‘और यदि चोर अपने आप ही अपनेको पकड़ा दे तो?’

‘रहने भी दो। ये सब ऊपरी और दिखावटी बातें हैं। तुम्हें तो ऐसा लग रहा होगा कि कब पूना जाती हूँ और माँके पास बैठकर ब्रंईकी सारी बातें —’

‘मेरी माँ नहीं है।’ — सुलभा एकदम बोली। उसके स्वरमें चटसे जो कारुण्य आ गया था, वह केशरके कानोंमें घूमता रहा। केशरके मनमें आया — किसीके बदनपर प्रेमसे हाथ फेरने लगें और भूलसे उसके जख्मको धक्का लग जावे, उस प्रकार मुझसे हो गया। क्षमा याचनाके लिये वह बोली, — ‘सुलभा जीजी, मुझसे गलती हो गयी!’

‘कौनसी?’

‘तुम्हारे दिलको लग जानेवाली बात मेरे मुँहसे निकल गयी।’

‘मेरे दिलको लग जाये, ऐसी?’ — लेकिन यह प्रश्न पूछते हुए उसके ध्यानमें यह आ गया कि कुछ समय पहले मेरा स्वर बीचहीमें एकदम बदल गया होगा। सुलभाकी माँकी मृत्यु इतनी नयी घटना न थी कि उसकी स्मृतिमात्रसे वह गदगद हो जाती। फूलोंका निर्माल्यमें रूपान्तर होते हुए देखना बड़ा कठिन होता है। परंतु आगे चलकर फूल और निर्माल्य दोनोंकी मूर्तियाँ अस्पष्ट हो जाती हैं। परंतु मृदु सुगंध जरूर एकाध समय स्मृतिके झोंकेके साथ बहती हुई आ जाती है।

यह बात न थी कि केशरसे यह कहते हुए कि ‘मेरी माँ नहीं है’, सुलभाका बिलकुल जी भर आया हो। परंतु मनोहरके अक्षरोंके कारण उसकी मूर्ति उसके मनःचक्षुके आगे खड़ी हो गयी। आज मेरी माँ होती तो लड़केको इस तरह लापता देखकर उसे कितना दुख होता, यह विचार स्वाभाविक तौरपर ही

उसके मनमें आया। मृत्युके कुछ दिन पहले मनोहरको अपने मज़दीक लेकर अत्यन्त दुःखित हृदयसे कहे गये माँके शब्द—‘मनू, इतनी शरारत अच्छी नहीं होती, बेटा। मेरे बाद तेरा कैसा होगा रे?’ सुलभाको स्मरण हो आये। उस मृत्युशैयाका चित्रपट आँखोंके सामनेसे सरकते हुए ही उसने केशरको ‘मेरी माँ नहीं हैं’ उत्तर दिया था।

उसके स्वरमें अकस्मात आं जानेवाले इस कारणका अर्थ केशरकी समझमें आना संभव न था। उसके कोमल मनको संतोष देनेके लिये सुलभाने कहा,—‘तुम्हें शायद सब भी न लगे—माँको भूल गयी हूँ मैं।’

क्या, मनुष्य माँको भूल जा सकता है? क्या, सुलभा जैसी भावुक लड़कीके मनसे माँकी याद चली जा सकती है? दूसरा कोई यदि ऐसा कहता तो केशरने निष्ठुर मनुष्योंमें उसकी गिनती की होती। परंतु सुलभाको निर्दय कैसे कहें? पूना जानेकी जल्दी होते हुए भी मुकुंदकी बहनके लिये वह जानबूझकर रह गयी। विजयबाबू कह रहे थे कि उसके पिताजी बड़े धनी हैं। डॉक्टर पास धनी लड़की मज़दूरोंके चालमें एक गरीब औरतकी चौबीस घंटे सिरहाने बैठकर सेवा-शुश्रूषा करती है, तो क्या इसलिये कि उसका दिल पत्थरका है?

केशरको असमंजसमें पड़ी देखकर सुलभा बोली,—‘तुम्हें आश्चर्य होता है न? केशरजी, तुम अभी बच्ची हो। सुख, दुख, यही नहीं बल्कि जीवनकी कितनी ही भली-बुरी बातोंको मनुष्य सहजमें भूल जाया करता है।’

‘परंतु माँकी याद?’—केशरने अधूरा ही प्रश्न किया। उसके स्वरमें विलक्षण घ्याकुलता थी। सुलभा ताड़ गयी कि बचपनमें माँको छोड़कर दूसरा कोई भी उसे प्रेम करनेको न मिला होगा। वह बोली—

‘प्रेम मनुष्योंमेंसे लुप्त नहीं हो जाता—सिर्फ उसे करनेके स्थान बदल जाते हैं!’

केशरके विनोदी स्वभावने जोर मारा। मंद स्मित करती हुई वह बोली,—‘ऐसी बात है? बानी पूनाका प्रेम बंबई चला आता है?’

हँसीका जवाब हँसीसे देनेकी मनःस्थितिमें सुलभा न थी। केशरके बायें कंधेपर अपना हाथ रखकर उसकी ओर स्निग्ध दृष्टिसे टकटकी लगाकर देखती हुई वह बोली,—‘केशर बहन, यदि मौसी न होती, तो माँकी यादमें आज भी रोती रहती मैं।’

‘तुम्हारी मौसी?’

‘अँ हँ । मेरी माँकी मौसी है वह । परंतु हम सब लोग मौसी ही कहते हैं उसे । मेरे जीवनमें यदि मौसी और —

एक सुंदर ट्रेमें शरवतके गिलास लेकर नौकर भीतर आया । ‘और’ के बाद सुलभा किसका नाम लेती है, इस तरफ केशरका मन लगा हुआ था । उसे ऐसा हो गया जैसे उत्कंठा विलकुल चरम सीमापर पहुँच गयी है और ऐसे प्रसंगपर फिल्म टूट जाये । वह किञ्चित् क्रोधमें ही उस नौकरसे बोली, — ‘कितनी देर लगा दी रे ? मैंने कह भी दिया था कि मेहमानको गाड़ीसे पूना जाना है —’

केशरने सुलभाके हाथमें गिलास दिया । उस मधुर शरवतकी दो-चार चुस्कियाँ लेते ही उसे आराम मिला ! वह उस ट्रेपर बनी नक्काशीको सराहना-भरी दृष्टिसे देखने लगी । शायद ईरानकी कारीगरी थी वह । जितनी नाजुक उतनी ही उलझन-भरी । मनुष्यका मन भी इसी तरह नहीं होता क्या ? यह विचार इस समय सुलभाके अन्तर्मनको स्पर्श कर गया ।

‘पत्र देख लिया क्या, ताईसाहब ?’

सुलभाकी नज़र नीचे झुकी हुई थी । प्रश्नसे उसके ध्यानमें आया कि वह सुनीमने पूछा होगा ।

‘भूल ही गयी थी मैं ! कोई कोई लोग दूसरेपर ऐसा जादू कर देते हैं कि मनुष्य स्वयं अपने आपको ही भूल जाता है ।’

उसके इस अधूरे स्वगत उद्गारके साथ सुलभाने ऊपर देखा । केशर उसकी ओर देखकर हँस रही थी । सुलभा धीरेसे बोली, — ‘तुमने तो जैसे मेरे ही मनकी बात कह दी !’

मेज़से केशरने पत्र उठाकर उसपरके अक्षर देखे ही थे कि उसकी मुद्रापर आनंदकी विलक्षण लहरें नाचने लगीं । सुंदर संगमरमरके बने मंदिरको दीप-ज्योतिसे निराली ही मनोहारी शोभा प्राप्त हो जावे, उस तरह हुआ । वृक्षलताओंसे भरे हुए किसी बागके सारे पत्तोंको कोई जादूगर फूल बना दे, उस तरह केशरके चेहरेका वह अनिर्वचनीय आनंद सुलभाको प्रतीत हुआ । तुरंत ही उसके मनमें आया — अक्षरोंपरसे तो यह पत्र मनोहरका मालूम होता है । केशर और उसका बहुत दिनोंका परिचय होना चाहिए । इस परिचयका स्वरूप —

उस स्वरूपके विषयमें कल्पना करनेकी ज़रूरत ही न थी । उस लिफाफेको खोलते समय केशरका हाथ अकारण काँप रहा था । भीतर मज़मून जो भी हो

सो हो ! केशरकी नीचे-ऊपर होनेवाली दृष्टिसे सुलभाने देखा कि केशरने उस पत्रको तीन बार पढ़ा । प्रत्येक बार उसके चेहरेका आनंद अधिकाधिक बढ़ रहा था । अन्तमें उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिये सुलभाने कहा, — ‘तुम्हारा शरबत गरम हो रहा है न ?’

केशरने हँसते हुए गर्दन ऊपर उठाकर देखा । झटसे उसने पत्रको मोड़कर बायें हाथमें रख लिया और शरबतका प्याला उठाया ।

‘किसी अत्यन्त प्रिय व्यक्तिका पत्र मालूम होता है । शरबतकी भी सुध न रही ।’

‘प्रिय ?’

सुलभाको भ्रम हुआ कि केशरके इस उद्गारमें एक मंद निःश्वास मिला है । क्षण-भर केशर असमंजसमें पड़ गयी । लेकिन तुरंत ही मनका निश्चय करके बोली, — ‘बंगाल क्या बंबईके पास है ?’

‘यह बंगाली सहेली खूब मिल गयी तुम्हें !’

‘सहेली नहीं !’

‘खैर, मित्र सही !’

‘कैसे ठीक पहचान लिया तुमने ?’

‘क्या ?’

‘अभय मित्र ही तो नाम है उनका !’

अभय मित्र और मनोहर ! अक्षरकी तरह अक्षर दीख जानेके कारण मुझे धोखा तो नहीं हो गया — ऐसा सुलभाको शक हुआ । उसका निरसन करनेके लिये उसने पूछा, — ‘बंगाली मनुष्य क्या मराठी लिख लेता है ?’

‘कितनी सुंदर मराठी बोलते हैं वे ! यदि कोई सुन ले तो यही कहेगा कि उनकी सारी ज़िंदगी महाराष्ट्रमें ही बीती है ।’

‘तुम्हारी उनसे पहचान कैसे हुई ?’

‘पिताजीके स्टूडिओमें एक कम्पनी फिल्म बना रही थी । वह कम्पनी संगीतका निर्देशन करनेके लिये इन्हें बंगालसे ले आयी थी । गानेकी सच्ची रुचि उन्होंने मुझे लगायी । पहले अपनी शालाके समारोहोंपर स्वागतका गीत गाने इतनी ही तैयारी थी मेरी । परंतु पिछले डेढ़ बरसोंमें — कलके जलसेमें तो तुम रहोगी ही, तो तुम्हें देखनेको मिल ही जायेगा ।’

‘यहीं रहते हैं न ये ?’

‘पहले रहा करते थे। परंतु कहते हैं कि किसी पटानसे इनकी लड़ाई हो गयी। एक दिन हज़रत किसीसे कुछ न कहकर जाने कहाँ चल दिये और ऐसे गये कि फिर न आये ! पिताजीने तो कहा — ‘बाबूसाहबका मामला कुछ गड़बड़ दीखता है !’ मुझे भी ऐसा गुस्सा आया था इनपर। छः महीने रोज़ दो घंटे-तक मुझे संगीतकी शिक्षा दी थी इन्होंने। परंतु जाते समय मुझसे दो बातें करनेकी भी फुरसत न मिली इन्हें।’

‘तुम्हारा गुस्सा टंडा हो गया या अबतक बना है ?’

‘आज टंडा हो गया।’

‘इस पत्रसे ?’

‘अँ हँ। मुकुन्दके कारण। सब पुरुष एक ही मालाके गुरिया होते हैं ! फिर गुस्सा भी किसपर किया जाये ?’

‘इन अभय मित्र महाशयका कोई फोटो है क्या तुम्हारे पास ?’

‘फोटो ? अजी अजीब सनकी हैं वे महाशय। कभी फोटो खिंचवानेके लिये तैयार नहीं होते। वे जिस कम्पनीमें थे, उसके चित्रमें एक बड़ी दावतका प्रसंग था। उस सीनके लिये बहुतसे लोगोंकी ज़रूरत थी। माँकी इज़ाजत लेकर मैं भी तैयार हो गयी उस दिन। अभयबाबूसे सबने खूब आग्रह किया। परंतु वे किसी भी तरह तैयार नहीं होते थे। अन्तमें मेरे लिये महाशयजीने ‘हाँ’ कहा। परंतु ऐन मौक़ेपर कैमेरेकी ओर पीठ फेर दी आपने, और —’

‘काफ़ी सनकी मालूम होते हैं बाबूसाहब ! एक बार देखना चाहिए हज़रतको।’

‘मेरे खातिर अन्तमें एक बार फोटो खिंचवानेके लिये वे बैठे थे। ठहरो अँ ! मैंने किसीको भी वह फोटो नहीं दिखाया है। पर — केशर फुर्तीसे उठकर चली गयी। मुलभाको मनःस्थिति बड़ी विलक्षण हो गयी। मनोहरकी भेटके बारेमें उत्पन्न हुई आशा कह रही थी — ‘अभय मित्र यानी मनोहर ही है !’ दूसरे ही क्षण उसे लगता — ‘इतने बरसांसे मनोहरने दो सतरें भी न लिखीं किसीको। वह तात्यासे डरता होगा। लेकिन मैं तो थी ! मेरे लिये न सही, पर कम-से-कम क्या उसे अपना कुशल समाचार मौसीको नहीं भेजना था जिससे उनके मनको कुछ शान्ति मिल जाती ? या कहीं ऐसा तो न हुआ हो कि विरक्तिके आवेशमें उसने आत्महत्या कर ली हो ? बंगाली नाम धारण कर बंबईमें रहना, केशर जैसी गुणवान लड़कीका स्नेह प्राप्त करना — इतनी चतुरता मनोहरमें है भी ? अभय

मित्र और मनोहर ! संगीतके सिवा दोनोंमें और कुछ भी साम्य नहीं । तुरंत ही आशा कहती - ‘ पत्रपरके वे अक्षर, साफ मराठी बोलना और पठानसे लड़ाई — ’

केशर वापस आयी । वह निराश मुद्रासे ही ! ‘ उसे शायद शिरगाँवमें भूल आयी हूँ । ’ सुलभाको यह लगे बिना न रहा कि उसके इस उद्गारमें भय छिपा हुआ है । परंतु झटसे विनोदप्रिय होकर वह सुलभासे बोली, ‘ अब तो गाड़ी मिलनेकी गड़बड़ ही होगी । अच्छा उपवास हो गया तुम्हें आज ! पर उसका सारा पुण्य मुझे मिलना चाहिए, हँ ! ’

‘ परंतु मैं उपवास करूँगी ही नहीं । अच्छी तरह डटके खानेवाली हूँ मैं ! पूना जानेकी मुझे जल्दी नहीं है । जलसा होनेके बाद ही — ’

केशरकी समझमें ही न आया कि सुलभा सच कह रही है या मेरा मजाक उड़ा रही है । क्षणभर ठहरकर वह बोली, - ‘ फिर आज हमारे साथ ही खानेकी कृपा करो न ? ’

‘ निमंत्रणका रास्ता ही देख रही थी मैं । घरमें चूल्हा अबतक ठंडा भी हो गया होगा । ’

‘ फिर ज़रा जल्दी रसोई बनानेके लिये कहे आती हूँ । ’

‘ जल्दीकी क्या ज़रूरत है ? आरामसे होने दो । डॉक्टरनीको भूखे-प्यासे रहनेका अभ्यास होना ही चाहिए । है न ? ’

द्वारमें मुनीमने आकर अदबसे कहा, - ‘ ताई-साहब, शिरगाँवको क्या तार कर दूँ ? ’

‘ केशर इज़ ! ’ - केशरने हँसते हुए उत्तर दिया ।

‘ बस, इतना ही ? ’

‘ हाँ ! और तारका एक फॉर्म और ले आओ सुलभाताईके लिये । इन्हें भी तार करना है अपने पिताजीको । ’

माथेपर रखी ऐनकको नाकपर खिसकाते हुए बूढ़े मुनीमके मनमें यह विचार आये बिना न रहा कि जब हम तरुण थे तब तरुण लड़कियाँ इस तरह अकेली सफर नहीं किया करती थीं, मनमें आये वहाँ बीचहीमें नहीं उतर जाया करती थीं और समय-कुसमय अपने पिताको तार भी नहीं भेजा करती थीं ।

उसकी पीठ फिरते ही केशर बोली, - ‘ सुलभाताई, तुम्हारा ज्योतिषपर विश्वास है क्या ? ’ इस प्रश्नका रुख ही सुलभा न समझ पायी । क्षण-भर ठहरकर केशर

बोली, — ‘मेरी माँ तो ज्योतिषके पीछे पूरी तरहसे पागल है। किसी ज्योतिषीने उससे कभी कुछ कह दिया था कि और वह सब सच निकल गया। दो-ढाई साल पहले किसी ज्योतिषीने उसे जता दिया था कि तुम्हारी बेटीको कोई भगा ले जायेगा। तबसे वह इतनी घबड़ा गयी है कि कुछ न पूछो! वहाँ जो फोटो मैं भूल आयी हूँ वह उसे दीव्य ही जायेगा। और ऊपरसे वह पहला भेजा हुआ तार कि मैं यहाँ अभीतक नहीं पहुँची हूँ। अब इसके आगे माँ अकेली कभी नहीं भेजेगी मुझे।’

अन्तमें केशर करीब-कराब स्वगत ही बोलने लगी थी। मुनीमके भीतर आते ही वह चुप हो गयी। सुलभाने तार लिखकर दे दिया। सुलभाके नहानेका इन्तज़ाम करनेके लिये उसे लेकर केशर भी बाहर आयी। स्नानगृहमे गरम पानीका नल, ठंडे पानीका नल, तौलिया, साबुन सब कुछ व्यवस्थित है या नहीं यह स्वयं देखकर वह सुलभासे बोली, -- ‘मैं अपने कमरेमें हूँ, हूँ!’ यह जानकर कि उसे उस पत्रको फिरसे पढ़नेकी आतुरता उत्पन्न हो गयी है सुलभा हँसी। गर्दन दूसरी तरफ मोड़कर केशर वहाँसे तेज़ीसे चल दी।

कमरेमें आते ही उसने दरवाज़ा बन्द कर लिया। लेकिन अपनी इस लुका-छिपीपर उसे स्वयं अपने आपपर हँसी आये बगैर न रही। यह निश्चय करके कि इस पत्रको एक बार जी भरकर पढ़ लूँ और फिर सुलभाकी पूछताछ करूँ, वह बैठ गयी। उसने पत्रको एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा, किसी भी तरह उसका संतोष न होता था। जैसे वह पत्र कोई सुंदर गीत ही था। तीसरी बार छोटे बच्चेकी तरह धीरे धीरे एक एक शब्द वह पढ़ने लगी।

उस पत्रगीतके प्रत्येक मधुर स्वरका पूर्ण आस्वाद लेनेका उसने अपने मनमें निश्चय कर लिया था।

‘प्रिय केशर —

कितने दिनोंके बाद — नहीं कितने ज़मानेके बाद यह पत्र मैं लिख रहा हूँ। तुम्हें भूल जानेका निश्चय करके मैं इधर लौट आया। मुझे वह एक बड़ी मामूली बात मालूम हुई! जब शालामें पढ़ता था, तब कक्षाका सबक भूल जानेमें मेरा पहला नंबर रहा करता था। परंतु इस दुनियामें हम जो ध्यानमें रखना चाहते हैं, उसको भूल जाते हैं, और जिसे भूल जानेकी कोशिश करते हैं, वही निश्चित रूपसे ध्यानमें रह जाता है।

तुम्हें आश्चर्य होगा; परंतु जबसे यहाँ आया हूँ, मैं एक भी फिल्मके लिये

अपने मनके सुताविक तज्जें नहीं दे सका। कोई भी तज्ज किसी भी अभिनेत्रीके मुँहसे सुनता, तो लगता—केशरके कंठसे यह इससे भी अधिक मीठी लगेगी। तुम्हारा और मेरा फोटो खिंचवानेके लिये पहले पहले मैं तैयार न था। लेकिन उस समय तुम्हारे आग्रह करनेपर मैंने 'हाँ' कहा, सो अच्छा ही हुआ। वरना यहाँके दिन और भी अधिक भयानक लगते मुझे।

बंबईसे मैं यहाँ क्यों चला आया, इसके बारेमें पत्रके जरिये तो कह ही नहीं सकता, परंतु मुलाकात होनेपर भी तुमसे कुछ कह सकूँगा या नहीं, इसका मुझे शक है। मेरा एक मन मुझसे बंबईमें न रहनेके लिये कहता है। दूसरा मन कहता है -- केशरके बिना जिंदा रहना क्या तुझे संभव है? -- मैं कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ। सच पूछा जाये, तो मैं सिर्फ एक बात जानता हूँ कि तुम जैसी लखपतीकी लड़की मुझ जैसे आवाराको मिल जाना असंभव है। परंतु किसी बातको समझ लेना अलग है और उसके अनुसार आचरण करना अलग है !

विचार ! विचारोंसे घुल मरनेकी अपेक्षा अविचारोंपर बलि हो जाना क्या बुरा है ? सिर्फ इसी लिये एक फिल्म कम्पनीमें नौकरी स्वीकार कर, मैं उधर आनेके लिये कल या परसों रवाना हो रहा हूँ ।'

केशरको लगा -- अभय मेरे पिताजीसे डरते होंगे, परंतु यदि मैं माँको राजी कर लूँ, तो वे विरोध न करेंगे। कल अभयबाबू आयेंगे, मेरे जलसेमें उपस्थित रहेंगे, मेरी तैयारी देखकर उनकी खुशीका ठिकाना न रहेगा। स्वप्निल आँखोंसे उसने नीचे लिखे हस्ताक्षरकी ओर टकटकी लगाकर देखा। उसके नीचे थोड़ा मज़मून और था। गड़बड़ीमें वह उसको पढ़ना भूल ही गयी थी।

'अभी भेटके लिये तीन दिन हैं। इस समय लगता है कि कब हिन्दुस्तानमें नियमित रूपसे आम तौरपर हवाई जहाज़ शुरू हो जायेंगे ? परंतु कभी कभी यह भी मनमें आ जाता है कि हवाई जहाज़ बंबईके पास पहुँचकर दुर्घटनाका शिकार न हो जाये। इसलिये वे नहीं है, यही अच्छा है ! ठीक है न ?'

७

‘ अकेला खड़ा मैं ’

केशरसे विदा लेते समय सुलभाके अन्तःकरणको खिंचाव लगे बिना न रहा । वह हमेशा ही यह कहा करती थी कि भावुक मनुष्य फूलोंकी तरह होते हैं । परंतु फूलों फूलोंमें भी क्या कम भेद होते हैं ? ऐसे समय वह मौसीजीको सदाबहारका फूल मानती और तात्यासाहबकी कटसराईके फूलसे तुलना करती । केशरसे ‘ तो चलती हूँ ’ कहते समय उसे लगा — यह हरा चम्पक है । दूरसे भी इसकी सुगंध मनुष्यको पागल बना देगी ।

केशर सुलभाको छोड़ना नहीं चाहती थी । केशरके इस श्लेषपर कि ‘ तुम यही समझ लो कि पूना चली गयी हो ’ जब सुलभाने यह उत्तर दिया कि ‘ तुम भी यही समझ लो कि अभय मित्र यहीं हैं ’, तब दोनों ही दिल खोलकर खूब हँसीं । हँसीका आवेश कम होते ही बनावटी गंभीरता धारण कर केशर बोली, — ‘ मैं जानती हूँ कि पूना जानेकी इतनी जल्दी क्यों पड़ी थी तुम्हें ! ’

‘ क्यों पड़ी थी ? ’

‘ मामूली जल्दी नहीं थी । ऐसी जल्दी थी जैसे विवाहके समय होती है — ’

‘ किसने कहा तुमसे ? ’

‘ कहा किसी एक भूतने । ’

‘क्या उसका कोई नाम-धाम नहीं है ?’

‘मैं नहीं जानती कि भूतोंके भी नाम होते हैं !’

पहले सुलभाको भी पता न चला कि इस विवाहके मज़ाकसे मुझे क्रोध क्यों आना चाहिए। वैसे देखा जाय तो मौसीजी इस मज़ाकका ‘पेटन्ट’ चार-पाँच वर्ष पहलेसे ही ले चुकी थीं। तात्या भी वकालतके तरीकेसे इस विषयको बीच-बीचमें निकाला करते थे। विनोदप्रिय समवयस्क सहेलियोंकी तो बात ही न पूछो ! उन्होंने अबतक उसका विवाह पाँच-दस बड़े लोगोंसे कर भी डाला था। उसपर जिसकी विशेष कृपा रहा करती ऐसा एक तरुण प्रोफ़ेसर, तात्यासाहबके बँगलेके नज़दीक रहनेके लिये आया हुआ बरारकी एक मिलके मालिकका मैट्रिक पास न हुआ लड़का, अपने अप्रकाशित कविता-संग्रहको ‘सुलभा’ नाम देनेवाला कॉलेजका एक गण और मात्राओंका कारखानेवाला—ऐसे कितने ही लोगोंके नाम इस मज़ाकमें आ चुके थे। बालूपर लिखे नामोंकी तरह, वे सभीकी स्मृतियोंसे चटके निकल जानेके कारण, सुलभाको इस छुकड़पनपर क्रोध भी न आता था।

परंतु इस समयकी स्थिति बिल्कुल भिन्न थी। उसके मनमें आया—जाने विजयबाबूने मेरे विषयमें केशरसे क्या क्या बातें कही होंगी ? मेरा विवाह निश्चित करनेका अधिकार विजयबाबूको किसने दे दिया ? विवाह क्या किसी नाटक-मंडलीका विज्ञापन है ? मैं विवाह नहीं करूँगी। नहीं तो जी चाहेगा उससे करूँगी—उसका चिढ़ा हुआ मन ‘जी चाहेगा उससे’ शब्दोंको कह गया और उसी समय वे शब्द साकार हो गये। उस आकारको तुरंत रंगरूप आ गया। मुकुंद ! सुलभाको अपने आपपर बड़ा क्रोध हो आया। स्त्रीके उन्मादक स्पर्शका रस-भरा वर्णन करनेवाले मुकुन्दको मेरा मन छिपनेके लिये जगह दे ? कहते हैं मनकी तरह भयंकर बैरी कोई नहीं होता। यह बात उसे इस समय पूर्णतया जँच गयी।

इसलिये केशरसे बिदा लेकर जब सुलभा बंबईमें अपनी मौसीके घर जानेके लिये उसकी कारमें बैठी, तब उसका ध्यान बाहरकी किसी भी बातकी ओर आकर्षित न हुआ। उतर रही धूपकी सौम्यता, दोपहरको कैदमें पड़ी हुई वायुलहरीकी धीरे धीरे हो रही मुक्तता, नुक्कड़परकी एक छोटी दूकानको ताजे गजरांसे प्राप्त हुई शोभा, घूमनेके लिये बाहर जा रहे प्रसन्नमुख लोग—इनमेंसे एक भी सौंदर्यका उसके मनको बोध न हुआ। ड्राइवर बड़ा निडर और बेफ़िक्रा था। गाड़ीकी तरह उसका मन भी आड़े-टेढ़े मोड़ लेता हुआ विलक्षण वेगसे दौड़ रहा।

था। बीचहीमें खरसे आवाज़ हुई और गाड़ीको एकदम ब्रेक लगा। ‘लगता है शराव पी ली है सालेने’ ड्राइवर कुछ इस तरह पुटपुटाय़ा—सुलभाने मोटरकी आड़ आये हुए मनुष्यकी ओर देखा। ड्राइवरकी गाली सुनकर भी वह हँस रहा था !

मौसीके घर आते ही सुलभा चटसे ज़क़र अपने कमरेमें लेट गयी। शरीरकी अपेक्षा उसका मन ही अधिक थक गया था। उसने आँखें बंद कर लीं। परंतु मूँरी हुई आँखोंके सामने सारी भूत और भविष्यकालकी दुनिया खड़ी रह सकती हैं। उसने आँखें खोलीं। सामने एक सुन्दर कैलेन्डर टँगा था। परंतु आज उसको देखकर किसीके द्वारा कही गयी यह बात ही कि उसपरका चित्र एक वेश्याका है, उसके मनमें बार बार आने लगी। उसने दूसरी तरफ़ गर्दन मोड़ी। नज़दीकके कमरेसे गीत सुनायी पड़ने लगा—

‘डोले हे जुलमी गडे रोखुनि मज पाहुं नका!’

‘डोले हे —’^१

उसकी मौसेरी बहन पुष्पा गा रही थी। पड़े पड़े सुलभा बोली, — ‘लगता है संस्कृतकी परीक्षामें यही लिखनेवाली है तू, क्यों!’ गाना रुका ही था कि क़रीब अठारह वर्षकी सुडौल नाक-नक़शेवाली परंतु फीके चेहरेकी एक लड़कीने कमरेमें प्रवेश किया। सुलभाके हाथके सुवर्ण कंगनोसे खेलती हुई वह बोली, — ‘सुलभाताई, डॉक्टरी परीक्षाके लिये संगीतका विषय क्यों नहीं रखते?’

‘इसलिये कि तुझ जैसी डॉक्टरनी गा गाकर रोगियोंके सिर पका देगी।’

‘हुश।’

‘कर इसका संस्कृतमें अनुवाद।’

‘पहले तुम मराठीहीमें बता दो इसका मतलब! सुलभाताई, मेरा आजकल भगवानपरसे विश्वास उड़ता जा रहा है।’

‘क्या, इसलिये कि इस सालकी परीक्षाके लिये उसकी जो मनौती मनायी थी, वह बेकार हो गयी? इस बार खासी मोटी रिश्तत दे भगवानको —’

‘जिससे वह परीक्षकके सीनेपर चढ़कर —’

दोनों दिल खोलकर हँसी।

१ ‘तुम्हारी इन जुलमी आँखोंसे मेरी ओर टकटकी लगाकर न देखो।’

फिर पुष्पा बोली, - 'कहते हैं कि संस्कृत देवभाषा है - देव यदि इतनी कठिन भाषा बोलते होंगे, तो देवियाँ उसे समझती भी होंगी ?'

दो भाइयोंकी पीठपर बहुत दिनोंके बाद हुई पुष्पा इकलौती लाड़ली बेटी थी। चौदह वर्षकी उम्रमें उसे पैरोंकी एक अजीब बीमारी हो गयी। पैरोंको बालूमें रखकर और नाना प्रकारके इलाज करके दो-तीन सालके बाद वह माँ-बापको पहले जैसी देखनेको मिली। इस बीमारीके कारण उसका और अधिक लाड़ली हो जाना स्वाभाविक ही था। इस साल छठीमें वह दो-तीन विषयोंमें फेल हो गयी थी। संस्कृतसे तो उसकी जैसे दुश्मनी ही थी। परंतु उसके पिताजीकी गीता-भक्तिके कारण वह उसे छोड़ भी नहीं सकती थी। जूनमें उसकी फिरसे परीक्षा होनेवाली थी। इसलिये मई महीनेकी गरमीमें भी, संस्कृतके कारखानेमें व्याकरणके एंजिनके पास काम किये बिना, उसे चाग ही न था।

पुष्पाके प्रश्नसे सुलभाका बड़ा मनोरंजन हुआ। परंतु इस समय वह बातें करनेकी अपेक्षा चुपचाप पड़े रहना ही अधिक चाहती थी। परंतु पुष्पा उसे थोड़े ही चुप बैठने देती ! वह गर्दन हिलाती हुई बोली, - 'आज मेरे पास कौन आया था, जानती हो ?'

'हाँ'

'कौन ?'

'तेरी कक्षाका पहले नंबरका लड़का।'

'लड़का ? हट् ! बड़ा आदमी आया था। एक सम्पादक आया था - सम्पादक ! सुलभाताई ! तुम हो कहाँ ?'

'किस कामके लिये आया था ?'

'कविता माँगने ! 'रमणी' नामकी एक मासिक-पत्रिका निकाल रहे हैं वे ! शालाकी मासिक पत्रिकामे छपी मेरी कविता उसे बहुत पसंद आयी। कहता था उसका रिकार्ड -'

पुष्पाकी कविता बनानेकी प्रणालीसे सुलभा पूर्णतया परिचित थी। 'आनंदी आनंद गडे' 'में 'गडे'की जगह 'सखे' शब्द रख दिया कि प्रतिभा-सम्पन्न बाल-कवयित्री पुष्पाकी कविता तैयार हो जाती थी ! इसलिये सुलभाको शक हुआ

कि कहीं ‘रमणी’ का सम्पादक थानाकी अस्पतालसे भागा हुआ कोई शख्स तो नहीं है ? उसने पूछा, — ‘फिर तूने कविता दी या नहीं ?’

‘स्टॉकमें ही नहीं है कोई । फिर कहाँसे देती !’

हर रोज़ नये नये कविता-संग्रह प्रकाशित हो रहे हैं, और पुष्पाके पास एक भी कविता तैयार न रहे, इसका सुलभाको तबज्जुब हुआ । वह हँसती हुई बोली,— ‘तूने उस सम्पादकको निराश कर दिया ?’

‘वाह, लेख तो दे रही हूँ न मैं !’

‘कैसा ? क्या, इस विषयपर कि श्रीखण्डसे खड़ी कैसे बनायी जाये ।’

‘उड़ा लो खूब मज़ाक ! जब छपकर आयेगा, तब पता चलेगा तुम्हें । प्रवास-वर्णन लिख रही हूँ मैं ।’

स्वास्थ्यके कारण पुष्पा बंचईके बाहर कभी नहीं गयी थी । इसलिये सुलभा उसकी ओर आश्चर्यसे देखती ही रही ।

‘उस सम्पादकहीने सुझाया है यह लेख मुझे । वे कहते थे कि गिरगाँवसे दादरतकके सफ़रका बड़ा दिलचस्प वर्णन किया जा सकता है !’

सुलभाने आँखें मूँद लीं । वह यह न समझ पायी कि क्या दैवने पुरुषोंके विचित्र स्वभावके सारे नमूनोंको उसे आजके एक दिनमें ही दिखा देनेका निश्चय कर डाला है ?

पुष्पा उसके हाथपर अपने शरीरका बोझ डालकर उसे हिलाती हुई बोली,— ‘जीजी, जबतक तुम मुझे संस्कृत नहीं पढ़ाओगी, तब तक मैं पास नहीं होऊँगी । अब तुम पूना जाओ ही नहीं । व्यर्थ ही डॉक्टरनी बनी तुम । तुम्हें अच्छी बढ़िया मास्टरनी होना था । अगर मास्टरनी होती तो —’

‘— तो तुझे पास होनेमें कठिनाई न होती !’

इस वाक्यको कहते समय यह ध्यानमें आकर कि मनुष्य अनजाने स्वार्थ-भरी दृष्टिसे कैसे सोचा करता है, सुलभाका बड़ा मनोरंजन हुआ । पुष्पासे ग्रामोफोनपर एक अच्छा-सा गीत लगानेके लिये कहकर वह अटारीमें आकर खड़ी हो गयी । उसका मन बिलकुल अस्वस्थ हो गया था । जँगलेपर कुहनियाँ टेककर वह सड़कसे गुज़र रही भीड़की ओर देखने लगी ।

तीन-चार सालकी एक लड़की अपने दादाकी उँगली पकड़कर बड़ी शानसे जा रही थी । इस विचारसे कि किसी समय मैं भी इसी तरह दीखती थी, सुलभाके

मनमें आनंदकी लहर उमड़ उठी — पर क्षण-भंगके लिये ही । उस समयकी सुलभाकी और आजकी सुलभाकी मनःमृष्टिमें कितना अंतर पड़ गया है — यह विचार ही उम आनंदसे अधिक प्रभावी हुआ । वैज्ञानिक यह भले ही कहते रहें कि मनुष्य सात सालके बाद बदलता है; पर सुलभाको लगा कि उसमें क्षण क्षणमें फर्क होता रहता है । तात्यासाहबका तार आनेपर मैं कितने आनंदसे पूना जानेके लिये रवाना हुई थी । विजयके साथ चार दिन खूब मजेसे घूमूंगी, शिरगाँवकी बातें करके हम दोनों खूब हँसेंगे और जब मौसीजी विवाहके वारेमे मेरा मज़ाक उड़ायेगी, तो मैं ऐसा दिखाऊँगी जैसे मैं कुछ समझी ही नहीं हूँ — इत्यादि स्वप्न उस समय मेरी आँखोंके सामनेसे घूम गये थे । परंतु पूरा डेढ़ दिन भी नहीं बीता कि विजयसे मिलनेकी मेरी उत्सुकता जाती रही । भूकम्पके धक्केसे एक ओर मन्दिर उध्वस्त हो जावेँ और दूसरी ओर जादूके दीयेसे नये मन्दिर क्षणार्धमें खड़े हो जावें, इस तरह उसे अपने मनकी स्थिति लगने लगी ।

सड़कसे एक मनुष्य हाथमें बहुतसे फूल लिये जल्दी जल्दी चला रहा था । पीछे एकदम मोटरका हार्न बजनेसे चौंकिकर वह किनारे हुआ । इस गड़बड़ीमें उसके हाथसे दो-तीन गुलाबके फूल नीचे गिर पड़े । कितने ताज़े और बड़े गुलाब थे वे ! वृक्षपर हवाने उन्हें जो गुदगुदी की थी वह जैसे उन्हें अब भी हँसा रही थी । वे गिरे ही थे तभी पीछेसे वह मोटर आकर सर्रास निकल गयी । चकनाचूर हुए उन फूलोंकी ओर सुलभासे देखा नहीं जाता था । एक बातका उसे ज़रूर तअज्जुब हुआ । सड़कसे आने-जानेवाले किसी भी मनुष्यका ध्यान उन फूलोंकी ओर न गया । सुलभा खड़ी थी उस ओर गर्दन उठाकर देखते समय एक महाशयका पैर ही उन चकनाचूर हुए फूलोंपर पड़ गया, और हज़रत ज़ग भी लज्जित न होकर उसी शानसे आगे चलने लगे ।

बात-की-बातमें सुलभा उन फूलोंकी दुनियासे एकरस हो गयी । कितने ही मानवी फूल जगके मशीन जैसे व्यवहारमें इसी प्रकार चक्काचूर हो जाते होंगे ! दुनिया इसी तरह चलती रहेगी । गरीबोंके लिये मेरा जीवन उपयोगी हो इसलिये मैंने डॉक्टरनी बन-नेका निश्चय किया । पर्वतकी तरह, ध्येय भी जबतक दूर होते हैं कैसे सुहावने दीखते हैं ? परंतु कल मुकुंदकी बहनकी बीमारीका अनुभव । घरमें गद्दों और मसनदोंपर लेटकर गरीबोंके दुःखोंको दूर करना संभव भी है क्या ? मुकुंदने कहा — मज़दूरोंको मरनेपर ही विश्राम मिलेगा, यह झूठ थोड़े ही है । हज़ारों लोगोंकी दुर्दशा करके उनकी जान लेनेवाला यह विषमताका रोग — इसका मेरे पास इलाज क्या है ?

सुलभाका मन सुन्न हो गया। धन, यश, प्रेम — इनमेंसे किसी भी जादूका उसके मनपर अभी तक परिणाम नहीं हुआ था। इसके कारण अपने ध्येयके बारेमें अनजाने उसकी श्रद्धा बढ़ गयी थी। अस्पतालमें गरीब रोगियोंसे वह अत्यन्त सहानुभूतिपूर्वक बर्ताव करती। परंतु मुकुन्दकी दीदीकी दुनियामें इस सहानुभूतिका क्या उपयोग था? कुँएमें गिरा हुआ मनुष्य रेशमके धागेको पकड़कर ऊपर कैसे आ सकेगा?

इन विचारोंने सुलभाको इतना अनमना कर डाला था कि क्षण-भरके लिये उसे लगने लगा कि जीनेसे कोई काम नहीं है। समुद्रकी तरह मनमें भी ज्वार-भाटा होता है, परंतु इस समय उसके मनका लाभ मामूली किस्मका न था। चन्द्र-ग्रहणके दिन भाटाका पानी जिस तरह भीतर भयंकर खिंचाव लेता रहता है, उसी प्रकार उसे लगा कि जिस दुनियामें अपने ध्येयके लिये जगह नहीं है, उस दुनियासे कहीं दूर दूर भाग जाऊँ। परंतु दुनियासे भाग जानेकी राह एक ही है। मौत! वह अटारीसे जंगलेपर अपने शरीरका सारा बोझ डाले हुए खड़ी थी। थोड़ा आगे बढ़ जाऊँ, ज़रा संतुलन छूटा कि — धीरेसे आगे बढ़कर उसने आँखें मूँद लीं। यह चित्र दिखायी देते ही कि मैं ऊपरसे कूद पड़ी हूँ, उसने वे खोल दीं। इस विकृत मनःस्थितिमें वह यह देखनेका मोह सँवरण न कर सकी कि मैं नीचे कहाँ गिरी होती? उसने झुककर नीचे देखा, क्षण-भर उसे अपनी आँखोंपर विश्वास ही नहीं होता था। यदि कूद पड़ती, मैं तो सड़कपर गिरती ही नहीं। उलटे मुकुन्दके — हाँ, मुकुन्द ही था वह — दोनोंकी नज़रें एक दूसरेसे टकरायीं। सुलभाने हाथसे उसे ऊपर आनेका इशारा किया।

मुकुन्दने अपने घरका पता कैसे लगा लिया इसका सुलभाको आश्चर्य हुआ। कल मैंने उससे सिर्फ़ इतना ही कहा था कि मैं गिरगाँवमें अपनी मौसीके घर रहती हूँ। परंतु सिर्फ़ इतनेसे ही ठीक पता कैसे मिलेगा? क्या, हज़रत सारे गिरगाँवको ही छान डालनेके लिये निकल पड़े थे? मुकुन्दके बारेमें बचपनके उसके जो अनुभव थे, उन्हें देखते हुए यह बात असंभव न थी।

इसलिये मुकुन्दके द्वारमें आते ही उसने पूछा, — ‘तुम्हें मेरा घर कैसे मिल गया?’

‘डाकिया मेरा पक्का दोस्त है।’

‘उसने तुम्हें कोई चिट्ठीयाँ नहीं दे दीं?’

‘एक दी है, पर वह बहुत दिनोंसे बिना बटी पड़ी है।’

‘कहाँ?’

‘मेरे मनमें—’

‘तो फिर दे डालो न उसे—!’

‘बेरंग है वह। क्या ठिकाना लेनेवाला उसे लेगा या नहीं?’

सुलभा उसकी ओर देखती ही रही। बचपनमें भी मुकुन्दको यह बड़ा शौक था कि इसी तरह ऊपरसे अजीब-सी दीखनेवाली बात वह कह दिया करता था। सुलभा इस संवादमें हुई अपनी हारको स्वीकार करे, इससे पहले ही मुकुन्द बोला,—‘जब हम लोग शिरगाँवमें थे, तो एक बार दिवालीमें बंबई आयी थीं तुम।’

‘फिर?’

‘उस समय यहाँसे लौटनेके बाद अपनी मौसीके बँगलेकी बहुतसी हुलिया तुमने मुझे बता दी थी।’

‘वह सब तुम्हारे ध्यानमें थी?’

‘अभी मैं बूढ़ा नहीं हो गया हूँ!’

‘अगर तुम्हारी स्मरणशक्ति इतनी तेज़ है, तो किसी समय तुम अपने पिछले जन्मकी स्मृतियाँ भी कहने लगोगे?’

‘मैं कहूँ क्या?’

‘हूँ।’

‘तुम पिछले जन्ममें मेरी बहन थीं।’

‘खैर, यही गनीमत हुई कि बहन कहा, यदि दादी ही कह देते तो क्या करती?’

‘नातीको तो चपतें लगा देनी थीं।’

हँसते हुए सुलभाने प्रश्न किया,—‘केशर कौन थी पिछले जन्ममें?’

‘हमारे आँगनका हरसिंगारका पेड़।’

‘और अपनी शालाके शास्त्रीजी कौन थे?’

‘कुम्हार।’

‘वाह, तुम बड़े अच्छे शिष्य हो उनके! उन्होंने ही तुम्हें स्कॉलरशिप दिलायी।’

‘तुम्हें याद है, जब किसी लड़केका उत्तर गलत निकल जाता तब वे उसका सिर कैसे घड़ेकी तरह चपतियाते थे? पिछले जन्मका भाग्य-योग ही था वह उनका।’

क्षण-भर सुलभाको लगा जैसे उसका बचपन लौट आया है। उस समय मुकुन्द इसी तरहकी मजेदार बातें किया करता और उन्हें सुनकर सुलभा हँसते हँसते लोटपोट हो जाती।

दीवालपर लगे चित्रकी ओर देखता हुआ मुकुन्द बोला, - ‘घूमने चलती हो, सुलभा ?’

‘यहीं बैठो न गप्पें हाँकते हुए।’

‘मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ।’

सुलभाकी समझमें न आया कि इन शब्दोंको कहते हुए उसकी आवाज़में अस्पष्ट-सी आर्तता और दृष्टिमें धुँधली-सी लाचारी क्यों आ गयी।

वह बोली, - ‘यहीं कह दो न!’

‘दीवालके कान होते हैं।’

‘उन कानोंमें कपड़ा ठूँसकर हम उन्हें बंद कर देंगे।’ - सुलभाने दरवाज़ा बंद करते हुए कहा।

‘पर मैं वह यहाँ कह सकूँगा या नहीं —’

‘क्यों ?’

‘चाहे जो बात चाहे जहाँ कही जा सकती है क्या ? जब मैं कराचीमें था उस समय मेरे ही घरके नज़दीक रहनेवाले एक अंधेका लड़का मिलके पट्टेमें फँसकर मर गया और इस समाचारको उसके पितातक पहुँचानेका काम मेरे सुपुर्द किया गया। अँधेरा होतेतक मुझे उसके घर जानेकी हिम्मत न पड़ी। अँधेरेमें - ऐसे समय जब कि मुझे उसकी शून्य दृष्टि न दीख सकी, मैंने किसी तरह वह समाचार उससे कहा।’

सुलभाका हृदय धड़कने लगा। मुकुन्द मुझसे क्या कहना चाहता है ? केशर - स्त्रीका पहला स्पर्श कितना उन्मादक होता है -- या किसी गुप्त षड्यंत्रमें वह शामिल हो गया है ? उसके मनकी व्याकुलता कम हो इसलिये मुकुन्दने कहा, -- ‘यहाँ जब कॉलेजमें था, उस समय एक बार ऐसा ही हो गया था। बहस इस बातपर छिड़ी कि निरपेक्ष प्रेम दुनियामें होता है या नहीं ? मैंने कहा - होता है। दूसरे मित्र अपने अपने अनुभवोंको सुनानेके लिये शरमाने लगे। चौपाटीके कोलाहलमें अपना अनुभव सुनाना बिलकुल मेरी जानपर आ गया। आगे चलकर एक चाँदनी

रातको सब लोग जुहुपर घूमने गये थे। पिछली बात किसीके भी ध्यानमें न थी, परंतु मैंने कहना आरंभ किया ही था कि —

‘किसका था वह अनुभव?’

‘एक पगली लड़कीका। उस धनी लड़कीने भाईदूजके दिन एक गरीब लड़केको अपना भाई कहकर किस तरह उसकी स्नेहसे आरती उतारी थी —’

‘इसे छोड़ो। अब कौनसी पार्श्व-भूमि चाहते हो? वरना कह दोगे कि हिमालयकी चोटीपर ही वह बात कही जा सकती है।’

सुलभाके व्यंग्यमें जो मार्मिकता छिपी हुई थी वह मुकुन्दको जँच गई। वह बोला, — ‘इस बातके लिये कोई बड़ी पार्श्वभूमि नहीं चाहिये। आड़ी-टेढ़ी बड़ी बड़ी चट्टानें और उनपर टकरानेवाली समुद्रकी लहरें!’

‘यह काफ़ी होगा?’

इस प्रश्नका उत्तर मिलनेसे पहले ही सुलभा अपने कमरेमें गयी। मुकुन्द दीवालपर लगे चित्रोंको देखने लगा। पिंजड़ेके भीतरसे नीले आकाशकी तरफ टकटकी लगाकर देखनेवाले पक्षीका चित्र उसके हृदयसे जाकर मिड़ गया। सुलभा बाहर जानेके लिये तैयार हो गयी, फिर भी वह उस चित्रकी ओर ही देख रहा था। सुलभाकी आदृष्ट पाते ही उसने मुड़कर पीछे देखा। सुलभाको भ्रम हुआ कि उसकी तेजस्वी आँखोंमें विलक्षण करुणा भरी हुई है।

दोनों कमरेसे बाहर आये और जीना उतरने लगे। पुष्पाने ग्रामोफोनपर एक गीत लगाया था जो स्पष्ट सुनाई दे रहा था। —

‘एकत्र गुंफुनि जीवितधागे
प्रीतीचें नर्तन नाचलों मागें
एकटा उभा मी येथें’^१

मुकुन्द गुनगुनाया, — ‘एकटा उभा मी’^२

सुलभाने पीछे मुड़कर देखा। उसकी आँखोंमें अब अस्त हो रही चाँदनी नहीं दीख रही थी। कोमल धूप चमक रही थी।

● ● ●

१ ‘पहले जीवनके धागोंको एकत्र गूँथकर मैं प्रीतिका नाच नाचा था। परंतु अब मैं यहाँ अकेला खड़ा हूँ।’

२ ‘अकेला खड़ा मैं’।

८

राक्षसके राजमहलमें

बेचर्डका दिन ब्रह्मोंको एक सालकी तरह लगता है। इस सालमें रमणीय सायंकालके रूपमें वसंतकाल आ जाता है, इसी लिये वह सुसह्य होता है। सायंकालको कहीं भी देखिये, सड़कें मनुष्योंसे और मनुष्य आनंदसे खिले हुए होते हैं। पद पदपर जीवन मूर्तिमान होकर नाचता हुआ-सा दिखाई देता है। परंतु वह दौड़ा-दौड़ीका, पीछे शेर लगे हुए मनुष्यका नहीं होता। बल्कि शेरोंका शिकार करके विजयानंदसे लौट रहे वीरोंका प्रतीत होता है। बेचारी दामें सुबह-शाम निश्चित वेगसे ही दौड़ती रहती हैं। परंतु सुलभाको हमेशा ही यह लगा करता की सायंकालके समय ये गाड़ियाँ हँसती, खेलती, इठलाती और डोलती हुई जाती हैं। दोपहरके वक्त चलचिलाती हुई धूपमें निर्जन दीखनेवाले फूटपाथ सायंकालके समय प्रायः अदृश्य-से हो जाते हैं। जैसे संध्यादेवी अपने जादूसे उन पत्थरोंको फूल ही बना देती है! फेरीवालोंकी अन्यथा कर्कश लगनेवालीं पुकारों और आवाजोंको भी इस समय मिटास आ जाती है। बंदियोंकी जंजीरें तड़ातड़ टूटकर गिर पड़ें, इलियोंकी क्षणार्धमें तितलियाँ हो जावें अथवा बीमारके चेहरेपर एकदम तंदुरुस्तीकी ताज़गी दिखाई देने लगे, उस तरह यह फर्क सुलभाके अन्तःकरणको हमेशा प्रसन्न कर दिया करता था।

परंतु आज ज़रूर इस आनंद-भरी भीड़से ऊब उठी वह। मुकुन्द तेज़ीसे चल रहा था। मोटरके हॉर्न, घोड़ोंकी टापें, ट्रामोंकी खड़खड़ाहट, जोर जोरसे बातें करनेवालोंका शोरगुल—इस गड़बड़ीमें वह मुकुन्दसे एक शब्द भी न बोल सकी। उसकी चालके साथ अपनी चाल कायम रखना भी उसे कठिन हो रहा था। जाते जाते नुककड़पर एक बड़ा विज्ञापन उसे दिखाई दिया। ‘जादूके खेल!’ एकदम उसका मन भ्रमण करने लगा। मुकुन्द मुझे धूमनेके लिये बुलाता है और मैं चुपचाप उसके पीछे पीछे चली आती हूँ। वह भले ही होगा बड़ा जादूगर; परंतु मुझे इतनी कपज़ोर क्यों होना चाहिए कि उसके जादूका शिकार हो जाऊँ? बचपनमें पढ़ी हुई एक कहानी उसे याद हो आयी। एक जादूगरने किसी राज-कन्याको धोखा देकर अपने जादूसे उसे पत्थरकी मूर्ति बना दिया था। मुकुन्दके पीछे मैं पागल हो जाऊँ यानी—सुलभाका मन काँप उठा। अनजाने उमके पैर शिथिल पड़ने लगे। मेरी तरफ पीठ किये हुए मुकुन्दसे एक अक्षर भी न बोलकर इस भीड़में मिलकर घर लौट जाऊँ—ऐसा अस्पष्ट विचार भी उमके मनमें आ गया। इसी समय मुकुन्दने पीछे देखा। वह जहाँके तहाँ रुक गया। सुलभाके नज़दीक आते ही वह हँसकर बोला,—‘क्यों डॉक्टरनीजी, पीछेके पीछे सटक जानेका इरादा तो नहीं है?’

‘और हो तो?’

‘वह शोभा नहीं देता!’

‘किसे? डॉक्टरनीको?’

‘वह रानीको भी शोभा देगा! पर सुलभाको कदापि नहीं।’

दर्पणपर पड़ी हुई सूर्यकी किरणोंका परावर्तित प्रकाश आँखोंपर पड़ जावे, उस तरह सुलभाको हो गया। परंतु छोटा लड़का भी यह कभी नहीं दिखाता कि परावर्तित किरणोंसे उसकी आँखें चौंधिया गयी हैं। सुलभाने हँसते हुए कहा,—‘कुछ लोग आगे दौड़ जा रहे हैं! फिर यदि कोई पीछेके रास्तेसे भाग जाये तो आश्चर्य कैसा?’

मुकुन्दको उसकी यह बात बड़ी मज़ेदार लगी—परंतु बातोंमें भी खुशीसे हार मार लेना क्या किसीको कभी भी अच्छा लगता है? उसने तुरंत ही उत्तर दिया,—‘दुनियांने क्या किसी भी आगे जानेवालेको कभी अच्छा कहा है?’

हाँ, मैं सुवर्ण-पदक देनेको तैयार हूँ तुम्हें!’

‘मुझे ?’

‘हाँ, तेज़ चलनेकी प्रतियोगितामें तुम सहजहीमें पहला नंबर मार दोगे !’

मुकुन्द दिल खोलकर हँसा। उसकी रफ्तार भी थोड़ी कम हो गयी। अब उसकी बगवरीसे चलती हुई सुलभाको शिरगाँवकी शालाके लड़के-लड़कियाँ मिलकर एक बार जब नज़दीककी एक पहाड़ियापर सैरके लिये गये थे, उस प्रसंगकी याद हो आयी।

बहुतसे लड़के थककर ‘हुश्श’ करते हुए मंदिरमें जाकर बैठ गये। सिर्फ़ पाँच-छः ही पहाड़ियाके एक कगारसे दिखाई देनेवाले सुंदर दृश्यको देखनेके लिये रवाना हुए। वह कगार किनारेपर नुकीला था। उसपर खड़े होकर वहाँसे नीचे देखनेकी स्पर्धा शुरू हुई। लड़कोंकी आखिर किस बातको सीमा रहती है ! एकसे दूसरा अधिक नीचे झुककर देखे — यह क्रम शुरू हो गया। मैं भी अपने होशमें न थी। मैं नीचे देखने लगी। अनजाने मेरा संतुलन छूट गया। अगर मुकुन्द झटसे आगे बढ़कर मेरी बाँहें पकड़कर मुझे पीछे न खींच लेता तो...

‘तू भी चला जाता न, उसीके साथ नीचे !’ — इस तरह तुरंत ही किसीने कहा।

‘अनायास साथ मिल जाता उसे।’ — मुकुन्दने एकदम उत्तर दिया था। उस दिन घर लौटतेतक मैंने एक क्षणके लिये भी मुकुन्दका साथ न छोड़ा था।

उसने तंद्रासे जागकर आगे देखा। मुकुन्द सड़क पार कर रहा था। वह बीच सड़कपर पहुँचा ही था तभी दोनों तरफसे मोटरें आयीं। इसी समय कहाँसे कौन जाने, ‘कांवली, कांवली’ पुकार सुनाई पड़ी। मुकुन्दने एकदम पीछे मुड़कर देखा। सुलभाको लगा कि अब उसे मोटरकी एक अच्छी टोकर लगोगी। अनजाने उसकी आँखें क्षण-भरके लिये मूँद गयीं। तुरंत ही उसने आँखें खोलकर देखा तो मुकुन्द सुरक्षित था और उस पुकारनेवाले व्यक्तिकी ओर वापस लौट रहा था।

पोशाकसे मनुष्यके व्यवसायका अन्दाज़ लगाना यदि उचित है, तो उस महाशयको निःसंदेह श्रेष्ठ व्यक्ति कहा जा सकता था। वह अपने कपड़े पंडित जवाहरलालजीके दरज़ीसे ही सिलाता था क्या, कौन जाने ? परंतु ‘एक नूर आदमी और दस नूर कपड़ा’ वाली कहावतको ध्यानमें लायें तो उसे दस-ग्यारांश जवाहर-लाल कहनेमें कोई हज़ न था।

मुकुन्द और वह हाथ मिला रहे थे तभी सुलभा उनके पास पहुँची। उसने कहा था, - 'Very glad to meet you, old boy.'

मुकुन्दने हँसते हँसते उत्तर दिया, - 'मुझे अभी बहुत ज़िंदा रहना है, जनाब! कृपाकर मुझे ओल्ड बॉय न कहो!'

वह मनुष्य थोड़ा शरमाया। पर उसकी नज़र शीघ्र ही सुलभा की ओर मुड़ी। कोलंबस को धरती दीग्व गयी! उसे बड़ी अदासे नमस्कार करके मृदुल स्वर में हज़गत बोले, - 'मुकुन्द को बूढ़ा कहने के लिये मैं आपसे माफी चाहता हूँ।'

'मुझसे?'

उसने हँसते हुए उत्तर दिया, - 'हाँ, पतिको यदि बूढ़ा कहें, तो पत्नी को ही अधिक क्रोध आ जाता है।'

सोडावाटर की बोतल खोलते ही वह जिस तरह फसफमाती है, उम तरह उसकी वह हँसी सुलभा को लगी।

उसकी पीठ को थपथपाते हुए मुकुन्दने कहा, - 'शकार की गद्दी अभी तक कहीं है क्या, इसकी ज़रा अच्छी तरह खोज़ कर लो। कल महावीरजी की मेनका से शादी कर देने को भी तुम न चूकोगे! मेरा इस मित्र का नाम है सुलभा कालेलकर।'

'सुलभा कालेलकर? क्या, वे जो हाल ही में डॉक्टर हुई हैं?'

अब आश्चर्य करने की बारी मुकुन्द पर आयी। कॉलेज में वृद्धनडा के उपनाम से प्रसिद्ध मेरा यह सहपाठी क्या भूत और भविष्य का जानकार है, अथवा वर्तमान सरकार ने देश की सुशिक्षित स्त्रियों की डिरेक्टरी बनाने का काम इसके ज़िम्मे लगा दिया है? लेकिन कोई प्रसंग हमें विलक्षण मालूम हो, पर फिल्म में वह थोड़े ही अधिक समय तक रहता है? मुकुन्दने देखा तो वे स्त्री-दाक्षिण्य-कुशल महाशय सुलभा से लेखकी माँग कर रहे थे।

'क्या, खुद अपने नाम पर छपाने का इरादा है तुम्हारा?' - मुकुन्दने बीच ही में प्रश्न किया।

'मैं सम्पादक हूँ, मिस्टर कांबली!'

मराठी साहित्य पर इस भयंकर मुसीबत के आ जाने की मुकुन्द को खबर ही नहीं थी। वह रितमित होकर सम्पादकजी का प्रवचन सुनने लगा।

'स्त्रियों की दुश्मन सुशिक्षित स्त्रियाँ ही हैं। जिससे भी मिलता हूँ, यही कहती

हैं, - 'मुझे लिखना नहीं आता'। फिर स्त्रियोंका सुधार, उन्नति, प्रगति इत्यादि कैसे होगी, सुलभाताई? चाहें तो मेरी डायरी देख लीजिये। 'रमणी' के लिये एक लेख प्राप्त करनेको सौ रमणियोंके चरण छूना पड़ते हैं मुझे। शिवाजीने हिन्दु साम्राज्य स्थापन करनेके लिये भी इतने हाथ-पांव न पटके होंगे!'।

सुलभाकी समझमें न आता था कि हर रोज़ सौ रमणियोंके चरण छूनेवाले इस सवाई शिवाजीको क्या उत्तर दिया जाये। किसी भी तरह इस ब्लासे पिंड छुटे इसलिये उसने कहा, -- 'इस समय मैं ज़रा गड़बड़ीमें हूँ। आगे देखूंगी।'।

'कल मिट्टें या परसों?'

'कल-परसों तो मैं पूना जा रही हूँ!'

'अच्छा, तो वहीं मुलाकात करूँगा आपकी। पूनामें मैं प्रोफ़ेसर गरुड़के साथ टहरा करता हूँ।'।

सुलभा छुटकारेकी सौस लेनेवाली थी, तभी संपादकजी बोले, - 'विषय सुझाये देता हूँ आपको अ-अ-आ — संताननिरोध चल जायेगा आपको? अनायास डॉक्टरनी हैं ही आप। इस संबंधमें पाठकोंके बहुत पत्र आते हैं हमारे पास। साथ ही थोड़ी सनसनी भी फैलाई जा सकेगी!'

'तुझे कितने लड़के हैं, रे?' - मुकुन्दने पूछा।

'तुझ जैसे चार लोगोंको गोदमें दूँगा।' - चिढ़कर सम्पादक महाशयने मुकुन्दको उत्तर दिया।

• • •

सुलभा मुकुन्दकी बराबरीसे चल रही थी। परंतु वे किस ओर जा रहे हैं इस तरफ उसका ध्यान ही न था। हालहीमें जो सम्पादकजी मिले थे उनकी निर्लज्जताके बारेमें वह सोच रही थी। तात्यासाहब अपनी बातचीतके दौगनमें सहज-भावसे कोंकणके अनेक सपोंकी जानकारी दिया करते! इस समय उसे उनमेंके सर्पटोलीकी याद हो आयी। कहते हैं कि यह सर्प हरे वृक्षपर छिपा बैठा रहता है। उसके हरे रंगके कारण किसीको यह शक भी नहीं होता कि वृक्षपर वहा बैठा हुआ है। परंतु ज्यों ही मनुष्य उसकी मारके दायरेमें पहुँचा कि वह एकदम उसके सिरपर कूदकर उसे काट खाता है। स्त्रियोंका सुधार करनेके ब्रह्मने आगे बढ़नेवाले पुरुष भी क्या इसी तरह होते होंगे? सुशिक्षित पुरुषोंकी दृष्टि भी सुधरी हुई न हो? शराबी अंगूरोंकी तरफ शराबकी आशासे देखे, क्या इसी तरहकी

यह बात नहीं है ? उसने हालहीमें जो अनेक कहानियाँ और उपन्यास पढ़े थे, वे चटके उसके मनके सामनेसे सरक गये। पुरुष एक छोटा बालक है और स्त्री उस बालकको खेलनेके लिये सृष्टिके द्वारा दिया गया एक खिलौना है— उसके सिवा दूसरी कल्पना ही किसीको नहीं सूझती ! यदि फर्क रहता है तो इतना ही कि कोई बालक अपने खिलौनेको हिफाजतसे रखता है, कोई दूसरा बालक उसे तोड़-फोड़ डालता है। परंतु जहाँ देखो वहाँ उपभोगकी दृष्टि ! उसके मनकी तलीको मथ डालनेवाले इन विचारोंने मुकुन्दके उन विचित्र शब्दोंको भी उसके पृष्ठभागपर ला दिया। 'स्त्रीका पहला स्पर्श कितना उन्मादक होता है।' उसके रोंगटे खड़े हो गये। मुकुन्द अब मुझसे क्या कहनेवाला है, कौन जाने ?

'आगे चट्टानपर चलकर बैठेंगे।'—मुकुन्दके इन शब्दोंके साथ ही उसने आसपास देखा। उसने यह कभी नहीं सोचा था कि इतने नज़दीक इस तरहका कोई शान्त स्थान मिल जायेगा। इस स्थानके परे लाखों हृदयोंके स्पन्दनसे हिलनेवाली बंबई थी ज़रूर। परंतु पिंजड़ेके भीतरकी चिढ़ी हुई शेरनीकी तरह चल रही उसकी उछल कूदका यहाँ नामोनिशान तक न था। यहाँ बैठनेवालोंको यही लगता कि कहीं दूरपर कोई हरिणी फुदक रही है। मुकुन्द एक मेमनेकी तरह एक चट्टानसे दूसरी चट्टानपर कूदता हुआ चला जा रहा था। परंतु सुलभाको समूह-समूहकर चलना पड़ता था। कोई कोई चट्टानें कितनी प्रचण्ड थीं ! बहुत-सी बीचहीमें फूटी हुई, तो बहुतसी चिकनी हो गयी थीं। सड़कसे दूर निकल जानेपर मुकुन्द खड़ा रहा। सुलभाके आते ही एक अच्छा चिकना स्थान उसने उसे बैठनेको दिया। वहाँसे सामनेवाले समुद्रका दृश्य भी बड़ा सुन्दर दीख रहा था। बैठते बैठते वह हँसती हुई बोली,— 'यह स्थान बिलकुल ठीक कैसे मिल गया तुम्हें ?'

'चाहे जो चीज़ें दुनियामें नहीं मिलतीं, सुलभा ! उन्हें प्राप्त करना पड़ता है।'

यह बात न थी कि उसके जवाबमें जो रूखाई थी उसे सुलभाने महसूस न किया हो। लेकिन उसने हँसते हुए पूछा,— 'यह खोज तुम्हारी ही है क्या ?'

'कॉलेजमें जब मेरा दिमाग भड़क उठता, तो चार-चार घंटे मैं अकेला ही यहाँ आकर बैठा करता। इस समुद्रकी साक्षीसे अपने मनके कितने ही तूफ़ान मैंने शान्त किये हैं ! सुलभा, यदि अलाउद्दीनका चिराग़ मेरे हाथमें आ जाये तो मैं उससे कहूँगा— यहीं मेरा महल बना दे।'

सुलभाको इस बातका प्रमाण मिल गया कि मुकुन्द कितने जल्दी विनोद-प्रिय हो सकता है। उसकी भी विनोदवृत्ति जागृत हुई। 'लेकिन इस राजमहलमें कोई रानी रहना मंजूर भी करेगी ?'

'न मंजूर करनेको क्या हो गया ?'

'कहीं राजासाहब उसपर नाराज़ हो गये तो उसे समुद्रमें ही फेंक देंगे !'

'इसके सिवा एक दूसरा ही भय है !'

'कौनसा ?'

'ऐसा राजमहल कब नाश हो जायेगा इसका क्या ठिकाना ? इसलिये उस राजमहलमें सिर्फ मैं और वह राक्षस - हम दोनों ही रहेंगे।'

वे दोनों जहाँ बैठे हुए थे उन चट्टानोंके बीचसे खलखल आवाज़ करता हुआ लहरोंका पानी आता जाता था। उनके मन भी उसी तरह कुलबुला रहे थे। उस पानीपरसे अपनी नज़र ऊपर ऊठाकर सुलभाने देखा तो मुकुन्द एकाग्रतासे समुद्रके विस्तारकी ओर देख रहा था। उसकी साँवली मुद्रा, तेजस्वी आँखोंके कारण, कितनी खिलकर दीख रही थी ! थोड़ी देर टकटकी लगाकर सामने देख-नेके बाद वह बोला, - 'सुलभा, कराचीमें सैकड़ों मज़दूरोंकी सभामें बोलते समय मैं क्षण-भर भी कच्ची नहीं खाता था। परंतु आज तुमसे बातें करते समय —'

'मेरा इतना भय लगता है तुम्हें ?'

'भय ? सारी दुनिया क्या भयपर ही चल रही है ?'

'अच्छा, अब दुनियाको हटा दो एक तरफ। और तुम्हें जो कहना है, वह —'

'दुनिया कभी भी एक तरफ नहीं हट सकती। लहरोंकी खलखलाहटसे ऊबकर मछलियाँ कभी किनारेपर आ जाती हैं क्या ?'

'कितना फर्क पड़ गया है तुम्हारे स्वभावमें, मुकुन्दबाबू ! पूरे रूखे तत्त्वज्ञानी बन गये हो तुम ? मेरा मुकुन्द ऐसा नहीं था।'

'तुम्हारा ?'

'हाँ, मेरी आँखोंके सामने अभीतक शालाका मुकुन्द ही खड़ा होता है। वह कवि था।'

'काव्य व्यवहारके अनुभवमें ठंडा पड़ जाता है और फिर उसका तत्त्वज्ञानमें रूपान्तर हो जाता है।'

'हमारे प्रोफ़ेसर गरुड़ हमेशा कहा करते थे, वह झूठ नहीं। तत्त्वज्ञान बर्फकी

तरह होता है। संसारके पानीमें उसका एकाध टुकड़ा डाल दें तो पानी अच्छा ठंडा हो जाता है। पर यदि हर समय कोई बर्फकें टुकड़ोंको मुँहमें भरने लगे—कुछ समय पहले जब उस बेवकूफने तुमसे old boy कहा, तो तुमने कैसा अच्छा ताना कसा उसपर! परंतु कल हमारी और तुम्हारी भेट होनेके बादसे तुम बूढ़ेकी तरह ही बर्ताव कर रहे हो! देखो, एक बड़ा मज़ेदार वाक्य मैंने कहीं पढ़ा है—बूढ़ेके मन तहखानेकी तरह होते हैं। उनमें कौनसे रहस्य छिपे रहते होंगे—’

‘और तरुणोंके मन अटारीकी तरह होते हैं। दूरका दृश्य देखनेके लिये बहुत अच्छे! परंतु कूदनेको कहा तो—हटाओ इसे! बचपनमें भी हम बातोंमें एक दूसरेसे हारते नहीं थे। फिर—’ हवाई जहाज़ उतरनेसे पहले जिस तरह चक्कर लगाता है, उसी तरहका यह सभाषण था। क्षण-भर चट्टानोंपरसे उछलनेवाले फुहारोंकी ओर देखता हुआ मुकुन्द बोला, — ‘आज तुमसे मैं जो कहनेवाला हूँ, वह तुम्हें बड़ा विचित्र लगेगा।’

सुलभाकी आँखोंके सामने केशर खड़ी हो गयी। मुकुन्दकी ओर टकटकी लगाकर देखती हुई वह बोली, — ‘सभी बातें विचित्र हैं तुम्हारी। इतना होशियार लड़का बीचहीमें कॉलेज छोड़ देगा, यह मुझे स्वप्नमें भी सच न लगता।’

‘स्वप्नके बराबर सत्य प्रिय कैसे होगा? सुलभा, मैं बंबई आया था बड़ी महत्वाकांक्षा लिये हुए। सोचता था आइ. सी. एस. हो जाऊँगा, कम-से-कम बड़ा डॉक्टर अथवा पंडित बनूँगा, बँगलेमें रहूँगा और कारमें घूमूँगा—जीवनका वह समय स्वप्नोका ही होता है। परंतु यहाँ आते ही मेरे स्वप्न ही नहीं, बल्कि मेरी नींद भी त्रिलकुल साफ उड़ गयी।’

‘काहेसे?’

‘पढ़नेसे?’

‘पुस्तकें पढ़कर?’

‘हाँ, पर वे मामूली पुस्तकें न थीं। अनेक मनुष्योंकी ज़िंदगीका ग्रंथ था वह। उसके पन्ने पन्नेपर जो दुःख भरा हुआ था, उसको देखकर कॉलेजकी निर्जीव पुस्तकोंपरसे मेरा जी उचट गया। उन दिनों मैं दीदीके घर ही रहा करता था! हर रोज़ शामको कॉलेजसे लौटनेके बाद जो तमाशा मैं देखा करता, वह यदि तुमसे कहने लगूँ तो—तुम्हें वे बातें स्वप्नमें भी सच नहीं मालूम होंगी। क्या,

कोई अपनी बहन या पत्नीके शीलका बलि जानबूझकर दे देगा ? अफीम देकर अपने ही बच्चेकी क्या कोई हत्या कर देगा ? गंदे रोगोंसे ग्रसित होकर सड़ते पड़े रहना किसीको अच्छा लगेगा क्या ? ऐसी बातोंको खुली आँखोंसे देखना मैं बरदाश्त न कर सका । यदि आँखोंको बंद कर लेता, तो मनके परदेपर उनकी भयानक फिल्म सरकने लगती । पढ़लिखकर मैं बड़ा होनेवाला था । जीवनके स्वर्गको प्राप्त करनेकी मेरी इच्छा थी । परंतु मेरा मन मुझसे पूछने लगा—तुम जैसे हज़ारों लोग नरकमें पड़े सड़ रहे हैं, तब तुझ अकेलेको स्वर्गमें जानेका हक है क्या ?

‘ प्रोफ़ेसर या डॉक्टर बनकर तुम इन ग़रीबोंकी मदद नहीं कर सकते थे ? ’

‘ कर सकता था न ! अपने मनको यही जँचानेके लिये यहाँ आकर मैं घंटों बैठा रहता । परंतु इस समुद्रकी ओर देखता तो लगता, टिटहरीने कभी समुद्र सूखा डाला है क्या ? उसके लिये अगस्ति ही चाहिए ! ’

‘ सब बड़े बड़े लोग क्या टिटहरियाँ हैं ? ’

‘ केन ’ से चाहे जितना बोझ उठाया जा सकता है । परंतु मनुष्य कितना भी ताकतवर हो जाये, फिर भी क्या वह केनका काम कर सकेगा ? ’

‘ यदि तुम अपनी शिक्षा पूरी कर लेते तो इसमें क्या हर्ज़ था ? ’

‘ मुझे कोई हर्ज़ न था । ’

‘ फिर किसे था ? ’

‘ प्रिन्सिपलने ही भगा दिया मुझे कॉलेजसे ! ’

‘ भगा दिया ? ’

‘ बुरे आचरणका नतीजा मुझे भोगना ही चाहिए था । इस तरह आश्चर्यसे न देखो मेरी तरफ ! लड़कियोंको प्रेम-पत्र लिखनेकी झंझटोंमें मैं नहीं फँसा था । उस समय बंबईमें एक बड़ी हड़ताल चल रही थी । मैंने यह आन्दोलन शुरू किया कि कॉलेजका स्नेहसम्मेलन रद्द कर दिया जाय और उसके लिये जो रक़म एकत्रित हुई है वह सब हड़तालियोंकी मददके लिये दे दी जाये । प्रिन्सिपल किसी भी तरह उसके लिये राज़ी नहीं होते थे । इसलिये कुछ लड़कोंने सम्मेलनपर बहिष्कार डालनेका निश्चय किया । बहिष्कार सफल हो गया । परंतु अन्तमें बाकीके लड़कोंने माफ़ी माँग ली और जुर्माना दे दिया । इसलिये वे छूट गये । पर मैं ज़रूर — ’

‘ तुम्हें जानती हूँ मैं । ’ — सुलभाने सराहना-भरे स्वरमें कहा ।

१ भारी बोझ उठानेकी मशीन ।

‘मैंने प्रिन्सिपलसाहबसे सीधा सवाल किया—‘गरीबोंके लिये यदि दया मालूम हो, तो क्या यह कोई अपराध है?’ वे बोले—‘मैं तुम्हारी बेचैनीको महसूस करता हूँ। पर कॉलेजका अनुशासन भंग करनेके लिये सुलभा, प्राणोंकी अपेक्षा शरीरका मूल्य अधिक माननेवाले इस टांगी समाजपर बड़ी चिढ़ आती है मुझे। अनुशासन, शास्त्र, रूढ़ि—इन्होंने सामाजिक जीवनको कारागारकी ज़िंदगी बना डाला है।’

‘परंतु खुद अपनी ज़िंदगी बरबाद करनेसे—’

‘उस समय प्रिन्सिपलसाहबने भी यही कहा था। मैंने इतना ही उत्तर दिया था उन्हें कि जीवनके कार्यके बारेमें प्रत्येककी धारणा अलग अलग होती है। इस भयसे कि कॉलेजका एक बहुत होशियार विद्यार्थी कम हो जाता है, उन्होंने मेरे मनको मोड़नेका बहुत प्रयत्न किया। यह युक्तिवाद करनेसे भी वे नहीं चूके कि बैरके झाड़पर यदि लड़केने पत्थर मारे, तो बैर नहीं गिरते, बल्कि पत्थर लगकर उन्हें चोट ज़रूर लग जाती है। मैंने तुरंत कह दिया—‘चोटसे बहनेवाले खूनको पोंछनेके बदले मैं पहले यही देखूंगा कि पेड़पर किस तरह चढ़ सकूँ।’

मुकुन्दके स्वाभिमानी और पराक्रमी स्वभावसे सुलभा परिचित थी ही। परंतु यह परिचय शालाकी छोटी-सी दुनियामें था। तालाबमें शानसे तैरनेवाला मनुष्य समुद्रके सामने टिका ही रहेगा, यह बात नहीं है। बीचहीमें पढ़ाई छोड़ देनेके लिये सुलभाकी मुकुन्दपर जो नाराज़गी थी, वह अब उसके मनसे जाती रही। उसका स्थान आदरने ले भी लिया होता। लेकिन मुकुन्दकी नोट-बुकका वह पहले स्पर्शवाला विचित्र वाक्य उसके मनमें निरंतर चुभ रहा था ! उसे रोकनेके लिये उसने पूछा,—‘यह भी तो बताओ कि कॉलेज छोड़नेके बाद कौन कौनसे धंधे किये—किस किसको लूटा—’

मुकुन्दने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया,—‘एक मनुष्यको धोखा दिया।’

‘एकहीको ? नाम भी सुनूँ उसका ?’

‘क्या करोगी सुनकर ?’

‘ठीक है। तो जाती हूँ मैं अब !’

‘क्या, बचपनकी तरह अब भी गुस्सा तुम्हारी नाकपर ही रहता है ? मेरा ख्याल था कि जब लड़कियाँ बड़ी हो जाती हैं, तो वह नाकसे उतरकर आँखोंमें आ जाता है।’

‘मैं नाम सुनना चाहती हूँ।’

‘तुम जानती हो उसे।’

‘ऐसी टालमटोल नहीं चलेगी, समझे?’

खिन्न स्वरमें मुकुन्दने कहा, — ‘मेरी दीदी!’

सुलभाकी कल्पना थी कि मुकुन्दको केशरका नाम लेना पड़ेगा। इसलिये मुकुन्दके इस उद्गारसे वह चकित हो गयी।

‘सुलभा, मेरे साथी आज बड़े बड़े ओहदोंपर हैं, गुलछरें उड़ा रहे हैं, चैन कर रहे हैं, कारोंमें शानसे घूम रहे हैं। इस बातकी क्षण-भर भी विप्रमता नहीं मालूम होती मुझे। मनको मारकर शरीरका श्रृंगार करनेवाले सम्राटसे भी मैं ईर्ष्या नहीं करूँगा। कॉलेज छूट जानेके बाद मनको स्थिर करनेके लिये मैं यहाँसे कराची गया। वहाँके मज्जदूरोंमें रहा। मैंने अपनी आँखोंसे देखा कि कांकणसे वहाँ गये हुए मेरे भाईबंद अपने दिन वहाँ कैसे काट रहे हैं। और उसे देखते ही मैं स्वयं अपने जीवनको जैसे बिलकुल ही भूल गया! सुलभा, पानीमें डूब रहे मनुष्यको बचानेके लिये जो शख्स पानीमें कूद पड़ता है वह बेवकूफ पानीके प्रवाहके साथ बह जाता है। मेरा वही हुआ। बचपनमें ही माँ मुझे अकेला करके चल दी। उसके स्नेहसे मैं वंचित रहा। दीदीने मुझे छोटेसे बड़ा किया। उसकी सारी आशाएँ मुझपर थीं। इस उम्मीदपर कि बड़ा होकर मैं उसके सारे मनोरथ पूर्ण करूँगा, भूखों रहकर भी मैं शालामें पढ़ा। परंतु — आज बिस्तरपर बीमार पड़ी होते हुए भी दीदी मुझे —’

सुलभाको भ्रम हुआ कि मुकुन्दकी आँखोंमें पानी तैर रहा है। परंतु वह भ्रम ही था। तुरंत ही हँसकर वह बोला, — ‘कुछ भी हो, पर दीदीके लिये मुझे हाथपाँव पटकना ज़रूरी है। तुम्हींने कहा था कि उसे वायुपरिवर्तनकी ज़रूरत है। यदि यह किया जाये तो मुझे पैसे भी कमाना चाहिए। पुरानी पहचान निकालकर किसीके घर जानेकी मेरी हिम्मत नहीं होती। काम तो धरा रहेगा एक तरफ, और कोरी पूछताछ शुरू हो जायेगी। तुम्हारी सिफारिशसे यदि दो अच्छी ट्यूशनें मुझे मिल जायें तो —’

मुकुन्दके तीव्र स्वाभिमानको दुर्भाग्यके आगे नतमस्तक होनेका अवसर आ जावे इसका सुलभाको अत्यन्त दुःख हुआ। परंतु उसके मौनका मुकुन्दने कोई दूसरा ही

अर्थ निकांला । 'तुम अपने मनमें कह रही होगी मैं भी मज़दूरी क्यों न करूँ ? परंतु शारीरिक काम करनेके लिये मैं अयोग्य हो गया हूँ ।'

'इसका मतलब ?'

'एक बार मुझे बड़ी भयंकर मूँदी मार पड़ी थी —'

'कहाँ ?'

'कराचीमें ।'

'क्या, मारपीट करना भी सीख गये हो तुम ?'

'मनुष्यको जैसा मौका आ जाये वैसा करना पड़ता है । पूरे पन्द्रह-बीस दिन तक बिस्तर पकड़ लिया था मैंने उस समय ।'

'उस समय सेवा-शुश्रूषा किसने की थी तुम्हारी ?'

'उसके लिये क्या कमी थी ? मैं बिस्तरसे बिलकुल टससे मस नहीं हो सकता था । एक चोर बिलौटा आता और टक्कन खोलकर मेरा दूध पी जाता था ।'

मुलभाकी आँखोंमें पानी और मुँहपर हँसी खड़ी हो गयी । उसने पूछा, —
'लेकिन यह धर्मयुद्ध आखिर किया किसके लिये था ?'

'तुम्हारी जैसी एक लड़कीके लिये ?'

'उसका नाम ?'

'नाममें क्या रखा है !'

'मैं बताऊँ ?'

'बताओ ।'

'केशर !'



९

हीरा और चाँदनी

‘पुष्पा, काकाजीके कमरेमें जो शास्त्रीजी बैठे थे, क्या वे चले गये?’

पुष्पा एक उपन्यास पढ़नेमें लगे गयी थी। मधुर स्वप्नसे कोई बीचहीमें हिलाकर जगा दे, ऐसा उसे लगा। उपन्यासमें रखी अँगुलीको न निकालकर उसी हाथसे अँगड़ाई लेते हुए उसने पूछा, — ‘क्या है री, जीजी?’

‘काकाजी अगर अकेले बैठे हों, तो चलो थोड़ा उनके पास हो आये!’

‘किसलिये?’

‘तू जो उपन्यास पढ़ रही है, उसकी कहानी उन्हें सुनायेंगे हम!’

हाथमें रखी पुस्तकको धीरेसे दूर कर, नज़दीककी दूसरी पुस्तक उठाते हुए पुष्पा बोली, — ‘मैं तो गीता पढ़ रही हूँ।’

सुलभाने नज़दीक जाकर देखा! पुष्पाके हाथमें गीता ही थी। सुलभाके मनमें आया — जहाँ सख्ती की जाती है, वहाँ चालाकी हो आयेगी। सोनेसे पहले गीताका एक अध्याय पढ़ना ही चाहिए, ऐसा जुल्म काकाजीको इस उम्रमें पुष्पापर क्यों करना चाहिए?

सुलभा पुष्पाको करीब करीब खींचते हुए ही काकाजीके कमरेमें ले गयी। मृगछालापर बैठकर चौकीपर रखी गीताका पारायण करनेवाले काकाजीको देखते

ही सुलभाकी आँखोंमें एक शरारत भरी चमक क्षणभरके लिये आ गयी। जैसे पुरानी स्मृतियोंपर प्रकाश डालनेके लिये ही वह चमक आयी थी। मौसीके द्वारा बचपनमें कही गयी काकाजीकी कितनी ही बातें उसे एकदम याद हो आयीं! एक बार काकाजी शिरगाँव पधारे थे। घरमें आमका गुड़ डालकर अचार बनाया था। उसे चप चप खाते हुए काका बोले, — ‘लेकिन हरिणके अचारको नहीं पा सकता यह!’ किसी मुकद्दमेके सिलसिलेमें कुछ खेतोंको मौकेपर देखनेके लिये काका एक गाँव गये हुए थे। वहाँ उन्हें सबसे पहले हरिणकी दावत दी गयी। तबसे उन्हें हरिणके मांसकी जो रुचि लगी —

सुलभा और पुष्पा दरवाज़ेमें खड़ी थीं। काका स्वगत भाषण करनेवाले अभिनेताकी तरह एकदम ज़ोरसे बोले, — ‘वाह! क्या तत्त्वज्ञान है! ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति सर्व भूताना — हृद्देशे —’

सुलभाने हँसी रोकनेकी परकाष्ठाका प्रयत्न किया; परंतु ज़ोरसे दूधका उफ़ान आया हो, तो वह पानीकी चार बूंदोंसे थोड़े ही नीचे बैठ जाता है! नटखट बालक मौँके हाथको झटककर एकदम जाकर नरम बालमें लोट जावे, उस तरह वह हँसी चटसे बाहर निकल पड़ी। काकाजीने गर्दन ऊपर उठाकर देखा। सुलभाको स्वयं अपने आपपर क्रोध हो आया। उसके मनमें यह शंका भी आ गयी कि जिस कामके लिये मैं यहाँ आयी हूँ, वह काम इस हँसीके कारण कहीं बिगड़ न जाये। परंतु काका बिलकुल आनंदमें थे। शायद उन्हें यह भी लगा हो कि हास्य हृद्देशके ईश्वरकी भाषा है।

सुलभाकी ओर टकटकी लगाकर देखते हुए वे बोले, — ‘लगता है, तुम्हारा जाना स्थगित हो गया है, तार्ई! ईश्वरकी कृपा है तुमपर!’

जन्मभर सोचते रहनेपर भी सुलभाकी समझमें यह न आता कि मेरे जाने अथवा रहनेसे ईश्वरका क्या संबंध है। परंतु काकाने इस पहेलीको क्षणार्धमें हल कर दिया।

‘अभी कुछ समयके पहले शास्त्रीजी कहते थे कि उत्तर-भारतसे एक पंडित आये हुए हैं! गीता बहुत अच्छी कहते हैं वे। काशीमें ‘कर्मण्येवाधिकारस्ते’ चरणपर सैंतालीस सप्ताह तक उनके प्रवचन होते रहे थे।’

सुलभाकी आँखोंके सामने ‘भारी भीड़का शानदार तीसरा सप्ताह’, ‘भीड़से बचनेके लिये समयसे पहले आइएगा’, ‘शानदार बीसवाँ सप्ताह’ इत्यादि

फिल्मोंके विज्ञापन घूम गये। लेकिन काकाने रामबाणको अबतक हाथमें रखा ही था। वे अभिमानसे बोले, 'इतने प्रवचन हो जानेपर भी उनका विवेचन समाप्त ही नहीं हुआ, अभी अधूरा ही पड़ा है!'

काकाको उच्च गीता-लोकसे शालाकी किताबों, कहानियों और उपन्यासोंसे भरी हुई निकृष्ट दुनियामें कैसे लाऊँ, यह सुलभाके सामने एक सवाल ही खड़ा हो गया। क्षण-भर हाथसे केशोंकी दो-तीन लट्ठोंके साथ खेलते हुए वह बोली, - 'आपने अभीतक यह नहीं बताया कि ईश्वरकी मुझपर कौनसी कृपा हुई है?'

'तुम तरुण और तरुणियाँ हम सरीखी भुलक्कड़ नहीं होतीं इसी लिये इस उम्रमें एक बार यदि गीताकी ओर रुचि हो गयी कि — हाँ, तुम रह गयी यह अच्छा हुआ। मैं इस पंडितके प्रवचन यहीं अपने घर करवा रहा हूँ। कम-से-कम घर ही पवित्र हो जायेगा। वे आत्मापर विवेचन करेंगे - आठ दिन 'नायं हन्ति' पर और आठ दिन 'नायं हन्यते' पर।'

'ये पंडितजी क्या संस्कृत पढ़ा सकते हैं?' - गनीमी छल और जोहार इन दोनों युद्धप्रणालियोंका मिश्रण करते हुए सुलभाने पूछा।

काकाजी उसकी ओर देग्वते ही रहे। कल यह छोकरी यह भी प्रश्न पूछेगी कि क्या अमृत कोटिंद्रकसे अच्छा होता है, अथवा क्या इन्द्र तो तोपोंकी सलामीवाले राजासे बड़ा होता है? आश्चर्यका पहला आवेश कम हो जानेपर वे बोले, - 'क्यों, अब संस्कृत सीखनेकी सनक आयी है क्या तुम्हें?'

'मुझे नहीं। परंतु पुष्पाको तो पढ़ाना ही चाहिए। उसकी परीक्षा है फिरसे एक महीनेके बाद!'

'कुम्हारके कामके लिये ऐरावत किस कामका?' - सुलभाको मात देनेके लिये किसी प्रवचनमें सुना हुआ एक उदाहरण काकाजीने पेश किया।

'पर ऐरावत न हो, तब भी किसी न किसीकी ज़रूरत तो है ही!'

'बेशक!'

'मेरी पहचानका आदमी है एक!'

'मास्टर है क्या?'

'मास्टर तो नहीं है। परंतु उसने जगन्नाथ शंकरसेठ स्कॉलरशिप प्राप्त की थी!'

'ठीक है। कह दो उससे, पढ़ाया करे लड़कीको। फीस —'

‘एक महीनेमें लड़कीको परीक्षाके लिये तैयार कर देना है। इसलिये कम-से-कम पच्चीस रुपये —’

‘देखो अगर बीसपर गज़ी हो जाय तो; वरना — मुझे अभी अपना गीतापाठ पूरा करना है और पुष्पाको भी अधिक जागरण बरदाश्त नहीं होता। इसलिये जाओ, सो जाओ तुम लोग अब।’

सुलभा नर्म बिस्तरपर जाकर सो गयी ! परंतु किसी तरह भी उसे नींद नहीं आती थी। कालकी रात उसने बेचैनीमें ही काटी थी। दो पहरको तो उसे दम लेनेकी भी फुरसत न मिली थी। परंतु उसकी कल्पनाको एक ही दिनमें इतने नये खिलौने मिल गये थे, कि एकको फेंककर दूसरा लेती, उसको फेंककर तीसरा उठाती — इस प्रकारके खेलमें उसे नींदका होश ही न रहा। मुकुन्द, मनोहर और केशर बार बार उसके मनकी रंगभूमिपर आते और चले जाते। बीचहीमें काकाके पूर्व-जीवनका उसे स्मरण हो आता। एक कठोर पुलिस अफसरके नाते काकाकी बड़ी ख्याति थी। उन्होंने अपना बँगला बनानेमें पानीकी तरह पैसा खर्च किया था, परंतु इसके बारेमें लोगोंकी यह आलोचना भी अनेक बार उसके कानोंमें पड़ी थी कि इस पानीमें मेहनतका पसीना अधिक नहीं है। उनका बड़ा लड़का पुलिसके खुफिया विभागमें एक अच्छे ओहदेपर नियुक्त हो गया और काकाने पेन्शन ले ली। पुलिस विभागकी साहस और वीरताभरी बातोंको सुनानेके बदले वे गीतापाठमें निमग्न होने लगे। उनका भेष बदल गया। जासूसी बातोंकी जगह वेदान्तने ले ली। और तो और, उनका मित्र-परिवार भी बदल गया। बुढ़ापा यानी दूसरा बचपन ही है। उसे भी किसी खिलौनेकी ज़रूरत होती ही है। इस दृष्टिसे सुलभा आजतकके काकाके गीतागौरवकी ओर देखा करती थी। परंतु ट्यूशनके बहाने काका और मुकुन्दका अब निकट संबंध आयेगा — इस दृष्टिसे वह जैसे जैसे विचार करने लगी वैसे वैसे उसे लगने लगा कि इन दोनोंके जीवनमें विलक्षण विरोध भरा हुआ है। जबतक हाथ-पाँव चल रहे हैं तबतक वे खुलकर चलते रहें ! किंतु इस स्वच्छन्दतामें यदि दूसरोंको लात और घूँसे पड़ जायें फिर भी कोई हज़्ज़ नहीं। वे थक जायें, तो मुँहसे रामराम कहते रहिये जिससे कि हाथपाँव द्वारा किये गये सारे पापोंका विनाश हो जाता है। इसके विपरीत अन्यायका प्रतिकार करनेके लिये यदि कोई हाथ उठावे अथवा दौड़ पड़े

तो उसके हाथ पाँवोंमें ज़रूर चटसे जंजीरें पड़ जाती हैं। इससे बड़ा आश्चर्य दुनियामें दूसरा कौनसा होगा ?

अभय ही मनोहर होगा क्या—केशरके लिये प्राणोंपर उदार होनेका कारण मुकुंद मुझे क्यों नहीं बताता—इत्यादि प्रश्नोंकी अपेक्षा यही विचार उसके मनमें अधिकाधिक खलबली मचाने लगा। समुद्रके किनारे, लहरोंकी खलबलाहटमें, मंद स्वरकी बात सुनायी ही नहीं पड़ती। उसकी कोमल भावनाओंकी कानाफूसी भी मनमें उठ रही इस सामाजिक आश्चर्यकी खलबलीमें इसी तरह लुप्त हो गयी। शाला, खेल, अस्पताल इत्यादि स्थानोंके कितने ही कर्ण स्मृति-चित्र क्षणार्धमें सजीव हो गये। उसे लगा, आजकी दुनियामें इन्सान हैं; परंतु इन्सानियत नहीं। इसके लिये ज़िम्मेदार कौन ?

विस्तरपर बैठे हुए भी उसे चैन नहीं पड़ती थी। उस तरफ़ शान्तिसे सोयी हुई पुष्पासे उसे ईर्ष्या हुई। पर क्षण-भरके लिये ही। तुरंत ही उसके मनमें आया—आकाशमें उड़नेवाले पक्षी अगर तितलियोंसे अपनी तुलना करें, तो क्या यह पागलपन न होगा ? शांति ! उसके मनको छोड़कर सर्वत्र शान्ति थी। घड़ीकी टिकटिकको सुनकर उसकी कल्पनाको आभास हुआ कालरूपी पुरुष रात्रिका समय काटनेके लिये एक विचित्र गीत गा रहा है। वह एकाग्रतासे उस गीतके विलक्षण स्वर सुनने लगी। परंतु थोड़ी ही देरके बाद उसे भ्रम हुआ कि उस टिकटिकका रूपान्तर घनघन आवाज़में हो रहा है। आधी रातको जागनेवाले मनुष्यको कोई साथी चाहिए, इसी लिये उसने पिशाचकी कल्पना निर्मित की होगी, यह कल्पना भी उसके मनमें आ गयी। मध्यरात्रिके एकान्तमें मनुष्य छोटे बालककी तरह अद्भुतरम्यतामें मग्न हो जाता है। मनके इस मनमाने भ्रमणमें सुलभाने कितने ही चित्रविचित्र दृश्य देखे। एक बार मुकुंद हिमालयके शिखरपर खड़ा होकर गगनको छूनेका प्रयत्न कर रहा था। उस प्रयासमें उसका संतुलन खो गया। पर्वतके नीचे खड़ी हुई सुलभा उसे पकड़नेके लिये दौड़ती हुई आगे गयी। उसे लगा कि तुर्यटनासे वह डर गया होगा। परंतु सुलभाका स्पर्श होते ही हँसते हँसते वह बोला, — ‘यदि नीचे पकड़नेके लिये तुम रहो, तो मैं इससे भी अधिक ऊँचा जाऊँगा !’

दूसरे दृश्यमें स्पर्धाके मैदानमें घोड़े दौड़ रहे थे। सबसे आगे बढ़ा हुआ घोड़ा बीचहीमें ठोकर खाकर लड़खड़ाया और उसपर बैठा हुआ सवार नीचे गिर

पड़ा। 'सुकुन्द, सुकुन्द' कहकर किसीने पुकारा। बाकीके घोड़े दौड़ ही रहे थे। स्पर्धा जीतनेवाले घोड़ेका जॉकी सीधा सुलभाके पास आया। 'क्यों देवीजी, मेरे ही घोड़ेपर दौंव लगाया था न!'—उस जॉकीकी आवाज़ ठीक विजयकी तरह थी।

तीसरे दृश्यमें, तात्यासाहब मनोहरपर कोड़े बरसा रहे थे। उसका अपराध क्या था? अपराध यह था कि कहींका एक फूल लाकर उसने उसको भगवानपर चढ़ा दिया था। उसे मार न पड़े इसलिये मौसीजी बीचचित्राच करने आयीं। वे तात्यासाहबसे बोलीं,— 'कहींका भी फूल क्यों न हो! दीखनेको सुन्दर है, सुगंध भी अच्छी है—'

तात्यासाहब चिल्लाकर बोले,— 'मेरे भगवानको मेरे ही बागके फूल चढ़ाने होंगे।'

नींदके सपनोंकी अपेक्षा जागृत अवस्थाके दुःस्वप्न अधिक त्रासदायक होते हैं। मधुर जागृति-स्वप्न हिंडोलेकी भाँति झुलानेवाली जल-लहरियोंकी तरह होते हैं। परंतु ऐसे विचित्र आभास—नाक और मुँहमें पानी भरकर दम घोंट देनेवाली भयंकर लहरें ही हैं वे! समुद्रकी डरावनी लहरोंसे घबड़ाकर कोई किनारेकी ओर दौड़ पड़े उस प्रकार सुलभा इन दुःस्वप्नोंसे अपने सत्य जीवनकी ओर मुड़नेका प्रयत्न करने लगी। उत्तेजित मस्तिष्कको शांत करनेके लिये वह दबेपाँव दरवाज़ा खोलकर अटारीपर आयी। उसे वहाँ एकदम खुला माखम हुआ। यद्यपि वहाँसे उसे विशाल आकाशका दर्शन हुआ, फिर भी दो-तीन तारोंसे सुशोभित उसका नन्हा-सा मनोहर हिस्सा उसे दिखायी दिया। उन स्वर्गीय फूलोंकी ओर देखते हुए वायुलहरोंके साथ आयी हुई सुगंधसे उसका मन प्रसन्न हो गया। रातरानी फूली हुई थी उस तरफ़। उस सुगंधसे आनंदित होकर क़रीब क़रीब निर्जन हो रहे मार्गकी ओर उसने नज़र घुमायी। सिनेमासे घर लौट रहा एक युगल हँसता-खेलता हुआ चला जा रहा था।

• • •

सुबह द्वारकी घंटी बार बार बज रही थी। अपने अर्ध-जागृत मनसे यह कहकर कि 'दूधवाला होगा', सुलभा एक करवटसे दूसरी करवटपर हुई। परंतु काफ़ी धूप निकल आनेपर वह उठकर कमरेके बाहर आयी तो उसने देखा कि बरामदेमें 'टाइम्स' पढ़ते हुए विजयबाबू खड़े हैं! एक तरफ़ पांडुरंग भी किसी मराठी

अखबारके पन्ने उलट रहा है। अधूरी नींदसे अलसाई हुई अपनी आँखोंपर उसे विश्वास ही न होता था। उसकी उस चकगाई हुई हालतको देखकर विजय बोला, — ‘काश मैं गा सकता —’

सुलभाने भौंहेँ सिकोड़ीं। इससे विजयको और भी अधिक उत्तेजना मिली। मूक उत्तर ही मनुष्योंको अधिक अच्छा बोलनेवाले बना देते हैं।

‘पहले ज़मानेमें राजा और रानियोंको जगानेके लिये भाट रहा करते थे न? उस तरह आज मुझे यह डर लग रहा था कि तुम्हें जगानेके लिये मुझे कहीं चंबईके सारे गवैयोंको इकट्ठा न करने पड़े!’

‘आप तो कुछ भी कह देते हैं। जाइए।’ इस तरह सुलभा कहना चाहती थी। परंतु उसकी गरदनको एक मधुर हलचलने इन शब्दोंसे भी अधिक भाव व्यक्त किया।

सुलभा मुँह धोनेके लिये चली गयी। पृष्ठभागकी ओरसे उसकी आकृतिको देखनेका मोह विजय संवरण न कर सका। स्वयं अपने मनपर उसे आश्चर्य हुआ। कॉलेजके उसके कुछ दोस्त अभिनेत्रियोंके फोटोंकी ओर घंटों बैठे देखते रहते थे। उनके इस पागलपनपर वह हँसा करता। गणितकी बहियोंमें उनकी आड़ी-टेंढ़ी आकृतियों दिखाकर उनसे ‘ये क्या कम सुंदर हैं?’ प्रश्न पूछनेको भी वह नहीं चूकता था। वैरिस्टर होनेके बाद, शिरगाँव आनेपर बड़े लोगोंके क्लबमें स्त्रियोंके बारेमें वाहियाद बातें हमेशा हुआ करतीं। सच्चा वैमानिक खिलौनेका हवाई जहाज़ लेकर नाचनेवाले बालककी ओर तुच्छतासे देखे उस तरह वह इन बातोंका उपहास किया करता। परंतु जिस दिन उसे निश्चित रूपसे यह मालूम हो गया कि जिस ज़मींदारीकी वरासत प्राप्त करनेके लिये मैं कोशिश कर रहा हूँ, वह मुझे मिलनेवाली है, उस दिनसे उसके स्वभावमें परिवर्तन हो गया। उस रातको बिस्तरपर पड़े पड़े एक दिलचस्प कहानी पढ़ते हुए पुस्तक बंद कर उसने सुलभाकी मूर्तिको अपनी नज़रोंके सामने खड़ी करनेकी कोशिश की। पहले सफरमें उसे कितनी अच्छी नींद आ जाती थी। परंतु केशरके साथ पूना आते समय अवश्य वह अनुभव उसे न हुआ। इस समय भी —

‘जीजी आपको चायपर बुला रही है।’

विजयने मुड़कर देखा। पुष्पा सुलभाका सँदेसा कह रही थी। उसकी ओर

देखते ही विजयके मनमें आया—संध्यारंगकी तरह स्त्री-सौंदर्यमें भी कितनी विविध मोहकता होती है !

‘चाय लेंगे क्या दुबारा ?’—गोलमेज़पर रखे प्यालेमें चम्मचसे चीनी चलाती हुई सुलभाने पुछा।

‘फौज़दारी वकीलोंको केससे और तरुणोंको चायसे क्या इन्कार होता है ?’

‘पर नियमको अपवाद होते ही हैं न ?’

‘कम-से-कम चायके बारेमें नहीं !’

‘न होनेको क्या हुआ ? अमुक ही व्यक्ति हमें चाय दे ऐसी —’

पुष्पा दौड़ती हुई आकर बोली, — ‘जीजी ! तुमसे कोई मिलने आये हैं ?’

‘कौन ?’

‘कल तुम जिनके साथ घूमने गयी थी न ? वे ही !’

‘भीतर ले आ उन्हें। अब वे तेरे गुरुजी होनेवाले हैं।’

विजय चिड़ेचिड़ेपनसे ही दरवाज़ेकी ओर देख रहा था। मुकुन्द दिखाई देते ही उसके माथेपर बल आ गये। उन दोनोंका परिचय कर देनेके लिये सुलभाने कहा, — ‘मुकुन्द ! आप हैं शिरगोंवके दादासाहब करंदीकर — वैरिस्टर विजय !’

मुकुन्दने स्मितपूर्वक नमस्कार किया।

‘और विजयबाबू, ये हैं —’

‘— कराचीके महात्मा मुकुन्द कांबली !’

‘आपका इनसे परिचय है ?’

‘महापुरुषोंको सारी दुनिया पहचानती है !’—विजयके शब्दोंमें छिपी हुई खिल्लीका थोड़ासा अंग उसके स्वरमें प्रकट हुआ ही।

‘क्या, आप पूनासे आये हैं ?’—मुकुन्दने प्रश्न किया।

‘हाँ !’

‘तब कदमने ही आपको मेरी जानकारी दी होगी ! दुनिया-भरका बकवासी है वह !’

चाय सबने प्रायः चुपचाप ही पी। चाय समाप्त होते ही सुलभाने विजयसे कहा, — ‘जरा ठहरिये, अभी आयी दो मिनटमें।’ मुकुन्दको लेकर वह सीधी अपने कमरेकी ओर गयी।

भीतर जाते ही मुकुन्द बोला, — ‘मैं आज प्रतिज्ञा करके घरसे बाहर निकला हूँ।’

‘कैसी प्रतिज्ञा ?’

‘कहीं न कहीं काम प्राप्त करनेकी। सुत्रह दीदीने सजल नेत्रोंसे मुझसे जो प्रश्न पूछा — मौजसे उड़नेके लिये ऊँचा आकाश ठीक होता है, परंतु पक्षीको अपना घोंसला पेड़पर ही बनाना पड़ता है !’ — अंतिम वाक्योंको करीब करीब स्वगत ही कहा उसने ! यह ध्यानमें आते ही कि मेरी संदिग्ध बात शायद सुलभाकी समझमें न आयेगी, वह बोला, — ‘मेरे ही साथ पढ़नेवाले एक विद्यार्थीका हाल दीदी बता रही थी ! बेचारा दो-तीन बार मैट्रिकमें बैठा, पर पास न हुआ। आखिर किसीने उसे डाक-मुहकमें चिपका दिया। आज खुशीसे चार आदमी पल रहे हैं उसके घर। अपनी बहनको अच्छा वर प्राप्त हो, इसलिये अभी कुछ दिन पहले उसने काफ़ी रुपया खर्च किया। यह सब कहकर दीदीने मेरी ओर टकटकी लगाकर देखा — ‘भगवानने तेरे भागमें सुख लिखा ही नहीं है’, यह कहा।’

नीचेके होंठको ऊपरके दाँतोंसे क्षणार्ध दाबकर मुकुन्दने ऊपर देखा। तुरंत ही वह हँसकर बोला, — ‘दीदीकी बात भी ठीक है और मेरी भी ठीक है !’

‘तो मतलब यह कि गलती मेरी ही है !’

‘हाँ !’

‘कैसी ?’

‘मुझ जैसेसे मैत्री करनेकी। बाहर बैरिस्टरसाहब नाराज हो गये होंगे न ?’

उसके मज़ाकका कोई जवाब न देकर सुलभाने कहा, — ‘आजसे यहाँकी ट्यूशन शुरू कर दो। महीनेके पचास रुपये मिल जायेंगे। परंतु लड़कीको शीघ्र ही इतनी तैयार कर देना कि वह संस्कृतमें बातें करने लगे ! गीता-वीता भी उसे जान-बूझकर पढ़ाना।’

‘तो फिर दीदीको शिरगाँव भेजे देता हूँ।’

‘शिरगाँव ?’

‘वहाँका जलवायु अच्छा है न ! कहते हैं कुछ महीने पहले ही टेकड़ीके नीचे एक सैनेटोरिअम बना है वहाँ।’

‘पर दीदीके साथ रहेगा कौन वहाँ ?’

‘मेरी मौसीकी ननद है न !’

‘ऐसा ! कितने ही बार मैं शिरगाँव जाती हूँ ! परंतु मुझे इसका पता ही नहीं !’

मुकुन्दने उसकी ओर देखा, जैसे उसकी दृष्टि कह रही थी - हम दोनोंकी दुनिया कितनी भिन्न है ! इन दुनियाओंकी सीमापर आकर एक दूसरेकी ओर हम देख रहे हैं, इसलिये यह अंतर हमें महसूस नहीं होता। शुक्रकी चाँदनीका दर्शन भूगर्भके हीरेको क्या कभी होता है ?

मुकुन्दके चल देनेके बात सुलभा विजयके पास गप्पें हाँकनेके लिये आ बैठी; परंतु बहुत देरतक वह चुन्ना था। बीचहीमें एक बार सुलभाने उससे पूछा, - 'तात्या बहुत नाराज़ हो गये मुझपर ?'

'बड़ी अजीब बातें कीं उन्होंने !'

सुलभा खामोश रही।

'उन्होंने कहा, सुलभाका विवाह अब जल्द कर देना चाहिए !'

सुलभाको मन-ही-मन बड़ा क्रोध आया। परंतु चेहरेपर हँसी लाकर वह बोली, - 'ऐसे कन्यादानसे पुण्यके बदले पाप ही लगेगा !'

'वह किस तरह ?'

'अपने गलेकी बलाको दूसरेके गलेमें बाँध देनेका काम ही नहीं है क्या यह ?'

पांडुरंग जीनेसे चिल्लाता हुआ ही आया, - 'ताईसाहब, सुलभाताई —'

'क्या है रे ?'

आगे बढ़कर ऐसा अभिनय करता हुआ, जैसे कोई बड़ा महत्त्वपूर्ण समाचार दे रहा हो, वह बोला, - 'अभिनेत्रीजी आयी हैं आपसे मिलने !'

'अभिनेत्री ?' - शब्द सुलभाके मुँहसे बाहर पड़ ही रहे थे तभी केशर ही ऊपर आ गयी। बड़े कष्टसे अपनी हँसी रोककर सुलभा बोली, - 'आज कौन कौनसी फिल्मोंमें काम करना है, केशरताई ?'

'पहली सत्यनारायण और दूसरी जलसा !'

'सत्यनारायण ?'

'पिताजीका तार आया है। दोपहरको वे यहाँ पहुँच रहे हैं। कल मुनीमजीका तार पहुँचनेपर माँने सत्यनारायणकी पूजाकी मनौती मान ली। कल सत्यनारायणकी पूजा करके सब लोग वापस चले जायेंगे !'

केशरका हाथ पकड़कर उसे अपने कमरेकी ओर ले जाते हुए सुलभाने धीरेसे पूछा, - 'सत्यनारायणकी पूजामें पूजन करनेवाले पंडितजी ही नायक रहेंगे ! परंतु दूसरी फिल्ममें - उस फिल्मका हीरो —'

‘अभयबाबू आज आ रहे हैं।’

‘किस वक्त?’

‘आज दोपहरको। यहाँके उनके पतेपर मैंने उन्हें जलसेकी निमंत्रण-पत्रिका भी भेज दी है!’

फव्वारेसे जलकी फुहारें ताता थैया नाच रही हैं, और उनपर सूर्यकी किरणें पड़कर छोटे छोटे इन्द्र धनुष्योंका निर्माण हो जावे, उस तरह केशरकी भावरम्य मुद्रापर झलक रही मधुर आनंद-लहर सुलभाको प्रतीत हुई।

● ● ●

१०

अधूरी मनौती !

अँधेरा घना हो रहा है और उसी समय एकदम चन्द्रोदय हो जावे, उसी तरह केशरके अनपेक्षित आगमनका परिणाम हुआ। उससे बातें करनेकी धुनमें विजय और सुलभा एक दूसरेके साथ खुलकर बातें करने लगे। ऐसे तो तरुण मनुष्य अधिक बरसातें देखे हुए छोटे बालक ही होते हैं ! सत्यनारायणकी बातोंके सिलसिलेमें विजयने मज़ाकसे यह कह दिया कि लापता हुए लोगोंको यदि भगवान लौटा देता हो, तो सुलभाके भाईके लिये मैं भी एक सत्यनारायण कलूंगा। सुलभाका भाई है इसका केशरको पता ही न था। वह आश्चर्यसे देखने लगी। सुलभाके मनमें आया — ‘अभी इसे यह क्या मालूम, कि आज रातको इससे भी बड़ा आश्चर्य दिखायी देनेवाला है ?’

भोजन करते समय पांडुरंगकी ‘अभिनेत्री’ के बारेमें बहुत चर्चा हुई। परंतु रसोईकी तरह संभाषणमें भी पांडुरंग कच्चे गुरुका चेला न था ! सबको प्रिय हुई टमाटरकी चटनीको उदारतापूर्वक परोसते हुए वह बोला, — ‘सुबह ही उस देवीका फोटो देखा था मैंने एक अखबारमें ! आज कहीं जलसा भी तो हैं उनका !’ गनीमत थी कि काकाजी भोजनमें सम्मिलित न थे ! वरना पांडुरंग, विजय, सुलभा इत्यादिकी बातोंसे उन्हें यही भ्रम हो जाता कि अपने घरमें नाट्य-सम्मेलनका अधिवेशन हो रहा है !

तीसरे पहर विजय कहीं घूमने जानेका विचार करने लगा। सुलभा भी राज़ी हो गयी। उनका इरादा था कि शामको घूमनेके बाद सीधे सत्यनारायणकी पूजामें सम्मिलित हो जायेंगे। परंतु उनका यह इरादा शायद सत्यनारायणको पसंद न पड़ा होगा! सुलभा बाहर जानेके लिये तैयार हो रही थी, तभी केशरके घरकी कार आ गयी। झाड़वर विजयके नाम एक पत्र लाया था। मनसुखलालने किसी महत्वपूर्ण कार्यके लिये उसे ज़रा जल्दी ही बुलाया था। सुलभासे भी उसने मुँहसे सँदेसा कहा, — ‘बाईसाहबाने आपको भी अभी बुलाया है।’

‘बाईसाहबाने?’

‘जी, केशरबाईकी माँने!’

बंगलेपर पहुँचतेतक सुलभा मन ही-मन यह कल्पना कर रही थी, कि केशरके माँ-बाप कैसे होंगे? कितनी ही भिन्न भिन्न आकृतियाँ उसकी आँखोंके सामने नाच गयीं! सुलभाको लगा कि पाँच मिनटके बाद जो बात दीखनेवाली है उसके विषयमें भी तर्क करते रहना मनका धर्म ही है और वह हँसी।

विजयने रूखे स्वरमें पूछा, — ‘हँसनेको क्या हो गया?’

‘मनुष्य हँसनेवाला प्राणी है!’

‘परंतु हँसनेलायक मौक़े उसके जीवनमें कम आते हैं!’

सुलभा पहले विजयके इस तानेका मतलब ही न समझी। इसने उसकी ओर ध्यानसे देखा। एकदम उसके ध्यानमें आ गया। वह पहलेसे अधिक पास खिसक आया था। उसके शरीरका स्पर्श न हो इसलिये मैं अनजाने अंग सिकोड़कर बैठी हूँ। मनकी तरह शरीरके संस्कार भी, किसी स्वयंसिद्ध यंत्रकी तरह, अपने काम करते रहते हैं। चोरी चोरीसे स्पर्शसुख प्राप्त करनेकी इच्छा अतृप्त रह जानेके कारण विजय चिढ़ गया होगा और यही चिढ़ उस तानेकी जड़ होगी! वर्षाके उदास बादलोंको देखकर, हँस रहे सूर्यप्रकाशकी और भी अधिक याद आ जावे, उस तरह मुकुन्दकी मूर्ति उसके सामने खड़ी हो गयी। कल शामको अपनी महत्वाकांक्षाकी मृत्युका हाल सुनाते हुए, आज सुबह दीदीके द्वारा की गयी तुलनासे मनको हो रहीं वेदनाओंका वर्णन करते हुए, किसी भी समय उसने सहानुभूतिके स्पर्शकी भी इच्छा न की। और विजय—

केशरकी माँको देखते ही सुलभाको याद आयी तो बीमार मनुष्यकी।

लड़कीने नाकनक्शा अपनी माँसे ही लिया था। लेकिन माँके चेहरेपर समयने अपनी धुनमें जो आड़ी-टेढ़ी रेखाएँ खींच दी थीं, वे स्पष्ट दीख रही थीं। दूरसे देखनेवालेको भी दोनोंकी आँखोंकी विलक्षण समानता दिखायी दे सकती थी। परंतु माँकी आँखोंका पानी सायंकालकी छायासे आच्छादित तलैया-सा लगता। इसके विपरीत, केशरकी आँखोंका पानी सूर्यकी किरणोंसे चमचम चमकनेवाले जलाशयकी याद दिला देता।

सुलभाका हाथ पकड़कर उसने अपने पास ही उसे कोनपर बैठा लिया। उसके स्पर्शमें वात्सल्य तो था ही; परंतु सुलभा यह न समझ पायी कि उसमें करुणा दर्शानेवाली कँपकँपी क्यों होनी चाहिए।

‘आज दोपहरको केशरने तुम्हारा सब हाल कहा—तुम्हारी पूरी जानकारी दी। कितना अच्छा लगा मुझे! तुम जैसी सहेली उसे मिली—’

‘और क्या, मुझे उस जैसी सहेली नहीं मिली?’

‘मेरी बेटी गुणवती है। पर कुछ भी हो, वह तुम्हारी बराबरी कैसे कर सकती है?’

‘सच यही है कि ‘घरका जोगी जोगड़ा आनगाँवका सिद्ध’!’

सुलभाकी हँसीमें केशरकी माँने भी साथ दिया; परंतु तुरंत ही उसकी मुद्रा गंभीर हो गयी। सुलभाको वह क्षणिक क्षीण हँसी जल गये हुए बौरकी तरह लगी।

‘केशरके बारेमें मुझे बड़ा डर लगता! कलहीकी बात देखो न? वह मुआ पठान—मेरे हृदयमें हमेशा धुकधुकी बनी रहती है!’

‘आप जैसोंको ऐसी बातोंका—’

‘मुझ जैसी? मनुष्य दीखते हैं उतने सुखी होते हैं क्या कभी? सुलभाताई, मुझे तुमसे दो घंटेतक शान्तिपूर्वक बातें करनी हैं! बातचीत क्या करनी है? यही समझ लो कि तुम्हारी गोदमें सिर रखकर रोना है मुझे!’

उसकी आँसुओंसे डबडबाई हुई आँखोंको देखकर, सुलभा गदगद हो गयी। सच यही है कि जैसे जैसे मनुष्य बड़ा होता जाता है, वैसे वैसे उसके रोनेके हकके स्थान कम होते जाते हैं! बूढ़े मनुष्य कुढ़ते रहते हैं, तो उसका कारण यही होगा क्या?

मनमें यह विचार उठ रहे थे तभी सुलभाने उसके दोनों हाथ प्रेमसे अपने

हाथमें लिये और कहा, — ‘ऐसी कोई बात न कहो, माँ ! क्या, मैं तुम्हारे लिये केशर जैसी ही नहीं हूँ ?’

बर्फ सिरपर रखनेसे ज्वरका असर महसूस नहीं होता। सुलभाकी ‘माँ’ की भावुक पुकारसे केशरकी माँके मनका उबाल आप ही आप टंडा होने लगा। दोनों कुछ समयतक खामोश बैठी हुई थीं। परंतु उस स्तब्धतामें भावुक शान्ति थी।

अन्तमें सुलभाने कहा, — ‘माँ ! आप सब बातें दिल खोलकर कह डालिये। मुझसे जो बन पड़ेगा वह मैं —’

‘कैसे कहूँ ? मुझे बड़ा डर लगता है !’

‘डर ? मेरा डर लगता है ?’

‘तुम्हारा डर नहीं, बेटा ! परंतु पाप बड़ा भीरु होता है, बेटी ! भगवान करे और यह अनुभव तुम्हें कभी न हो !’

केशर यह सँदेसा लेकर भीतर आयी कि सुलभाको विजयबाबू बुला रहा है। बैठकखानेमें क्रमदम रखते ही सुलभाने देखा कि विजयके दाहिनी ओर करीब पचासकी उम्रका, स्थूल शरीर और घैठे हुए चेहरेवाला, परंतु कठोर नज़रका एक गुजराती बैठा हुआ है। वह सुलभासे ‘आइए, आइए’ कह रहा था तभी विजयकी बायीं ओर बैठा हुआ युवक एकदम उठा और दोनोंको अपने पासकी कुर्सियोंपर बैठनेका आग्रह करने लगा।

‘रतिलाल, क्या आप इसी तरह कारखाना चलायेंगे ?’ — मनसुखलाल हाः हाः करते हुए बोले।

स्त्री-दाक्षिण्यकी प्रदर्शनीको खोलनेसे पहले ही बंद कर देना पड़ा इसलिये निरुत्साहित होकर रतिलाल जाकर अपनी कुर्सीपर बैठ गया। केशरने उसके पासकी कुर्सी पीछे खींच ली। सुलभाने केशरकी ओर देखा। उसकी मुद्रापर तिरस्कारकी छटा स्पष्ट रूपसे झलक रही थी।

‘पाँच मिनट माफ़ कीजिये, हूँ’ — इस तरह सुलभासे कहकर मनसुखलाल विजयसे बातें करने लगे। रतिलालको ऊँघते हुए देखकर एक बार उन्होंने कह भी दिया कि, ‘रतिलाल वास्तवमें परिपूर्णरूपसे स्त्रीपिंग पार्थनर है !’ यह सुनते ही रतिलालने आँखें खोल दीं। परंतु वे तुरंत ही केशरकी ओर मुड़ गयीं। शायद उसे यह लगता होगा कि केशरके सामने होते हुए कारखानेकी बातें करना, धीकी मिठाई छोड़कर चौपाटीकी भेड़ खानेकी तरह ही है।

मनसुखलालकी बातोंसे सुलभाको इतना बोध हुआ, कि उनके कारखानेके लिये आवश्यक ज़मीनोंको शिरगाँवके किसान लोग यों ही देनेके लिये तैयार नहीं हैं ! पहले बहुतसे किसान अपनी अपनी ज़मीनें देनेके लिये राज़ी हो गये थे: पूनाके कदम नामक एक शरारती आन्दोलकने उनके कान फूँककर घुटाला मचाना शुरू कर दिया । सेठजीने दो-चार आदमियोंको फोड़कर कदमकी सारी जानकारी प्राप्त कर ली; यह देखनेके लिये कि उसका पिंड कैसे ढूँढे, रियासतके पुलिस अफसरको लिख कर उन्होंने उसके पीछे पुलिसकी बला भी लगा दी; परंतु अभीतक उसपर मुकद्दमा चलाये जाने लायक कोई अपराध साबित नहीं हो रहा था । इसलिये वह पुलिसकी चंगुलमें अभीतक बचा हुआ था । कल ही मनसुखलालको उसका एक गुप्त पत्र देखनेको मिला था । उससे यह पता चला था कि सत्याग्रह करनेवाला एक अच्छा नेता लेकर, शिरगाँव जानेका उसने निश्चय किया है !

‘ आने दीजिये शिरगाँवमें ! कदमका कदम तोड़कर हम उसे ‘ आस्ते कदम ’ बना देंगे । ’ — विजय हँसते हँसते बोला ।

‘ वह तो गिरफ्तार हो जायेगा, लेकिन सत्याग्रहकी भयानक महामारी जो शुरू हो जायेगी ? ’

‘ दीवानजी क्या कहते हैं ? ’ — विजयने एकदम प्रश्न किया ।

‘ किसीको अगुआ बनाकर उनके पास भेजना होगा । हज़रत हमपर तो ज़रा नाराज़ ही हैं ! ’

‘ इसके लिये तात्यासाहब बड़े कामके होंगे ! ’ — विजयने सुझाया ।

‘ मैं भी वही कह रहा हूँ ! ’ — सुलभाकी ओर मुड़कर देखते हुए मनसुखलाल बोले, ‘ आपको हमारे लिये अपने पिताजीसे कहना चाहिए ! शिरगाँवमें यदि कारखाना शुरू हो गया, तो सैकड़ों मज़दूरोंके पेट पलेंगे । परंतु यह मामूली बात समझने लायक अकल भी कदम और उसके साथियोंमें कहाँ है ? ’ कहकर उन्होंने एक ज़ोरका कहकहा लगाया । इस तरहका ज़ोरसे हँसना उनके लिये शायद बायें हाथका खेल रहा हो ! सुलभा यही न समझ पायी कि वे क्यों हँस रहे थे ।

सत्यनारायणको नमस्कार करनेका भीतरसे संदेसा आया तो सबको उठना ही पड़ा । पूजाके निमित्तसे प्रकट हुआ सेठजीका वैभव आँखोंको चौंधिया देनेवाला था । केवल सौंदर्यदृष्टिसे देखनेवालेके लिये ही, वह दृश्य अत्यंत आनंददायक था । चाँदीके सुभड़ उपकरणोंमें जितनी विचित्रता और मोहकता थी, उतनी ही

सत्यनारायणके लिये बनाये गये केलोंके छोटे-से मण्डपमें भी थी। भक्तिभावसे नमस्कार करनेवाली केशरकी माँकी आँखोंमें झलक रहा श्रद्धाका भाव, सत्यनारायणके सामने जल रहे दीपके प्रकाश जैसा ही सुखदायक था। परंतु इस प्रकारके दृष्टिसुखका आनंद लेनेकी स्थितिमें सुलभा थी ही नहीं। केशरकी माँके ये उद्गार कि 'पाप भीरु होता है', अभीतक उसके कानोंमें घूम रहे थे। कारखानेके बारेमें उसने जो चर्चा सुनी थी उसके कारण भी उसके मस्तिष्कमें बहुत कोलाहल मच गया था। आगकी जलन होने हुए, अग्निज्वालाओंकी शोभा देखनेकी ओर किसका ध्यान जायेगा ?

पूजनके ध्यानसे थोड़ी दूर खड़ी होकर वह सारी हलचलें देख रही थी। विजयने बड़ी शानसे जेबसे रुपया निकाला, ज़मीनपर अच्छी तरहसे हाथ-पांव पसारकर एक लंबी दंडवत की और हाथमें रखे हुए रुपयेको भगवानके सामने रखी हुई आरतीकी थालीमें डाला। उसकी खन्नसे जो कर्णकटु आवाज हुई, वह सुलभाको बड़ी असह्य लगी। जैसे दुनियाके सारे स्वाँगों और ढोंगोंकी उस आवाज़के रूपमें ही जवान खुल गयी थी !

यह देखकर कि सुलभा दूर खड़ी है, विजय उसके नज़दीक गया और बोला, —
'तुमने कर दिया नमस्कार ?'

'यहाँसे किया, उतना भगवानको काफ़ी हो जायेगा !'

'क्या माँगा भगवानसे ?'

'उसके पास होगा, तब तो देगा मुझे ?'

'ऐसी कौनसी चीज़ चाहती हो तुम जो भगवानके पास नहीं हैं ?'

'सत्य !'

• • •

विजय, पुष्पा और पांडुरंगके साथ जब सुलभा थिएटरमें आयी, तब वह बिलकुल भर गया था। यह तो सच है कि विद्यालयकी मददके लिये जलसा किया गया था, इसलिये संचालकोंने टिकटें बेचनेकी पराकाष्ठा कर दी थी। परंतु साथ ही उन्होंने इस जलसेका विश्वापन भी ऐसा किया था जिससे केशरके गानेके बारेमें लोगोंमें उत्सुकता उत्पन्न हो जाये ! कुछ रसिक यही देखने आये थे कि देखें, एक लख-पत्तिकी लड़की किस तरह गाती है, कुछ लोगोंने विश्वापनमें केशरका फोटो देखकर ही जलसेका सबसे बड़ा टिकट खरीदा था। लोगोंसे पैसे लूटनेकी, संचालकोंकी

चालको विफल कर देनेके सदुद्देशसे आये हुए श्रोता, इस भीड़में बिलकुल ही न थे, यह बात न थी। बीच-बीचमें, जेबें टटोलकर, वे इतमीनान कर लेते होंगे कि उनकी गोलाबालूद यथास्थान सुरक्षित है या नहीं !

प्रकाश, सुगंध, संगीत - इनमेंसे प्रत्येकमें उन्मादकता होती है। रातके अँधेरेमें सशंक होनेवाला मन, सूर्यप्रकाशके हिंडोलेपर झोका लेते हुए गाने लगता है। रुग्णशैयापर पड़े हुए मनुष्यको, आशाके फूलोंका सुवास खिला देता है। संगीतका अधिकार तो रणभूमिसे लेकर रंगमहलतक सर्वत्र चलता है।

इसलिये नाटक अथवा सिनेमा देखते समय, सुलभाकी चित्तवृत्ति उत्कंठित हो जाया करती। आज तो वह उत्कंठा बिलकुल अयोग्य हो गयी थी। उसने कुर्सीपर बैठे हुए सब तरफ चकरमकर देखा। वह अपने आप ही हँसी। इस विशाल जनसमुदायमें यदि मनोहर कही हो भी, तो वह मुझे कैसे दीख सकता है ? चट उसके मनमें एक कल्पना आयी। शायद वह भीतर ही होगा। विजय और पुष्पाको बाहर ही बैठाकर वह कँपित हृदयसे स्टेजके भीतर गयी। केशर तंबूरेके तारोंपर अनमनस्कतासे अँगुली फेर रही थी। उसकी सुद्राकी ओर देखते हुए सुलभाने कहा, - 'हज़रत शाहद आज डर गये ?'

कुछ भी न बोलकर केशरने एक चिड़ी निकालकर उसके हाथमें थमा दी।

‘जलसेके वाद मिलूँगा।’

‘तुम्हारा ध्यान गानेसे दूसरी ओर न जाये इसलिये शायद यह युक्ति की है ?’ तीन ही शब्द लिखे थे। अक्षर मनोहरके ही दीख रहे थे। सुलभा आनंदसे हँसी।

केशर भी हँसी। परंतु वह हँसी सूखे हुए फूलकी तरह थी !

परंतु कार्यक्रम आरंभ होते ही यह सूखा हुआ फूल एकदम खिलकर सुगंध बरसाने लगा। हवाई जहाज़के ऊँचे चले जानेपर सूखा भूभाग सुन्दर दीखने लगता है, उसी प्रकार उसकी मधुर स्वर-लहरियोंपर विहार करनेवाले श्रोताओंके मनकी व्यावहारिक चिंताओं और निराशाओंके कंकड़ और काँटे कब गायब हो गये, इसका उन्हें भी कोई पता न चला। केशरके संगीतमें अपूर्व ऐसी कोई बात न थी, परंतु वह इतनी मधुरतासे और विविध स्वरोंमें गीतोंके भावोंको प्रकट कर रही थी, कि श्रोताओंको यही लगा, जैसे वे एक बिलकुल नयी फिल्मका संगीत सुन रहे हैं।

केशरके संगीतकी यह मोहिनी सुलभाको इंटरवलके समय बड़ी तीव्रतासे महसूस हुई। आकाशमें घूमनेवाले पक्षीके पंख कोई काट डाले, उस तरह संगीत रुकते ही उसके मनकी स्थिति हो गयी। फिर उसके ध्यानमें आया, कि जब मैं केशरसे मिलने भीतर गयी थी, तब पुष्पा बीचकी कुर्सीपर आकर विजयसे बातें कर रही होगी।

पैर सीधे करनेके लिये तीनों बाहर आये। पांडुरंग अपने स्थानसे उठकर पहले ही बाहर आ गया था। जब वह सुलभाके पास आया तो सुलभाने उससे पूछा, — 'क्यों पांडुरंग, कैसा रहा गाना ?'

'मेरी बात ही छोड़ दीजिये, ताईसाहब। परंतु मेरे नज़दीक बैठा हुआ एक पठान भी इतना तल्लीन हो गया, कि उसने मुझसे केशरदेवीकी सारी जानकारी पूछी और मैंने भी उसे एक एक बात बता दी, ताईसाहब ! इस पठानकी और अपने विठू ड्राइवरकी अच्छी पहचान है। उसने मुझसे कहा कि अपने मनोहर-बाबू यहीं बंगईमें ही रहते हैं ! मैंने शर्त बंदी —'

इंटरवलके बाद गानेपर काफ़ी रंग चढ़ा था। परंतु सुलभाका मन उसमें पहले जैसा न लगता था। विजय और पुष्पाकी अँगुलियोंकी चोरी चोरीसे हुई मुलाक़ात उसने देखी थी। परंतु सिर्फ़ यही एक उसकी बेचैनीका कारण न था ! सुकुन्द जलसेमें क्यों नहीं आया ? मनोहरकी किसी पठानसे इतनी जानी दुश्मनीका कारण क्या है ? इस तरह एक-दो नहीं, बल्कि कितने ही प्रश्न उसके मनमें कुहराम मचा रहे थे।

जलसा समाप्त हुआ। भीड़का प्रवाह बह गया। केशरकी प्रतीक्षा करते हुए सब लोग द्वारके बाहर खड़े थे। केशर शिथिल-सी एक एक क़दम रखती हुई आयी। सबको लगा कि गानेके परिश्रमसे थक गयी है। उसने उत्सुकतासे चारों ओर देखा। यह देखकर कि अभय कहीं भी नहीं है, उसका चेहरा म्लान हो गया।

इसी समय व्यवस्थापकोंमेंसे कोई एक महाशय आये और उन्होंने एक चिट्ठी केशरके हाथमें दी। उसने वह खोलकर पढ़ी ही थी कि 'ओ माँ !' कहकर, वह घबराकर वहीं एकदम नीचे बैठ गयी। दूसरोंको लगा कि अतिश्रमसे उसे ग्लानि आ गयी होगी। परंतु केशरके हाथसे चिट्ठी लेकर सुलभाने उसे पढ़ा ही था कि वह भी स्तंभित हो गयी। चिट्ठीमें इतना ही मज़मून था —

‘तुम्हारा मीठा गाना पूरा सुननेका भाग्य भी मुझे न मिला। वह पठान इंटरवलमें मुझे मिला। इस दुनियामें अब एकसाथ हम दोनोंका रहना संभव नहीं है। या तो उसका खात्मा होना चाहिए, या मेरा ! यदि ज़िंदा रहा, तो कल शामको तुमसे मिलूँगा।

अभय ’



कँटीली राह

सुलभा केशरको लेकर एक तरफ़ गयी, तब विजयको आश्चर्य हुआ कि उन दोनोंके बीच ऐसा कौनसा रहस्य है। और, जब सिर्फ़ दो मिनटके भीतर ही केशर प्रसन्न मुखसे वापस आ गयी, तब तो उसके आश्चर्यकी सीमा ही न रही। घर वापस लौटते समय उसने जानबूझकर ही कहा, — ‘लगता है, मेडिकल कॉलेजमें जादूके खेल भी सिखाये जाते हैं!’

सुलभा विचारमग्न थी। उसे लगा, विजय पुष्पासे बातें कर रहा है। पर वह क्षण-भरके लिये ही! तुरंत ही हँसते हुए उसने उत्तर दिया, — ‘हम लोगोंको रोगियोंका मन हमेशा प्रसन्न रखना पड़ता है! इसलिये नज़रबंदीकी थोड़ी विद्या —’

‘सिर्फ़ नज़रबंदीकी ही नहीं। आँखोंसे आनेवाला पानी भी बंद! पुष्पाजी, तुम भी पढ़ लो यह विद्या अपनी जीजीसे। पतिदेवके चेहरेपर कुछ बादल छायेसे दिखे, तो ज़रा छू मन्तर कर देना कि बादल साफ़!’

पुष्पा दिल खोलकर हँसी। पांडुरंगने अश्व-हास्य करके विजयके विनोदका स्वागत किया। सुलभा ज़रूर बिलकुल ख़ामोश थी। घर आनेपर पुष्पा कितनी ही देर विजयसे बातें कर रही थी। केशरकी जॉर्जेटकी साड़ी, उसकी केश-रचना, जब वह गा रही थी, तब एक बुढ़ऊ उसकी ओर दुर्वीनसे किस तरह लगातार ह. चं. ७

देख रहे थे—इसी प्रकारकी बातें थीं वे ! परंतु कितने मनोरंजक ढंगसे कह रही थी वह उन्हें ! अंतमें वह बोली,—‘अब जब फिर केशरजीसे मुलाकात होगी, तो मैं उनसे पूछनेवाली हूँ !’

‘क्या ?’

‘सुंदर दीखनेकी यह विद्या उन्होंने कहाँ सीखी ?’

‘यह विद्या पढ़कर नहीं आती । वह खानदानी होती है !’

हाथमें पुस्तक लिये उसकी ओर शून्य दृष्टिसे देखती पड़ी हुई सुलभा ने चौंककर ऊपर देखा । जैसे शायद वह यह कहना चाहती थी कि ‘मैं अपनी सहेलीके विषयमें इस तरह कुछ अटसंठ नहीं बकने दूँगी तुम्हें !’ गवाहके मनके भीतरकी खलबलीको पहचान लेनेमें अभ्यस्त हुआ विजय सुलभाके दिलकी बातको जान गया । परंतु यह दिखाता हुआ जैसे पुष्पासे ही बातें कर रहा है, वह बोला,—‘केशरकी माँ कौन गुजरातन है ?’

‘मतलब ?’

‘कहते हैं कि हमारे शिरगाँवके एक कुरमीकी लड़की है वह ! मनसुखलाल ने उसे रख लिया । आगे चलकर व्यापारमें सेठजीको लाखों रुपयोंका फायदा हुआ । सेठजीको लगा कि लड़की बड़ी शुभलच्छनकी है और यह सब उसीके कारण हुआ है । इसलिये फिर उन्होंने उसे हमेशाके लिये अपनी रखैल बनाकर रख लिया । कुछ समयके पहले शिरगाँवके कारखानेका काम खटाईमें पड़ गया है न ? इसलिये सेठजी उसको साथ लेकर तुरंत शिरगाँव रहनेके लिये चले गये । सुनते हैं उनका यह ख्याल है कि उसके पैरोंके शुभलच्छनके कारण वहाँकी ज़मीनें उन्हें शीघ्र ही मिल जायेंगी ! कल सेठजी गांधीजीसे यह कहनेको भी न चूकेंगे कि स्वराज्य प्राप्तिके लिये इस औरतको साथ ले चलिये !’

सुलभाको आभास हुआ कि विजयके हँसनेमें एक प्रकारकी क्रूरता भरी है । परंतु बेहोशीकी दवा देनेपर रोगी कुछ संख्या गिनकर जिस तरह बेहोश होता है, उस प्रकार यह कल्पना, कि ‘केशर एक रखैलकी लड़की है’, पाँच-दस बार उसके मनमें घुलते घुलते ही, वह सुन्न हो गयी । केशर एक गुजरातीकी रखैलकी लड़की है और मनोहर एक दक्षिणी व्यक्तिका, हत्या करनेके अपराधसे, भाग गया हुआ लड़का है ! इनके प्रेमके सफल होनेकी कभी संभावना भी है क्या ? यह तो सच है ही कि प्रेमका मार्ग ऊँचा नीचा होता है; परंतु मनोहर और केशरके मार्गमें

आकाशको छूनेवाले पहाड़ और पातालतक पहुँचनेवाली उपत्यकाएँ फैली हुई हैं। उन्हें पार करनेकी ताकत—परंतु, प्रेम ही संसारकी सबसे बड़ी शक्ति नहीं है क्या?

इस अंतिम विचारसे सुलभा अपने आप ही हँसी। विजयका ख्याल था कि मेरी बातोंसे चिढ़कर सुलभा कोई प्रश्न पूछेगी, फिर मैं उससे कहूँगा कि सत्यनारायणके बाद रतिलालने केशरका सारा हाल मुझसे किस तरह कह दिया; यही नहीं बल्कि मैं यह भी कह दूँगा कि मनमुखलालजीका विचार है कि केशरको रतिलालके साथ रहना चाहिए। इस तरहकी और भी कुछ बातें कहकर, मैं उसका मुँह बंद कर दूँगा। परंतु जखमपर नमक छिड़कनेका यह संतोष सुलभाने उसे प्राप्त न होने दिया।

वृत्ती बुझाकर सुलभा जब बिस्तरपर लेटी, तो रातकी भयानकता उसे कलसे भी अधिक महसूस होने लगी। अभय मेरा लापता हुआ भाई मनोहर है, उसकी चिंता तुम्हारा इतनी मुझे भी है, मैं ऐसा प्रबंध किये देती हूँ कि कल तुम्हारी और उसकी मुलाकात हो जायेगी, इत्यादि आश्वासनोंसे पिछले दिन उसने केशरको संतोष दिया था। परंतु रोगीको धीरज बंधानेवाले डॉक्टरके मनमें भी धीरज होता ही है, यह बात नहीं है। केशरने सुलभाको अभयके ताड़देववाले स्टूडिओका पता बता दिया था; परंतु आधी रात गुज़र जानेके बाद उसका वहाँ अकेली जाना संभव भी कैसे था? और अगर चली भी गयी, तो मनोहर थोड़े ही वहाँ मिलनेवाला था! मुकुन्द। मुकुन्दका स्मरण होकर उसे लगा—मुकुन्द यदि आज जलसेमें आया होता, तो कितना अच्छा होता। परंतु मनुष्यकी इच्छासे दैव हमेशा ही खोखोका खेल खेला करता है। बीचहीमें वह बिस्तरसे उठी। उसके मनमें यह विचार आ गया था कि विजयको जगाऊँ, उससे सारा हाल कह दूँ और मनोहरको खोजनेके लिये उसे साथ लेकर जाऊँ। परंतु वह दरवाज़ेके पास ही ठिठक गयी। यदि मनोहरने सचमुच ही खून किया हो, तो इस हालतमें विजयका उसे देखना क्या उचित होगा? विजय तात्यासाहबका स्नेही है; परंतु उसके स्वभावमें बीच-बीचमें एक प्रकारकी ईर्ष्या दिखायी देती है। कैसे कह सकते हैं कि कल वह मनोहरके रहस्यसे लाभ न उठायेगा?

वह फिरसे बिस्तरपर जाकर चुपचाप बैठ गयी; लेकिन धूपसे पानीकी भाप बनती हुई दिखायी भले ही न देती हो, पर इसलिये उसका बनना

थोड़े ही रुक जाता है ? एक मूर्तिकी तरह वह निश्चल दीख रही थी । परंतु उसके मनमें ज्वालामुखी उबल रहा था । रातपर उसे बड़ा क्रोध आया । कल सुबह मैं मनोहरको खोजकर ही रहूँगी । परंतु उस जैसा सताया हुआ और चिढ़ा हुआ मनुष्य, सुबहतक क्या खामोश बैठ सकेगा ? अत्याचार और खून दिन दहाड़े थोड़े ही होते हैं ? अस्पतालकी एक बीमार औरतने, उसे बहन मानकर, उसपर गुजरा हुआ शिशु हत्याका प्रसंग, सिसकियोंके बीच उससे कहा था । यदि अँधेरी रात न होती तो इन्सानियतका खून करनेकी हिम्मत भी शायद वह न करती ! यह कहकर कि अँधेरेमें तारे अधिक चमकते हैं, कवि मनुष्यको आशावाद पढ़ाता है; परंतु दुनियाके पाप क्या इन तारोंके सामने ही नहीं होते ? कठोर निसर्ग, टिम-टिमानेवाले तारोंके रूपसे आँखें मिचकाकर सारे पापोंकी ओर देग्वता हुआ अपने आप कोई रंगीत गाना भी गाता होगा । कौनसा गीत होगा वह ?

मृत्युशैयापर पड़े रोगीके पास खड़े रहते हुए भी जो बेचैनी उसे कभी महसूस न हुई थी, उसने आज उसके मनको ग्रस डाला । ताड़देवकी तरफ़ हुए एक खूनका समाचार इस समय समाचारपत्रोंके दसरांमें, टेलीफ़ोन खनखनाती हुई आवाज़में बार बार कह रहा होगा । एक पटान और एक —

सिरपर बद्धतसा टंडा जल डालकर, वह बिस्तरपर लेटी । यह कल्पना करके कि मौसीजी और मुकुन्दको छोड़कर मेरा दुनियामें कोई नहीं है, वह दोनोंकी अनेक मधुर स्मृतियोंकी, मन-ही-मन याद करने लगी । टें टें करनेवाले नन्हे बालकको माँ वात्सल्यसे थपथपाकर सुला देवे, उस तरह इन स्मृतिमालिकाओंने भी उसके मनपर नशा ला दिया ।

सुबह जल्दीसे उठकर, जितने अखबार मिले, वे सब उसने खरीदे । उनके पन्ने उलटाते हुए उसका कलेजा धड़क रहा था । बंवाईमें ऐसा एक दिन भी नहीं जाता कि एक-दो खून न हो । परंतु जब सुलभाको यह विश्वास हो गया कि आजके किसी भी खूनसे मनोहरका ज़रा भी संबंध नहीं है, तब कहीं उसकी जानमें जान आयी ।

चायके वक्त पुष्पा कलके केशरके गानेकी एक कड़ी दोहरा-दोहराकर रही थी ।

विजय जलसेका वर्णन पढ़ रहा था जो कि जलसा होनेसे पहले ही छापनेके लिये भेज दिया गया था । बीचहीमें वह सुलभासे बोला, — ‘दोपहरकी गाड़ीसे चलेंगे हम लोग ! तात्यासाहब हमारी वाट जोह रहे होंगे !’

‘परंतु मुझे अभी काम है यहाँ !’

‘क्या, वही परसोंका केस ?’

गवाहकी मददके लिये वकील किस तरह दौड़ आता है, इसका सुलभाको अनुभव हुआ। विजय यदि उससे यह पूछता कि क्या काम है, तो कम-से-कम थोड़ी देरके लिये तो उसका मन असमंजसमें पड़े बिना न रहता !

सुलभाको खामोश देखकर विजय बोला, — ‘ध्येय यानी पागलपन तो नहीं है न ?’

‘कौन जाने ? होगा भी। कवियोंको भी लोग पागल कहते ही हैं कि नहीं ?’

पुष्पाकी ओर देखता हुआ विजय बोला, — ‘हमारी पुष्पाजी इस नियमका अपवाद हैं।’

पुष्पाने शरमाते-शरमाते विजयकी प्रशंसाको स्वीकार किया।

‘विजयबाबू, ध्येय पागल हो या न हो; लेकिन ज़रूरतके वक़्त उसका अंधा हो जाना, क्या उसका एक गुण ही नहीं है ?’

‘वाह ! तब तो वह केवल गड़बड़में गिरानेके लिये ही काम आ सकेगा !’

‘परंतु मनुष्य चौकन्ना होकर लगातार सब तरफ़ देखता रहे तो छोटे-बड़े काँटे भी उसे दीखने लगते हैं, और फिर अपना ख्याल छोड़नेका विचार भी, उसके मनमें नहीं आता !’

‘समझ गया मैं। मतलब यह कि ध्येयवादी मनुष्य सच्चा अंधा नहीं होता, बल्कि वह अंधेका स्वाँग लिये रहता है। भई, यह बात तो अभीतक मेरे ध्यानमें नहीं आयी थी, कि ध्येयका ढांगसे इतना निकट संबंध होगा ! हाँ, ऐसा कहते हैं कि मज़दूरोंको हड़ताल करनेके लिये बढ़ावा देनेवाले बहुतसे नेता मिल-मालिकोंके वेतनभोगी नौकर होते हैं। तुम्हारा यह कराचीका महात्मा भी पाँच-दस हज़ार ज़रूर पैदा कर लाया होगा वहाँसे !’

विजयोंमें दुरकांची नामकी एक जाति होती है। उसका देश विच्छूकी तरह विलक्षण होता है। विजयका अंतिम वाक्य सुलभाको उसी तरह लगा। उसकी ज़बानपर आ गया था कि कह दूँ — ‘मनुष्य अपनी ही तरह दुनियाको समझता है।’ लेकिन निग्रहसे उसने रोक लिया।

विजयको अपनी गलती तुरंत ध्यानमें आ गयी। वह सौम्य स्वरमें बोला, ‘— माफ़ करना, सुलभा। जब बहस छिड़ जाती है, तब प्रतिपक्षीपर चढ़ाई किये बिना मुझसे रहा ही नहीं जाता। यही कहो न कि मैं अंतर्ब्राह्म वकील हूँ !’

‘मुझे तुम्हारी भावी पत्नीपर दया आती है! बेचारीको कटघरेमें खड़े हुए गुनहगारकी तरह ज़िंदगी काटनी होगी!’

विजयका चेहरा एकदम आरक्त हो गया; परंतु स्वरमें पहले जैसी ही सौम्यता रखता हुआ वह बोला, — ‘भविष्य कालकी चर्चा अभी करनेकी क्या ज़रूरत? परंतु परेलकी एक दरिद्री औरत बीमार पड़ जाती है, पिताजीका तार आनेपर भी अपने घर न जाकर तुम उसकी परिचर्यामें लग जाती हो, तुम्हें लेनेके लिये मैं आया हूँ, फिर भी तुम उस औरतकी बीमारीका बहाना सामने लाती हो! ये सभी बातें मुझे बड़ी अजीब मालूम होती हैं। तुम डॉक्टरनी हो गयी हो, परोपकार करनेकी तुम्हारी इच्छा है, इन बातोंके लिये तात्यासाहबको और मुझे क्या कम अभिमान मालूम होता है? कुछ मिशनरियोंने शिरगाँवमें एक बड़ा अच्छा सैनेटोरियम खोला है। वहाँ जाकर मजेसे सेवा करो न! कौन रोकता है तुम्हें? परंतु अपने पिताजीका सामाजिक दर्जा, अपनी शिक्षा, भावी जीवनमें तुम्हें प्राप्त होनेवाला उच्चा स्थान — इन सबकी ओर आँखें बंद करके —’

‘अंधे आदमीकी आँखें क्या कभी व्याख्यानसे खुलती हैं?’

कुसीसे उठकर अटारीकी ओर जाते हुए विजय बोला, — ‘जलनसे खुल जायेंगी। और कभी कभी तो अंधे आदमियोंको घड़ियों और घरोका कैसे बिलकुल ठीक पता चल जाता है!’

उसकी इस बातका रुख, जब मुकुन्द ऊपर आया, तब सुलभाकी समझमें आया। वह फुर्तीसे उठी और मुकुन्दसे बोली, — ‘दीदीको फिरसे एक इन्जेक्शन ही देना होगा। चलो तुम, मैं आ ही रही हूँ!’

मुकुन्द आश्चर्यसे उसकी ओर देख रहा था। परंतु उसके आँखसे इशारा करते ही वह आगे कुछ न बोला। रास्तेपर आते ही वह बोला, — ‘मैंने दीदीको कल रातकी गाड़ीसे शिरगाँव भेज दिया है!’

‘मुझे तुम्हारी दीदीके पास नहीं जाना है।’

‘फिर?’

‘अपनी दीदीके घर!’

‘कहाँ?’

‘ताड़देव!’

‘यह कहाँसे निकाली नयी दीदी?’

‘नयी नहीं, पुरानी ही है। पर गुम गयी थी, सो अब मिल गयी है।’

‘क्या, मनोहर आया है?’

सुलभाने गर्दनसे ही ‘हाँ’ कहा। उसके खामोश होते ही उसकी मुद्रापरकी उदासीनता द्विगुणित हो गयी। मुकुन्द ताड़ गया कि अपने मनकी चिंताको छिपानेके लिये ही वह मुझे पहलेकी भाषामें बातें कर रही थी। परंतु उसकी समझमें न आया कि उसे संतोष किस तरह दिया जाये। खूनका अभियोग लगानेके कारण फरार हुए भाईका वापस आना! आनंद और दुखके इस तरह एक बराबर भाग जीवनके किसी दूसरे घूटमें भी मिले हुए होंगे क्या?

सुलभा जिस स्टूडिओमें जाना चाहती थी उसको मुकुन्दने खोज निकाला। पूछताछ करनेके लिये दोनों भीतर गये। किसी रानीके भव्य महलका दृश्य सजानेकी गड़बड़ी मची हुई थी वहाँ। बड़े कष्टसे मुकुन्दने वहाँ अपनी पूछ करा ली। तब उसे पता चला कि अभय मित्र अस्वस्थ होनेके कारण अपने घर हैं। घरका पता लेकर उसने किसी तरह उसे भी खोज लिया। ज़िना चढ़ते समय सुलभाके क्रदम जड़ होने लगे। अब मुझे क्या देखनेको मिलेगा? क्या सुननेको मिलेगा? बिल्कुल ऊपरी सीढ़ीपर वह जहाँके तहाँ ठिठक रही। मुकुन्दने पीछे मुड़कर देखा। उसके ध्यानमें आ गया कि सुलभा भयसे व्याकुल हो गयी है। एक सहेलीकी तरह उसका हाथ अपने हाथमें लेकर वह बोला, — ‘मैं हूँ न तुम्हारे साथ!’ उस एक ही वाक्यसे सुलभाको अपने हृदयका भार कुछ हल्का हुआ-सा लगा।

दोनों अभय मित्रके कमरेके पास आ पहुँचे। द्वारपर जो नौकर था, उसने कहा, — ‘साहब बीमार हैं। भीतरसे कुंडी लगाकर सोये हुए हैं।’

कुंडी लगाकर? सुलभाके आगे आत्म-हत्याके अनेक दृश्य खड़े हो गये। विरक्त हुआ मनुष्य एकान्तमें कब क्या कर डाले, इसका कोई ठिकाना नहीं। अब मनोहर ही आकर किवाड़ खोलेगा, या —

मुकुन्दने दरवाज़ा खटखटाया। यह देखकर कि भीतर कुछ भी हलचल नहीं हो रही है, वह दरवाज़ेपर ज़ोरज़ोरसे धक्के देने लगा। भीतरसे कोई चिल्लाया, — ‘कौन है रे, र. मू —?’

सुलभा बोली, — ‘दरवाज़ा खोलो तो मालूम हो जायेगा, कौन है?’

स्त्रीकी आवाज़ सुनकर भीतरका व्यक्ति दरवाज़ेके पास आया होगा। ‘नाम क्या है?’ — उसने प्रश्न किया।

‘केशर’—सुलभाने उत्तर दिया।

दरवाज़ेका कुंडी खट-से दूर हो गयी। मनोहरके बिखरे हुए बालों और चढ़ी आँखोंको देखते ही सुलभा क्षण-भर डर गयी। फिर उसके ध्यानमें आया, कि रात-भर उसकी आँखसे आँख न लगी होगी !

‘केशर कहाँ है?’—दोनोंके भीतर जाते ही मनोहरने पूछा।

‘चली गयी!’

‘कहाँ?’

‘जहाँसे आयी थी, वहीं!’

‘घर लौट गयी?’

‘आँ हाँ। तुम्हारे दिलमें ! वह आयी ही कब थी हमारे साथ !’

‘बचपनसे ही यह ताईकी नानी इसी तरह नटखट है !’

सुलभाके ध्यानमें आ गया कि भेरे आनेसे मनोहरको खुशी हुई है। थोड़ी देर-तक गरदन नीचे लटकए वह स्वस्थ बैठा हुआ था। फिर एकदम मुकुन्दकी ओर मुड़कर वह बोला,—‘तुम जैसे बड़े आदमीको ऐसी रद्दी पोशाक शोभा नहीं देती।’

मुकुन्द और सुलभा दोनोंसे हँसी रोके नहीं सकती थी। अंतमें मुकुन्दने उससे पूछा,—‘मुझे पहचाना क्या तुमने?’

‘वाह ! भाईदूजके दिन इसने तुम्हारी आरती उतारी थी, इसी लिये तो मैं भाग गया था !’—मनोहरने हँसनेका प्रयत्न किया; परंतु कृत्रिम फूलमें सुगंध कहाँसे आयेगी ? यह साफ़ दीख रहा था कि वह अपने दुःखको छिपानेकी कोशिश कर रहा है। जब मुकुन्दने कहा कि मैं न आइ. सी. एस. हुआ हूँ और न बैरिस्टर बना हूँ, तब वह आश्चर्यसे बोला,—‘मैं हररोज़ दुनियाको आगे बढ़ी हुई देखा रहा हूँ ! जब स्कूलके दिन याद आते हैं, तब लगता है कि मुकुन्द कहीं जज बन गया है और पुलिसवालोंने मुझको पकड़कर उसके सामने उपस्थित किया है। सुलभा किसी बड़े डॉक्टरकी पत्नी हो गयी है। उसका पति जेलका निरीक्षक है। सुलभाताई सहज-भावसे एक दिन अपने पतिके साथ जेल देखने पधारती हैं। जेलके बगीचेमें, कैदियोंके लिबासमें मनोहरको काम करते देखते ही वे मुँह फेर लेती हैं—’ एक सिसकारी लेकर मनोहरने दोनों हाथोंसे अपना सिर कसकर पकड़ लिया और उसे तकियेपर टिका दिया।

‘भैया, भैया’—कहती हुई सुलभा उसके नज़दीक गयी। उसका हाथ अपने

हाथमें लेकर वह बड़े वात्सल्यसे अपने दूसरे हाथसे उसका मस्तक थपथपाने लगी।

अपने आँसुओंको झटसे पोंछकर मनोहर बोला, — ‘ताई, आज अपनी माँ होती तो —’

‘तो उसे भी छोड़कर तुम भाग जाते !’

‘नहीं; माँ होती, तो मैं कभी न भागता ! मैंने उससे सब बातें सही सही कह दी होतीं। तुम अपनी पढ़ाई और सहेलियोंमें व्यस्त थी। मौसीजीको बेशरमीसे कुछ कहनेकी हिम्मत नहीं पड़ती थी और तात्या तो मेरी एक बात-भी न सुनते ! इसलिये खून न करके भी मैं गुनहगार बन गया —’

‘क्या, उस खूनमें तुम्हारा कोई हाथ नहीं था ?’

‘उस रातको मैं उस वेश्याके घर गाना सुनने गया था।’

‘फिर उसका खून किसने किया ?’

‘एक पठानने। उसने मुझसे कहा कि मुकद्दमेमें मुझे गवाहकी हैसियतसे अदालतमें खड़ा होना होगा। तब लोगोंको यह पता चल जायगा कि तात्यासाहबका लड़का वेश्याके घर था और यह बात — उनकी इज्जतको ब्रूटा लगानेवाली होगी। इसलिये उसने मुझे फरार हो जानेकी सलाह दी। मुझे भी वह ज़ेच गयी। और मैं फरार हो गया। मेरे भाग जानेपर उसने मेरे खिलाफ़ सबूत इकट्ठे किये और वह सहीसलामत छूट गया।’

मुकुन्दने पूछा, — ‘उस पठानका धंधा क्या है ?’

‘बहुत पवित्र धंधा है उसका ! सुन्दर लड़कियोंको भगाकर उन्हें बेचना और पचीस सैकड़ाकी दरसे लोगोंको कर्ज़ा देना।’

‘वह रहता कहाँ है ?’

‘उस समय शिरगाँवमें था। आजकल पूना-बंबईमें रहता है ! मैं जब बंबईमें रहता हूँ तब वह हमेशा मुझे पुलिसका भय दिखाया करता है। कहता कि वह पुलिसको रिपोर्ट कर देगा कि उस खूनका फरार गुनहगार यहाँ है ! शेर कहता हूँ तब भी खाता है और शेर महाराज कहता हूँ, तब भी खाता है ! इसलिये यदि एक बार फैसला ही हो जाय तो क्या बुरा है ?’

‘तुम्हारा क्या इरादा है ? क्या करना चाहते हो तुम ?’ — तकियापर टिके हुए मनोहरके मस्तकको अपनी जेबपर रखते हुए सुलभाने पूछा।

‘जिस व्यवसायमें पड़ गया हूँ वही।’ – विकट हास्य करता हुआ मनोहर बोला,
‘शूटिंग!’

‘भैया, अभीतक तुम्हारा बचपन नहीं गया है!’

‘तात्याने मुझे कभी बड़ा होने ही नहीं दिया। डर! सारी बातोंका डर! ताई, तुम अपनी बुद्धिके बलसे आगे बढ़ी। मुझमें क्या बुद्धि न थी? फिल्म कंपनी-योसे अभय मित्रकी तर्जोंकी मिठास पूछ आओ! परंतु यह सब मुझे चोरीसे पढ़ना पड़ा। यदि तात्याने मुझे संगीत सिखानेका खुल्लम खुल्ला कोई प्रबंध कर दिया होता, तो रंडियोके घरकी महफिलोंमें चोरीसे जाकर बैठनेकी मैंने कभी कोशिश ही न की होती, और यह मौका भी मुझपर न आता!’

‘खैर, वह कुछ भी हो, पर शूटिंगका यह पागलपन तुम अपने दिमागसे बिलकुल निकाल डालो।’

‘मैं उस पठानसे बहुत डरता हूँ!’

‘मुकुन्द है न यहीं?’

‘तुम चाहो तो मैं तुम्हारे पास ही आकर रहने लगूँ!’ – मुकुन्दने कहा जो खिड़कीके पास खड़ा भाई-बहनकी बातें सुन रहा था।

मनोहरकी वृत्ति अब बहुत कुछ शान्त हो गयी थी। उसकी ओर ध्यानसे देखकर सुलभा बोली, – ‘देखो, भैया! थोड़े दिनके लिये तुम अपने इस पागलपनको ज़रा एक ओर हटा दो, समझे?’

‘और फिर?’

‘फिर दूसरा ही पागलपन तुमपर सघार हो जायेगा! लगातार केशरकी ओर देखते रहनेका!’

‘कहना चाहिए कि तुम तो बिलकुल विवाह कर देनेकी तैयारीसे ही आयी हो! परंतु मेरे विवाहके लिये देवताओंके आवाहनकी पूजा करनेको कौन बुजुर्ग दम्पति बैठेंगे? क्या तुम दोनों?’



कल्पवृक्ष या विषवृक्ष ?

सुलभाकी तरह मुकुंदको भी यह लगा कि केशर और मनोहरकी भेंट हो जाये, तो वह अविचारसे कोई भी साहस न करेगा । परंतु आजके आज ही यह होगा कैसे ? शामको केशर शिरगाँव चली जायेगी ! कलकत्तासे आकर उससे क्षण-भर भी बातें करनेका मौक़ा न मिलनेके कारण, मनोहर और भी अधिक उदास हो जायेगा । ऊपरसे, यदि वह पठान उसके पीछे पड़ जाय, तो फिर क्या पूछना है ? — बरूदखाना भरा हुआ था; आसपास चिनगारियाँ भी उड़ रही थीं और साँय साँय चलनेवाली हवा अपनी दिशा कब बदल देगी, इसका कोई ठिकाना न था । कैसे कह सकते हैं कि केशरके लिये कलकत्तासे दौड़कर आनेवाला मनोहर उससे मिलनेके लिये कल शिरगाँव नहीं चला जायगा ? शिरगाँववालोंकी दृष्टिसे वह खून करके फरार हुआ एक गुनहगार है । मनोहर कहता है वैसी यदि वस्तुस्थिति होगी, फिर भी उस पठानको किस सबूतके आधारपर पकड़े ? और सिवा इसके कि वह खुद ही अपना अपराध स्वीकार करे, और कौनसा दुसरा सबूत उसके विरुद्ध मिल सकता था ? एक दूसरेकी मुद्राओंपर अंकित हुए इन प्रश्नोंको सुलभा और मुकुंदने कितने ही बार मूकतासे पढ़ा । परंतु प्रश्न क्या कभी पढ़कर हल होते हैं ? उत्तर देनेका प्रत्यक्ष प्रयत्न करनेसे ही वे हल हुए, तो हो सकते हैं !

इसके कारण सुलभा घर आयी तो खिन्न मनःस्थितिमें ही ! वापस आनेपर मुकुंदको अपनी ट्यूशन शुरू कर देनी थी । परंतु पुष्पा और पांडुरंगको लेकर, विजय कहीं बाहर चला गया था । जाते समय वह यह सँदेसा भी छोड़ गया था कि लौटनेको कुछ देर हो जायेगी ! सुलभाको यह समझनेमें देर न लगी, कि पुष्पाको अपने साथ ले जाकर उन लोगोंने हमसे एक प्रकारका बदला ही लिया है । मुकुंदको तो अब प्रतीक्षा करते बैठे रहना आवश्यक ही था ।

मुकुंदको लेकर सुलभा अपने कमरेमें गयी । उसे लग रहा था कि मुकुंद कोई ऐसी बात कहे जिससे हँसी आये; परंतु शायद वह किसी विचारमें खोया हुआ था ! उसके मनका तूफान भी क्षण-क्षणमें बढ़ने लगा । बचपनकी रम्यता सुलभाको उन पाँच मिनटोंमें पूर्ण रूपसे जँच गयी । उस छोटी-सी दुनियामें दुखोंकी क्या कोई कमी थी ? परंतु वे दीर्घायुपी नहीं थे ! उस समय मामूली चिन्ताएँ सूर्योदयके साथ उत्पन्न होतीं और सूर्यास्तके साथ अस्त हो जातीं ! किसीको 'पापा' दिया तो सराहना होती थी और 'ना, ना' कहकर गरदनसे इन्कार कर दिया, तो इसकी भी सराहना होती थी ! उस यक्ष-सृष्टिमें भय, निराशा, मत्सर और मृत्युके रूप भी कितने छोटे और अस्थिर होते हैं ! परंतु मनुष्य बड़ा हुआ, कि -

‘सुलभा ! आगे चलकर क्या करनेवाली हो तुम ?’

नींद न आनेके कारण चिढ़ गये हुए मनुष्यको कोई जानबूझकर हंसा देवे, उस तरह सुलभाको हो गया । वह जीवनके बीस वर्षोंको भूल जानेकी कोशिश कर रही थी, ऐसे समय आगामी बीस वर्षके चित्रपटको आँखोंके सामने खड़ा करनेके लिये कहनेवाला यह मुकुंद - आगामी वर्ष ? क्यों यह प्रश्न पूछा इसने ?

‘मुकुंद, मैंने यह पढ़ा है कि जल्म हो जाये, तो उसे धोकर, बाँधकर रोगीको आरामसे पड़ा रहने देना चाहिए ।’

‘जहाँतक रोगीका सवाल है, यह ठीक है; पर तुम कोई रोगी नहीं हो और यह युनिया भी कोई धर्म-अस्पताल नहीं है !’

‘यह तो सच है ही कि दुनिया अस्पताल नहीं है । वह एक ऐसी धर्मशाला है जहाँ कोई किसीकी परवाह नहीं करता ।’

‘लगता है आज उमर खय्यामने संचार किया है तुम्हारे शरीरमें । कहीं तुम्हारे मनमें यह तो नहीं आ रहा है कि एक प्रणयकथा और चायकी केटली लेकर कहीं बाहर जाकर बैठूँ ?’

‘तुम जैसे ढाल-तलवार लेकर तैयार हुए मनुष्योंको देखा तो —’

‘वरना मनुष्योंको करना भी क्या चाहिए ? जीवन एक बड़ी विचित्र लड़ाई है। इस घनघोर संग्राममें मनुष्यको समाजसे लड़ना पड़ता है, अपनेसे प्रेम करनेवाले सगेसंबंधियोंसे लड़ना पड़ता है, और तो और, स्वयं अपने आपसे भी लड़ने पड़ता है।’

‘अपने आपसे ?’ — एकदम चौंकर सुलभाने पूछा।

‘हाँ, शत्रुका अत्यंत सुरक्षित मोर्चा तो वही है।’

‘मतलब यह कि मनुष्य स्वयं अपना ही शत्रु होता है ?’

‘तुम्हें तो कुछ तअज्जुब-सा हो रहा है ? Better is the enemy of good. प्रत्येक मनुष्यमें दो विरोधी आकांक्षाएँ होती हैं। उसे सुखसे रहनेकी इच्छा होती है; साथ ही, उसे बीच-बीचमें यह दिव्य आभास भी होता रहता है कि मैं कोई काम विशेष रूपसे करूँ, दुनियाके काम पढ़ूँ। यह आभास सत्य-सृष्टिमें उतरे इस-लिये उसे स्वयं अपने आपसे लड़ना पड़ता है !’

‘और इस लड़ाईमें जख्मों हो जायें तो ?’

‘हो जायें तो क्यों ? होती ही हैं। यह कोई झूठमृठकी लड़ाई नहीं है। परंतु इन जख्मोंके लिये एक अच्छी दवा है !’

‘कौनसी ?’

‘प्रेम करनेवाला मनुष्य !’ — मुकुन्दकी मुद्राकी ओर सुलभाने देखा। एक तरुण पुरुष तरुण स्त्रीकी ओर नहीं देख रहा था, एक हृदय दूसरे हृदयसे बोल रहा था। उसके इस निग्रही स्वभावके लिये सुलभाके मनमें आश्चर्ययुक्त आदर उत्पन्न हुआ। पिछले सात-आठ वर्षोंमें कितने ही छोटे-बड़े पुरुषोंसे उसका परिचय हुआ था। परंतु मुकुन्दके बराबर निर्मल दृष्टि उसे शायद ही कहीं दिखाई दी थी। यह सच है कि स्त्रीदाक्षिण्यके परदेकी ओटमें पुरुषोंकी छोटी बड़ी तलोंको ढाँक देनेका सुभीता, समाजमें आजकल हो गया है; परंतु इसके कारण समाज भले ही धोखा जाय, परंतु स्त्रीका मन धोखा नहीं खाता। सुलभाने मुकुन्दकी ओर ध्यानसे देखा। उसके मनमें यह शंका भी आयी कि इसका स्त्रीदाक्षिण्यका परदा शायद कुछ मोटा हो। परंतु जहाँ कोई परदा ही न था, वहाँ ध्यानसे क्या देखे ?

‘परंतु यह प्रेम करनेवाला मनुष्य थोड़ा दूर ही रहे तो अच्छा !’ — मुकुंद आगे कहने लगा।

अब सुलभासे अपनी हँसी न रोकी गयी ! वह बोली, — ‘तुम बड़े अच्छे डॉक्टर बनोगे । रोगी उत्तर ध्रुवपर और दवा दक्षिण ध्रुवके पास !’

‘ऐसी ही नहीं है कुछ ! लेकिन देखो, प्रेम शहदकी तरह होता है । मधुमक्खी शहदको चबचप खानेके लिये आती है । तो वह भीतर चिपककर ही बैठ जाती है ।’

‘तो फिर प्रेम आखिर कैसा होना चाहिए ?’

‘हरे चंगाके फूलकी तरह ! दूरसे ही उसकी सुगंधसे आनंद होना चाहिए !’

‘तुम बिलकुल रदी कवि बनोगे, देख लेना !’

‘बड़ा अच्छा सर्टिफिकेट है यह ! काम करना है मुझे । कविता नहीं लिखनी है !’

‘तुम संस्कृतके इतने बड़े विद्वान हो और मजेसे कह रहे हो कि प्रेम दूरसे करना चाहिए ? यदि प्रेम इस तरह हवासे आनेवाली सुगंधपर संतुष्ट रहता, तो कालिदास मेघदूत लिखता भी ?’

‘वे रही यक्ष-गंधर्वोंकी बातें !’

‘और तुम्हारी बातें क्या भूत-प्रेतोंकी हैं ? हमारे उपन्यासकारोंसे जाकर पूछो, कॉलेजके तरुणोंकी राय लो, सारे मिलकर तुम्हें पागल करार दे देंगे ।’

जीनेसे कोई दौड़ता हुआ ही ऊपर आया । पुष्पा थी वह ! उसके हाथमें एक नयी कोरी मनीबैग झूल रही थी । क़रीब क़रीब हाँफते हुए ही उसने सुलभासे कहा, — ‘कैसी अच्छी, सुंदर गाड़ी है ! मजे हैं तुम्हारे, जीजी !’

सुलभा उसकी बातका मतलब ही न समझ पायी । थोड़ी देर टहरकर उसने पुष्पासे सारी बातें जान लीं । विजयने पुष्पाकी पसंदकी चीज़ें उसके लिये भेंटके रूपमें खरीद दी थीं ! यही नहीं किंतु स्वयं अपने लिये भी वह एक सुंदर कार पसंद कर आया था । उसीसे कल पूना जानेका उसने इरादा किया था । ‘कल आपके हाथसे ही इस कारकी ‘ओपनिंग सेरीमनी’ होनेवाली है, जीजीसाहबा ! विजय तो मुझे भी कह रहे हैं कि चलो हमारे साथ पूना । परंतु यह शेर जो मेरे पीछे लग गया है न ? क्यों मुए ये कालिदास और भवभूति पैदा हुए, कौन जाने ?’

‘इसलिये कि मुझ जैसांका पेट भरे !’ — मुकुन्दने हँसते हुए उत्तर दिया ।

• • •

मोटरसे पूना जानेका यह सुलभाका पहला ही मौक़ा था । मोटरकी अपेक्षा रेलका सफर ही उसे अधिक पसंद था ! घरकी कार होते हुए भी हमेशा रेलसे

बंबई जानेके उसके शौकका कोई मज़ाक उड़ाता, तो वह उत्तर देती, अकेले प्रवास करनेमें मुझे कोई आनंद ही नहीं आता। जिनसे पूरे जीवनमें भी फिर भेंट न होगी, ऐसे लोगोंमें बैठकर, सफर करनेमें जो आनंद है, वह क्या मोटरके एकान्तमें कभी मिल सकता है ?'

मौसीजी सुलभाको जो चतुर कहा करती थीं, वह इस विषयमें अक्षरशः सच था। रेलगाड़ीमें कोई छोटा बच्चा, उसका चेहरा उसके उस बच्चेके किसी परिचित स्त्री-सा दीखनेके कारण, उसके पास आ जाता, उस समय वह इतने वात्सल्यसे उसे सहलाती, कि वह बच्चा यह भूल जाता कि उसे धोखा हुआ है। एक रोते बच्चेको, खेलनेके लिये अपने विपुल केशोंकी चोटी उसके हाथमें देकर, वह उसे प्रसन्न मुखसे पूनासे बंबईतक ले गयी थी। छोटे बच्चोंकी तरह बूढ़े भी फटसे उसके वशमें हो जाते थे। काशीयात्राके पुण्यपर उसका तिलमात्र भी विश्वास न था। परंतु एक बार कल्याणसे पूनातकके सफरमें उसे एक वृद्धा मिली जिसने उसको काशीयात्राके महत्त्वकी और साथ ही अपनी बहुओंकी चुगलियोंकी गाथा पढ़कर सुनायी। सुलभाने वह गाथा शान्तिसे सुन ली और जाते जाते 'काशीजीमें यह सब गुस्सा छोड़ आना, दादीजी !' कहकर, दवाका एक इंजेक्शन भी टोंच दिया !

इस स्वभावके कारण मोटरके सफरमें उसे कोई आनंद नहीं आया करता था। साथ ही सफर शुरू होनेसे पहले ही, पाडुरंग और विजयका अपनी कारकी सुंदरताके बारेमें जो बकवास-भरा संभाषण हुआ, उसे सुनकर उसके मनमें बड़ी छिन्न पैदा हो गयी थी। नयी मोटरका अभिमान विजयके मुँहसे निकलनेवाले एक एक शब्दमें और मुद्राकी एक एक रेखामें स्पष्ट रूपसे अंकित हो रहा था। सुलभाको लगा, उस जैसे बुद्धिमान, तरुण और सुशिक्षितकी महत्वाकांक्षाका सार यही है क्या ? कटसरेयाके फूलोंके रंग क्या कम मनोहारी होते हैं ? परंतु सुगंध ? ध्येय ही जीवनकी सुगंध है। विजयके जीवनमें वह कहाँ थी ? मोटर, बैंगला, ज़मींदारी ! सभी कागज़के फूल।

अनजाने मुकुंद उसकी आँखोंके सामने खड़ा हो गया। कल दोपहरको उसीकी चतुराईके कारण केशर और मनोहरकी एक बागमें मुलाकात हुई। केशर और मनोहरको थोड़ा एकान्त मिले, इसलिये मैं और मुकुंद दोनों दूर हट गये। जाते जाते मैंने पीछे मुड़कर देखा। कितनी व्याकुल नज़रसे ये दोनों एक दूसरेकी

ओर देख रहे थे ! एक दूसरेके लिये उनकी वह आतुरता और शान्तिपूर्वक मुझसे समाजकी वर्तमान परिस्थितिके बारेमें बातें करनेवाला मुकुंद ! चाँदनीमें जगकी चिंता करते घूमनेवाले किसी देवदूतके चित्रकी तरह दीख रहा था वह । बागकी तरफ एक परिंदो भी पर नहीं मार रहा था । स्पर्शसे अथवा शब्दसे तो दूरकी बात थी; परंतु आँखोंसे भी यदि उसने मुझसे कोई विशेष बात की होती, तो उसका दुनियाको थोड़े ही कोई पता चलनेवाला था ? कुछ पेड़ोंको फूल बहुत सुंदर आते हैं; परंतु उनमें फल बिलकुल नहीं लगते । उसका मन इसी प्रकारका है क्या ? सूक्ष्म बोलनेसे ही उमड़ पड़नेवाले उसके हृदयको दूसरे किसी भी कोमल भावका स्पर्श ही नहीं होता क्या ? जो वह कहता है वह सब सच लगता है; परंतु ध्येय यानी अपने खुदका मुग्न बेचकर, उसके बदलेमें लिया हुआ दूसरोंका दुख — यही उसका अर्थ नहीं होता क्या ?

मोटरके वेगके साथ सुलभाके विचारोंकी उलझन बढ़ती ही चली । विजयने बीचहीमें उसे बाहरका सृष्टि-सौंदर्य दिखाया, रास्तोंकी जानकारी दी, यह कार्यक्रम भी बताया कि शीघ्र ही दो दिन माथरानमें आकर रहेंगे । परंतु किसीमें भी उसका दिल खुलकर न रम सका । उसके असंगत उत्तरोंसे विजय भी ऊब उठा । इसलिये जब मोटर पूना पहुँची, तो सुलभाकी तरह उसने भी छुटकारेकी साँस ली ।

परंतु दोपहरको जब मौसीजी देवके नीरांजनके लिये बातियाँ बट रही थीं और साथ ही सुलभासे बातें करने लगी थीं, तब उसके मनपर छाये हुए उदासीनताके बादल बात-की-बातमें साफ़ हो गये । उसे आभास हुआ जैसे रेलगाड़ियोंकी कर्णकर्कश सीटियोंसे निनादित होनेवाले स्टेशनकी भीड़से निकलकर मैं एक शान्त आमके पेड़ तले आ गयी हूँ जिसपर एक कोयल गा रही है । मौसीजी बातें करते समय चटसे पुराणोंका कोई उदाहरण दे दिया करतीं । इसमें दिखाई देनेवाली उनकी स्मरण-शक्तिकी अपेक्षा क़रीब पैंसठ बारिशें देखनेके बाद भी उनकी मुद्रापर जो बसंती रिमंत झलका करता उसका इस समय भी सुलभाको आश्चर्य हुआ । मौसीजीके यह कहते ही कि बीचमें मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं था, सुलभा बोली,— ‘फिर मुझे पता देना था ! खुद तुम्हारी नातन जब डॉक्टरनी है —’

‘वह हमारे किस कामकी ?’

सुलभाने आँखें विस्फारित कर मौसीकी ओर देखा ।

इस तरह नाराज़ न हो । उस दिन तात्याके तारकी भी परवाह न की तूने !

फिर मौसीके पत्रको कौन पूछता ?' सुलभाकी ओखे एकदम आँसुओंसे डबडबा गयीं। मौसीने उसे नज़रीक खींच लिया और प्रेमसे सहलाया। वह भी छोटी बालिकाकी तरह उनकी जेबपर सिर टेककर उनकी ओर टकटकी लगाकर देखने लगी।

‘इतनी बड़ी डॉक्टरनी हो गयी; पर अभीतक मज़ाक भी नहीं समझनी ?’

‘यदि इस तरहका प्राणलेवा मज़ाक डॉक्टर करने लगा, तब तो चल चुकी उसकी डॉक्टरी !’

यह महसूस कर कि सुलभा मुझपर असीम स्नेह रखती है, मौसी प्रमत्त हो गयीं और उन्होंने कहा, — ‘वह बात नहीं है, बेटा ! वैसी कोई बात होती, तो तुझे ज़रूर ही सूचित करती। परंतु अपने मनमें तू यह गॉठ बाँध ले कि जबतक यह बुढ़िया अपने पोताँके मुँह नहीं देख लेगी तबतक नहीं मरेगी।’

‘पोता कौन बड़ी बात है ? वह तो अगले साल हो जायेगा !’

मौसीजी उसकी ओर देखती ही रह गयीं। तात्याका तार पाकर भी जब सुलभा नहीं आयी, उस समय, वर्तमान पद्धतिके अनुसार कहीं किसीके साथ उसका विवाह तो निश्चित न हो गया हो, यह शंका मौसीजीके मनमें न आयी हो, यह बात न थी। परंतु इस समयका सुलभाका उत्तर सुनकर उनका क्षमाशील मन भी थोड़ा बिगड़ गया। जैसे वह अपने आपसे यह कह रहा हो कि समय बदल जानेके कारण क्या लड़काने अपना धर्म बिगाड़ डाला। उनके मनके भीतरकी खलबलीका सुलभाको अंदाज लग गया। वह हँसती हुई बोली, — ‘मैं यह कहना चाहती थी कि साल-भरके बाद मनोहरके घर बच्चा हो जायेगा !’

‘मनोहरको ?’ — मौसीने कितने जोरसे यह प्रश्न पूछा। इसी समय घड़ेका पानी पीनेके लिये आये हुए विजयने दरवाज़ेमेंसे झाँककर देखा। मौसीका प्रश्न तो उसके कानोंमें पड़ ही चुका था। परंतु उसके ध्यानमें यह भी आ गया कि मुझे देखते ही सुलभा झंप गयी। फिर भी पानी पीकर ‘हुश’ करता हुआ और धोतीके छोरसे हवा लेता हुआ वह क्षण-भर खड़ा रहा। इस ख्यालसे कि मेरा अकस्मात आगमन सुलभाको चमत्कारिक लगा होगा, वह बोला, — ‘पाडुरंगने तो लंबी तान दी है। और इधर गरमीके मारे प्यास बहुत लगती है !’

‘हमारी यहाँ कोई गुप्त बातें नहीं हो रही थीं !’ — सुलभाने उत्तर दिया।

‘वाह! नातन जव दादीसे हट लेकर बैठ जावे, तो जो बात शुरू हो जाती है, उससे बड़ी दूसरी गुप्त बात ही दुनियामें न मिलेगी! एक था राजा और उसे —’

‘रानी नहीं मिल रही थी!’—सुलभा स्वयं ही यह नहीं कह सकती थी कि वह इस वाक्यको क्यों कह गयी। परंतु यह दिखानेके लिये कि मेरी बात मर्मपर चोट करनेवाली न थी, वह बोली,—‘आजकलकी लड़कियोंको विवाह करनेकी इच्छा नहीं होती! फिर राजाको रानी मिलेगी कहाँसे?’

‘परंतु राजासे विवाह न करनेवाली लड़की आगे चलकर उसके नौकरके साथ भाग जाती है! मौसी, आजके ही अखबारकी खबर है, सुनिये। एक अच्छी पढ़ी लिखी हिंदु लड़की—पुरुषोंको पद पदपर गालियाँ देनेवाली—उसने एक मुसलमान तबलचीसे शादी कर ली!’

इस तबलचीके प्रकरणके बाद संभाषण असंभव ही था! मौसीकी जंघापर सिर टेककर पड़ी हुई सुलभाने आँखें मूँद लीं। विजय ऊपर चला गया। सुलभाको तुरंत ही नींद आ गयी। मौसीकी रानें ऐंठ गयीं। परंतु नातिआँ बनाते हुए भी वे न हिलें इसलिये वे कितनी सगहलकर हलचल कर रही थीं। परशुराम जैसे गुरुकी निद्रा भंग न हो इसलिये जंघासे खून बहते हुए भी कर्ण अपने स्थानसे न हटा। वह विलक्षण निष्ठा मौसीके वात्सल्यमें भी थी। इसलिये घड़ी-भरके बाद जब सुलभा नींदसे जागी, तब यह देखकर कि मैं मौसीकी जंघापर ही सो गयी हूँ, उसे अपने आपपर ही हँसी आयी। पिछले पाँच-छः दिनोंसे बंधईमें उसे यह आभास हो रहा था जैसे बिजलियाँ कड़कड़ाकर गिर रही हैं, बादलोंकी गड़गड़ाहटसे कलेजा धड़क रहा है, वृक्ष और लताएँ तेज़ हवामें मस्तीसे झूम रही हैं और चुभनेवाली हवासे रोंगटे खड़े हो रहे हैं! इसलिये इस इच्छासे कि मौसीजीकी जंघापर मिल रहा निर्व्याज निद्रा-सुखका वह रम्य अनुभव जल्द समाप्त न हो जावे, उसने फिरसे अपनी आँखें बंद कर लीं। इस समय उसे लगा—जिस तूफानमें फँस जानेका मुझे आभास हो रहा था, वह कहीं दूरपर ऊधम मचा रहा है। मैं अपने घरमें मौसीकी छायाके नीचे पूरी तरह सुरक्षित हूँ।

इस कल्पनाके कारण हो, अथवा मौसीजीके भावुक सद्वासके कारण हो, पर शामको तात्यासाहब और विजयके साथ सुलभा जब व्याख्यानके लिये गयी, तब विजयको यह आभास हुआ कि वह पहलेकी तरह ही प्रसन्न मनःस्थितिमें है। विजयके स्वागत और व्याख्यानके लिये हुई भीड़ आदिका अनजाने सुलभाके मनपर परिणाम

हुआ ही। क्या, मुकुन्दका भी समाजमें इस तरह स्वागत होगा ? उसके मनमें व्याख्यानके समय यह एक ही प्रश्न रह-रहकर खड़ा होता था।

उस दिनके भाषण समाचारपत्रोंके संवाददाताओंकी दृष्टिसे बहुत अच्छे हुए। अनेक उपवक्ता लड़खड़ाये ! जो लड़खड़ाये न थे, उन्हें श्रोताओंने लड़खड़ाया ! बीच-बीचमें ख़ासने-खकारनेवाले एक वक्ता महाशयको श्रोताओंमेंसे किसी एक बेनाम श्रोतामहोदयने 'सोंठ ला दूँ क्या ?' प्रश्न पूछनेका साहस भी कर दिया। हँसी, तालियाँ, लाटियोंके पटकनेकी आवाज़ आदिकी तो गिनती भी नहीं हो सकती थी। विजयने अपने भाषणके ज़रिये ज़ोरदार शब्दोंमें स्त्रीजातिकी वकालत की थी। एक सनातनी वृत्तिके उपवक्ताको वह बिलकुल न भायी। इसलिये उसने अपने भाषणमें यह मुद्दा पेश किया कि - 'यदि ईश्वरको लगता कि स्त्री और पुरुषकी योग्यता समान है, तो वह उनकी शरीर-रचनामें अकारण भेद क्यों करता ?' दूसरे वक्ताने शिकायत की कि स्त्रियोंका दिमाग़ बहुत हल्का होता है। उस समयके उसके अभिनयके और भाषणमें पद पदपर होनेवाले वैज्ञानिक सत्त्वोंके उल्लेखसे श्रोताओंको क्षण-भर लगा कि यह वक्ता अपने एक जेबमें स्त्री और पुरुषके दिमाग़ और दूसरे जेबमें तराजू और बाँट लेकर ही आया होगा। जब तीसरे वक्ताने यह कहा कि मैं सप्रयोग यह दिखा देनेके लिये तैयार हूँ कि स्त्रियोंमें पुरुषोंकी अपेक्षा आठ गुना काम होता है, तब तो सभागृहमें गड़बड़ी मच गयी। पूछताछ करनेपर पता चला कि सुंदर पत्नी भाग जानेके कारण पागल हुए वे एक महाशय थे ! उसका भाई उन्हें पागलखानेसे घर ले आया था। तबसे वे आर्य-संस्कृतिके कट्टर समर्थक हो गये थे और उन्होंने अन्वेषण करना आरंभ कर दिया था। इस अन्वेषणमें उन्हें इस बातपर विश्वास हो गया था कि उष्णतामापक यंत्रकी तरह प्राचीन कालमें इस आर्यावर्तमें काममापक यंत्र भी था ! वे आग्रहपूर्वक यह भी कहा करते थे कि यदि समूचे हिंदुस्तानका उत्खनन किया जावे, तो वह यंत्र मिले बिना न रहेगा।

एक तरफ़से इस तरहकी चढ़ाइयाँ हुईं। दूसरे दलका नेतृत्व भाई कदमकी तरफ़ आ गया था।

उसने अपने भाषणमें विजयके भाषणपर यह आपत्ति की कि देशमें निन्यानबे सकड़ा जो बहुजनसमाज है, उसकी स्त्रियोंका कोई विचार नहीं किया गया ! इसके बाद उसने एकदम इतने ज़ोरसे चिल्लाना और हवामें मुष्टियुद्धके पैतरेँ दिखाना

शुरू कर दिया, कि पहली ही पॉक्तिमें बैठी हुई एक तीन-चार सालकी लड़कीने एकदम एकाएक जोरसे रोना शुरू कर दिया। मार-पीटकर उसे चुप करनेसे पहले ही कदमजीके अभिनयसे घबड़ाकर एक छोटा लड़का चिल्लाने लगा। 'स्त्री-पुरुषोंकी समता अब प्रस्थापित हो गयी' कहकर सभापति प्रोफ़ेसर गरुडने कदमजीसे ज़रा स्वरको नीचेकी पट्टीमें लानेकी प्रार्थना की, तब कहीं बाल-गोपालोंका यह कोलाहल शान्त हुआ !

यदि कदमजी इसीका चित्र खींचते कि पुरुष-जातिने स्त्री-जातिको किस तरह अपना गुलाम बना रखा है, तो सुलभा अथवा अनेक समझदार श्रोता उससे थोड़े-बहुत सहमत हो जाते; लेकिन 'बच्चोंकी मिल चलाकर उसके लाभपर चैन करनेवाले पूंजीपति', 'जचकियोंके लिये स्त्रियोंकी बलि लेनेवाले नरराक्षस' और 'अबलाओंके खूनको गटागट पीकर उन्मत्त हुए सांड' आदि कहकर, पुरुषोंको वह चुनंदा गालियाँ देने लगा, तब सभामें घृणा और अनादरकी हवा बहने लगी। श्रोताओंके विरोधके कारण वक्ता भी आपसे बाहर हो गया और वह भी गुस्सेमें अनापसनाप बातें कहने लगा ! 'विवाह-संस्था मनुष्यकृत है'—इतना कहकर ही यदि वह ठहर जाता, तो कोई हर्ज न था; परंतु जब उसने यह कहा कि 'संतति-निरोधके साधन जब सर्वत्र खुले आम मिल रहे हैं, तब स्त्रियोंको विवाह करके पुरुषोंके दाम्त्वको क्यों स्वीकार करना चाहिए?' तो उसके इस वाक्यसे सारे श्रोतागण चिढ़ उठे। समाज सागरकी तरह होता है ! उसके क्षुब्ध हो जानेपर चाहे छोटी नौका हो और चाहे बड़ा जहाज़ हो, उसे कब जलसमाधि मिल जायगी, इसका कोई ठिकाना नहीं होता ! इस समय भी वही हुआ। कदमके बिल्वरे हुए बालोंसे लेकर उसके घूँसा ताननेतकके किसी भी रौद्ररूपसे सभा न डरी। अन्तमें प्रोफ़ेसर गरुड और विजयकी बिचवाईके कारण हज़रतको अपना भाषण समाप्त करनेसे पहले ही मंच छोड़ देना पड़ा।

सभामें इतनी ही बातें हुई होतीं, तो विजयके साथ हँसती-खेलती और सभामें हुई बातोंके बारेमें चर्चा करती हुई सुलभा घर लौट आती। परंतु प्रोफ़ेसर गरुडने सभापतिके नाते जो उपसंहार किया, वह इतना विलक्षण था कि उनके भाषणके कोई कोई वाक्य लगातार उसके मनमें घूमने लगे :

'क्या स्त्रियोंमें और क्या पुरुषोंमें, लौकिक और अलौकिक ऐसे दो फ़र्क करना ही चाहिए। समताके लौकिक वर्गमें निर्माण होना पवित्र और इष्ट है; पर

अलौकिकको इस बंधनमें जकड़ना दुनियाकी हानि है। फुहारको कीलकी ज़रूरत होती है ! समुद्रके बर्तावको ऐंसे कृत्रिम उपायोंकी ज़रूरत नहीं होती !’

‘स्त्री और पुरुषोंका लड़ाईयाँ बढ़नेका कारण एक ही है। और वह यह है कि दोनों विवाहको एक सबमें सस्ता सौदा मानते हैं। पुरुष पत्नीके रूपमें केवल भोजनपर, बिना तनखाहकी, चोरी न करनेवाली रसोईदारिन और रातको कमरेके दरवाज़ेसे भगा न देनेवाली स्त्री चाहता है। और स्त्री पतिके रूपमें ऐसा पुरुष खोज़ती रहती है जो उसे शौक्रसे सजाता रहे और सतान होनेपर उनके लिये कठिन परिश्रम करता हुआ उसका गुलाम बना रहे। अंतमें अनुभव यह होता है कि जैसे दो टग मिल गये हों ! दोनों एक दूसरेको खाना चाहते हैं। परंतु एक दूसरेके मुँहमें आवे अटक रहनेके कारण दोनों हाथ-पाँव मारना आरंभ कर देते हैं।’

‘स्त्री और पुरुषोंका प्रेम कल्पवृक्ष भी है और विषवृक्ष भी है।’

‘जब कृष्णमें ही नहीं है तो बाल्टीमें कहाँसे आयेगा ? समाजमें सर्वत्र विषमता होते हुए सिर्फ स्त्री-पुरुषोंमें ही समता कहाँसे आ जायेगी ?’

इतने उद्गार तो सुलभाने मन-ही-मन कह डाले जैसे वे उसे रट गये थे। उसे लगा, बड़ा अच्छा हो यदि मुकुन्द और गरुडकी एक बार भेट हो जावे। इस विचारमें खोयी हुई ही वह बँगलेकी सीढ़ियाँ चढ़ी। तुलसीके पास सांध्यदीप रखकर लौटी हुई मौसीजीने उससे कहा, — ‘तेरा एक पत्र आया है। तात्याकी मेज़पर रखा है वह !’

पत्र ! क्या, वह मनोहरका होगा ? अथवा उसने कुछ अंटसंट कर डाला हो, और मुकुन्दने —

जल्दी जल्दी जाकर वह पत्र खोज़ने लगी। मेज़पर ही विजयका तात्यासाहबके नाम आया हुआ पत्र था। उसने सहज-भावसे उसपरसे अपनी दृष्टि घुमाई। बीच-हीका मज़मून उसे दिखायी दिया। ‘एक खुश खबरी सुनिये। ऐसा रंग दीख रहा है कि जिस ज़मींदारीके वरासती हक्के लिये मैं लड़ रहा था, वह मुझे ही मिलेगी। उसके वर्तमान मालिक तपेदिकसे बीमार हैं और जानकारोंकी राय है कि धन्वंतरी भी उतर आवें, तो वे भी उन्हें नहीं बचा सकते। दूसरोंके दुखपर हमारे सुखका अवलंबित होना तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे उचित न हो, पर हम और आप जैसे वकीलोंका यह नित्यका अनुभव है कि दुनिया इस कटु सत्यपर ही चल रही है।’

इस पत्रको घृणासे एक तरफ फेंककर सुलभा अपने पत्रको खोज़ने लगी। वह

एक पुस्तकके नीचे दबा हुआ था। कँपित मनःस्थितिसे ही उसने लिफाफा खोला। वह मुकुन्दका पत्र था। भीतरके मज़मूनकी कल्पना आ जावे, इसलिये उसने बीचके भागपर दृष्टि डाली। मुकुन्दने लिखा था —

‘ अपना स्थान ऊँचा करनेके लिये यदि दूसरोंकी लाशोंके ढेरपर खड़ा रहना पड़ता हो, तो ऐसे स्थानको ठुकरा देना क्या इन्सानियत नहीं है ? जिन शेरोंके मुँहको खूनकी चाट लग गयी है, उन्हें गोलीसे मार देनेमें कोई भूल नहीं; फिर जिन नरपशुओंको मनुष्योंके खूनकी चाट लग गयी है उन्हें — ’

मेज़पर रखे विजयके पत्रकी ओर तिरस्कारयुक्त कटाक्ष फेंककर सुलभाने मुकुन्दका पत्र अधरोंसे लगा लिया ! जैसे कि वह प्रेमपत्र ही था !

● ● ●

करके शरसंधान

अधरोंको लगाया हुआ मुकुन्दका वह पत्र जैसे कि स्पर्श ही था उसका। अपेक्षाका आनंद और नवीनताका भय - दोनोंका कितना मधुर मिश्रण था उसमें! झटसे सुलभाने उस पत्रको पीछे छिपा लिया और आसपास देखा। कमरेमें दूसरा और कोई न था! परंतु वह खुद अपने आपसे ही शरमा गयी। सामनेके शीशेमें अपना प्रतिबिंब देखकर उसे क्षण-भर गुदगुदी हुई। तुरंत ही वह उस शीशेके सामनेसे हट गयी।

वह पत्रको शुरूसे पढ़ने लगी। 'प्रिय सुलभा' इन पहले दो शब्दोंपर ही उसकी दृष्टि गड़ गयी। मुकुन्द मुझे 'प्रिय सुलभा' लिखकर संबोधित करे? सचमुच मैं उसे प्रिय हूँ क्या? सुलभाकी मनमानी दौड़नेवाली भावनाओंकी लगामको बुद्धि हमेशा खींचकर रखती थी। इस समय भी यही हुआ। 'प्रिय' शब्दकी मधुर सुगंधि उसके एक मनमें छा ही रही थी, तभी दूसरा मन धीरेसे बोला - 'आज कल 'सप्रेम नमस्ते' आदि कोई नहीं लिखता। अंग्रेजी पद्धतिके अनुसार सब लोग आरंभमें प्रिय ही लिखा करते हैं।' इस दूसरे मनकी बात कोई झूट न थी, परंतु सुलभाको किसी भी तरह वह पसंद न आयी। क्या, मुकुन्दने यह संबोधन केवल व्यवहारके नाते ही लिखा होगा? इन शब्दोंको लिखनेके बाद क्या

उसकी भी दृष्टि मेरी तरह उनपर स्थिर हो कर हँसी न होगी ? इस प्रश्नका उत्तर देना स्वयं उसे ही कठिन लगने लगा । उसे लगा — मुकुन्द यानी कभी भी हल न होनेवाली पहेली है ।

हाथमें रखे पत्रने जैसे उससे कहा — मुकुन्दकी ही बात क्यों कहती है ? तू भी तो एक कभी भी हल न होनेवाली पहेली ही है । दुनियामें किसीको भी यह सच न लगेगा कि तू एक मामूली शब्दपर इतनी मोहित हो जायेगी ! अपने आसपासकी दुनियाके प्रणयकी ओर तू कितनी उदासीन वृत्तिसे देखती आयी है ! कॉलेजकी तेरी एक सहेलीने अपने प्रेम-पत्र मुझे दिखाये थे । उस समय कितनी तुच्छतासे तूने उन पत्रोंको उसे लौटा दिया था ! तुझे बचपनसे इस बातपर गर्व रहा है कि तेरे पिताजी तात्यासाहब, बकील होकर भी बड़े नेक और नीतिमान हैं । तात्यासाहबने दूसरा विवाह नहीं किया । समूचे शिर्गोवमें उनके शीलके बारेमें कभी किसीने कोई शंका नहीं की । ये बातें तूने कितने ही बार बड़े अभिमानसे कहीं हैं । तुझे हमेशा यही लगता आया है कि प्रणय दुर्बल मनका एक विकार है । प्रेम-गीतोंको तू झूठ समझती थी, तेरी धारणा थी कि प्रणयकी कहानियाँ आलसी और विलासी लोगोंकी गप्पें हैं । तेरे द्वारा किये गये इस उपहाससे क्रुद्ध हुई प्रणयदेवी तेरी इन सब लीलाओंको हँसती हुई देख रही थी । वह तुझपर कभी नाराज़ न हुई । उसे पूरा विश्वास था कि ऐसा व्यक्ति, जिसके जीवनमें उसकी पूजाका मंगल क्षण नहीं आता, अभीतक पैदा ही नहीं हुआ है । तेरे जीवनका वह क्षण अब —

नींदसे जागकर कोई अधखुली आँखोंसे देखे, इस तरह सुलभाने हाथमें रखे पत्रको देखो । पढ़नेकी उत्कट इच्छा होती हुए भी, उसको पढ़नेकी उसे हिम्मत न पड़ती थी । उसे लगा — मेरे मनके भीठे सपने मुकुन्दके एक वाक्यसे ही टूट जायेंगे । शायद मनोहरके बारेमें उसने कुछ भलाबुरा लिखा होगा तो ? कुहरसे ढकी हुई सृष्टिकी सुंदरता जिस तरह अधिक आकर्षक प्रतीत होती है, उस तरह अपनी कल्पनाके मुकुन्दके चिंतनमें खो जाना ही उसे अधिक अच्छा लग रहा था ।

स्वप्न देखनेवाले मनकी इस मोहिनीको दूर करके, उसने फिर पत्रकी मध्य-भागकी ओर दृष्टि मोड़ी । कुछ समयके पहले पढ़े हुए ही वाक्य फिरसे उसे दिखायी दिये : ‘ अपना स्थान ऊँचा करनेके लिये यदि दूसरोंकी लाशोंके ढेरपर खड़ा रहना पड़ता हो, तो ऐसे स्थानको ठुकरा देना क्या इन्सानियत नहीं है ?

जिन शेरोंके मुँहको खूनकी चाट लग गयी है, उन्हें गोलीसे मार देनेमें कोई भूल नहीं; फिर जिन नरपशुओंको मनुष्यके खूनकी चाट लग गयी है उन्हें —'

पत्र हाथमें लिये वह खिड़कीके पास गयी। गरमीके दिन थे। इसलिये बाहर अभीतक मंद संधिप्रकाश कुछ खोजता हुआ-सा दिखायी दे रहा था। सड़क-पर आने जानेवाले लोगोंकी आवाज ही लगातार शुरू थी। बीचहीमें किसी तरुणकी उच्च स्वरकी बातें अथवा किसी तरुणीका स्वच्छंद हास्य कानोंको आनंद दे जाता था। चलनेकी फुर्ति, संभाषणकी किलकिलाहट, बीचहीमें किसीकी उँगली पकड़-कर चलनेवाली किसी छोटी बालिकाकी मूर्तिका मनोहारी टाट, यह सब देखकर और सुनकर सुलभाके मनमें विचार आया — मुकुन्द कहीं पागल तो नहीं हो गया है? मनुष्यके खूनका स्वाद पाये हुए लोग दुनियामें कितने हैं? उसे यह क्यों लगता है कि नाटक और उपन्यासोंके भड़कीले रंगोंसे रंग हुए दुष्ट लोगोंकी अपेक्षा भी दुनियाके लोग दुष्ट होते हैं? कहीं यह मानसिक विकृति तो नहीं है? उसकी होशियारीको शोभा देने योग्य स्थान उसे समाजमें न मिलनेके कारण, वह समाज-परका अपना क्रोध इस रीतिसे प्रकट कर रहा होगा क्या?

इस विचारके मनमें आते ही सुलभाको क्षण-भर अपने आपपर ही क्रोध हो आया। बंबईमें मुकुन्दकी भेट होनेके बादसे आजतक इस दृष्टिसे उसने उसकी ओर कभी भी न देखा था। उसे लगा — भावनाके वेगमें वह जानेके कारण, मुझसे कहीं नीचेकी सीढ़ीपर खड़े हुए मनुष्यकी ओर, मैं आकर्षित हो गयी। इस तरह सँतुलन खो देना मेरे जीवनकी दृष्टिसे उचित है क्या? बचपनकी स्मृतियाँ जादूगरकी तरह होती हैं। वे क्षणार्धमें नयी अद्भुतरम्य सृष्टिों निर्माण कर देती हैं। इस जगमें भेदभाव नहीं होता, और राव रंक नहीं होते। मुकुन्दकी मुलाकात होते ही मैं उस जगमें चली गयी, स्वयं अपने आपको बिल्कुल भूल गयी। बचपनके स्नेहकी दृष्टिसे वह उचित भी होगा, परंतु प्रौढ़ जीवन, स्वप्नोंपर नहीं तैर सकता। उसे प्रत्यक्षके आधारकी ज़रूरत होती है। मेरे जीवनमें मुकुन्दका इस-तरहका आधार —

गरम लूके साथ ही फूलोंकी मीठी सुगंध आ जावे, उसी तरह मुकुन्दकी दरिद्रताके साथ ही उसकी बुद्धि भी उसके मनःचक्षुके सामने खड़ी हो गयी। फिल्मके किसी चमत्कारकी तरह ये दोनों ही क्षणार्धमें लुप्त हो गयीं और उनके स्थानपर

मुकुन्दकी मूर्ति आकर खड़ी हो गयी। छरहरा बदन, साँवली सूरत, परंतु आँखें कितनी तीव्र और तेजस्वी ! मानो अँधेरी रातमें चमकनेवाले शुक्र और मंगल हों !

यह बात न थी कि सुलभाको काव्यसे कोई बड़ी रुचि रही हो। उसने अपनी एक सहेलीसे, जिसपर कविता बनानेका पागलपन बुरी तरह सवार हो गया था, एक बार शरारतसे यह तक कहा था कि कविता बनानेकी अपेक्षा रसोई बनाते बनना जीवनकी दृष्टिसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। परंतु बसंतकी आहट पाते ही सूखे दीखनेवाले पेड़-पौधोंपर पल्लवोंके रोमांच खड़े हो जाते हैं न ? मनुष्योंकी भी वही दशा होती है। वे काव्यका कितना भी उपहास करें, विडम्बना करें, फिर भी अन्तमें काव्यमें निमग्न हो जानेके सिवा, उन्हें कोई चारा ही नहीं रहता !

पहले सुलभा भी यह न कह सकती थी कि उसने मुकुन्दकी आँखोंकी शुक्र और मंगलसे क्यों तुलना की। परंतु इस तुलनाकी मोहिनीने उसपर जादू कर दिया और फिर ज़रूर उसे लगा - उसकी वह विलक्षण रीतिसे जगकी ओर देखनेकी दृष्टि दूसरी है और मेरी ओर देखनेकी दृष्टि दूसरी है ! वरना उसके प्रति इतना विलक्षण आकर्षण मुझे कभी लगता ही नहीं। मुकुन्द एक नहीं, मुकुन्द दो हैं। उसने उस दिन यह कितने मजेदार ढंगसे कहा था कि, 'यदि अलाउद्दिनका चिराग़ मेरे हाथ आ जाये तो उसके घिसनेपर राक्षसके प्रकट होते ही मैं अपना राजमहल बनानेका आदेश दूँगा !' परंतु तुरंत ही हज़रत यह भी कह गये कि, 'उस राजमहलमें रानीकी ज़रूरत नहीं। वह राजमहल कब गायब हो जावेगा इसका कोई ठिकाना नहीं। इसलिये उसमें मैं और वह राक्षस - दोनों ही रहेंगे।' ऐसे व्यक्तिके मनको कोई पहचाने तो पहचाने भी कैसे ? प्रोफ़ेसर गरुडके शामके वाक्यकी उसे एकदम याद हो आयी - 'क्या स्त्रियोंमें और क्या पुरुषोंमें, लौकिक और अलौकिक ये दो भेद करना ही चाहिए।' मुकुन्द अलौकिक होनेके कारण ही क्या मैं उसके मनकी थाह नहीं पा सकती ?

और मुकुन्द अलौकिक हुआ तो मैं—? मैंने ऐसी कौनसी अलौकिक बात कर दी है। एक धनी वकीलके घर, मैं सौभाग्यसे पैदा हुई। डॉक्टरनी हो जाना कोई बड़ा विक्रम नहीं है ! मुकुन्दने बचपनमें, यदि मेरे मनमें इस महत्वाकांक्षाकी चिनगारीको प्रज्वलित न किया होता, तो डॉक्टरनी बननेका ध्येय मेरी दृष्टिके सम्मुख खड़ा होता भी या नहीं, इसका मुझे शक ही है ! अलौकिक होनेके लिये

मनुष्यके पास क्या चाहिए ? धन ? छिः ! सिर्फ़ अमीरी तालाबके संचित पानीकी तरह है ! विद्वत्ता ? सिर्फ़ विद्वत्ता पोले ढोलकी तरह है ! बड़ी आवाज़को छोड़कर दुनियाके वह किस कामका ? यश ? बेचारी मौसीजीके नामको पास-पड़ोसकी स्त्रियाँ भी न जानती होंगी । परंतु मुझे हमेशा यह लगता है कि मौसीजीमें कुछ न कुछ विशेषता अवश्य है । उसकी गोदमें सिर रख देनेसे मनको दंश करनेवाले सारे बिच्छू गायब हो जाते हैं ! मुझमें विलक्षण ऐसी कौनसी बात है ? सौंदर्य ? केशरके सौंदर्यके आगे मेरा रूप थोड़े ही टिक सकता है ?

यह महसूस होते ही कि मैं बिल्कुल सामान्य हूँ, उसका मन असहाय हो गया । मुकुंदका चरित्र उसकी नज़रोंके सामने खड़ा हो गया । उसने कहा था — ‘मैं बंबई आया था एक बड़ी महत्वाकांक्षाको हृदयमें लेकर ! आइ. सी. एस.में जाऊँगा, कम-से-कम एक बड़ा डॉक्टर बनूँगा, बँगलेमें रहूँगा और कारमें घूमूँगा—मेरे ये सुख-सपने थे ! परंतु बंबईमें मैंने अनेक मनुष्योंके जीवनके ग्रंथ देखे । उनके पन्नों पन्नोंपर भरे हुए दुःखोंको देखकर कॉलेजकी निर्जीव पुस्तकोंपरसे मेरा ध्यान उड़ गया !’ मुकुंद मोटी तनखाहवाला कमज़ोर भद्र पुरुष नहीं हुआ, पर वह विशाल हृदयका दृढ़ मनुष्य बना । और मैं ? त्यागकी शक्ति ही मनुष्यकी अलौकिकता है ! वह मुकुंदमें है और मुझमें —

पत्रके आरंभका ‘प्रिय सुलभा’ संबोधन पढ़कर उसे लगा था—जैसे मैं और मुकुंद दोनों बिल्कुल नज़दीक नज़दीक आ गये हैं; परंतु जब उसे उसका कराचीका जीवन, उसके द्वारा की गयी हड़तालें, कराचीके भीतर जानेकी मनाहीका उसपर लगा सरकारी हुक्म आदिकी याद आयी, तो उसे यह आभास हुआ कि हम दोनोंके बीच एक बड़ी घाटी फैली हुई है । एक मुकुंद भले ही मेरे पास हो, परंतु दूसरा मुझसे कितना दूर, कितना ऊँचा है ! इनमें कौनसा मुकुंद सच्चा है ? पासका या दूरका ?

प्रोफ़ेसर गरुडने यह भी तो कहा था कि ‘अलौकिकको समताका ग्रंथन न होना चाहिए !’ इसका क्या मतलब ? मुकुंदकी नोट-बुकका वह क्या वाक्य : ‘स्त्रीका पहला स्पर्श कितना उन्मादक होता है !’ जिस मुकुंदकी, अलौकिक पुरुष मानकर, मैं पूजा करूँगी, वह मुकुंद सहजहीमें मोहके वशीभूत हो जानेवाला साधारण मनुष्य ही निकल गया तो ?

बवंडरमें पके हुए पत्ते अपने आप चक्कर खाते हुए घूमते रहते हैं, उस तरह

सुलभाके मनमें ये सभी विचार उलटे-सीधे घूमने लगें । मनका पूरा निश्चय करके वह मेज़की ओर गयी और पत्र पढ़ने लगी :

‘प्रिय सुलभा,

तुम्हारे बिलकुल पीछे पीछे ही इस पत्रको आया देखकर तुम्हें आश्चर्य होगा । तुमने मुझे ट्यूशन लगा दी है । इसलिये डाकके टिकटोंपर थोड़ी फिज़लखर्ची कर दूँ तो कुछ हज़ नहीं !

मनोहरके बारेमें तुम कुछ भी चिन्ता न करो । तुम्हारी तरह वह मेरा भी भाई है । बेचारेकी बचपनमें घुटन हो गयी । परिस्थितिके विरुद्ध विरोध करनेकी शक्ति हरएकमें होती ही है, यह बात नहीं । और दुर्बलता तो जगके सारे दुःखोंका उद्गमस्थान है । रह-रहकर मुझे तुम्हारे पिताजीपर आश्चर्य होता है । ऐसा मादूम होता है कि उन्होंने मनोहरके सज्जन स्वभाव और उसकी संगीतकी रुचिका भी ख्याल ही नहीं किया । जहाँ स्वयं अपने बच्चेके कल्याणके लिये यह श्रद्धा है, वहाँ दुनियाकी फिक्र कौन करेगा ! शायद तुम्हें बुरा लगगा । पर लिख ही देता हूँ ! मनोहरपर शिरगाँवके वैश्याकी हत्या करनेका अभियोग है सिर्फ़ । पर मैं कहता हूँ, कि तात्यामाहवने लड़केका खून किया है ! मनोहरका ज़िंदा रहना यानी जीवित रहते हुए मृत्यु ही नहीं है क्या ? उसके पास इतना सबूत नहीं कि खूनका गुनाह हट जावे, दूर कहीं जावे तो मन केशरकी तरफ़ खींचता है, और उसके माँ-बाप उसे दूर भेजनेके लिये तैयार होंगे या नहीं, इसका शक ही है ! बंबईमें रहे, तो उस पठानका डर खाये जाता है ! मुझे यह सब तुम्हें नहीं लिखना चाहिए था । कुछ भी हो, आखिर हो तो तुम मनोहरकी ही बहन ! व्यर्थका भय पाल लोगी अपने मनमें । हाँ, कराचीकी हड़तालके बादसे मार-पीटकी विद्यामें मैं निष्णात हो गया हूँ । वैसा कोई मौक़ा ही आ गया तो उस पठानको ‘चार मुष्टिमोदक’ चखाये बग़ैर न रहूँगा । वैसे बेचारेको हिंदू पद्धतिसे बना हुआ पकवान खानेको कहाँसे मिलेगा ?

खैर छोड़ो इन बातोंको । यह तो तुम भी स्वीकार करोगी कि तात्या-साहवने मनोहरपर जो हुक्म चलायी वह गलत है । सुलभा, मालिकी हक्का यह मूल सिरपर सवार होनेके कारण बाप लड़केसे, और पति पत्नीसे गुलामकी तरह बर्ताव करने लगता है । संस्कृति, शिक्षा और धनका जिसे

पैतृक अधिकार मिला है उस वर्गमें हर घड़ी ऐसे हज़ारों उदाहरण मिलते हैं ! जो लोग अपने लड़कों और स्त्रियोंको भी गुलाम बनानेमें कच्ची नहीं खाते, वे दलित वर्गकी गुलामीकी जंजीरोंको खुद होकर तोड़नेके लिये क्या कभी भी तैयार होंगे ? यह गुलामी, सुलभा, तुम्हारे ध्यानमें भी न आती होगी ! अस्पतालमें काम करते हुए गंदे रोगसे ग्रसित हुई किसी दलित वर्गकी स्त्रीको देखकर, बहुत हुआ तो भूतदयासे प्रेरित होकर, तुमने उसका इलाज किया होगा; परंतु वह इलाज करते समय तुम्हारे मनमें उसके प्रति तिरस्कारकी भावना उत्पन्न हुए बिना न रही होगी ! सचमुच उस पापकी ज़िम्मेवारी उसपर लादना उचित होगा क्या ? किम विकट परिस्थितिमें, किम पशुको उसने अपना शरीर बेचा होगा, इसकी कल्पना दूसरोंको कैसे हो सकती है ? यह बात नहीं है कि गरीबीमें गुण न होते हों । कभी कभी अमीरोंसे भी अधिक होते हैं । परंतु आजकलके स्पर्धाके जगमें गरीबोंके गुणोंका बात-की-बातमें चकनाचूर हो जाता है ।

आजका जग ऐसा भयंकर है । अपना स्थान ऊँचा करनेके लिये यदि दूसरोंकी लाशोंके ढेरपर खड़ा रहना पड़ना हो, तो ऐसे स्थानको टुकरा देना क्या इन्सानियत नहीं है ? जिन शेरोंके मुँहको खूनकी चाट लग गयी है, उन्हें गोलीसे मार देनेमें कोई भूल नहीं; फिर जिन नरपशुओंको मनुष्यके खूनकी चाट लग गयी है उन्हें—

मनोहरको कुशल समाचार देनेके इरादेसे, मैं यह पत्र लिखने बैठा था; परंतु कथावाचककी कथा आखिर अपने ध्रुपदपर ही आ जाती है, सो आ ही गयी ! मुझसे किसी भी तरह चुप नहीं रहा जाता ! सुलभा, हम जैसे करोड़ों लोग अंध देवधर्मके और राक्षसी भाईबंदोंके गुलाम होकर, कीड़े-मकोड़ोंकी तरह ज़िंदगी बसर कर रहे हैं । उनके लिये हमें कुछ न कुछ नहीं करना चाहिए क्या ?

मेरा आगामी पत्र पढ़नेके लिये तुम पहलेसे ही न ऊँच जाओ, इसलिये यहीं रुकता हूँ । लेकिन इतने सालोंके बाद मिले हुए अपने बालमित्रकी, अत्यंत आवश्यक चीज़को चुराकर ले जानेवाली मित्रानीको, क्या कहा जाय, यह अवश्य एक प्रश्न ही खड़ा हो गया है मेरे सामने । पहचान लोगी क्या उस चीज़को ? उपन्यासोंको पढ़नेवाली कोई कॉलेजकुमारी मेरे प्रश्नका

उत्तर देगी — ‘हृदय’ ! पर तुम डॉक्टरनी हो, इसलिये — छोड़ो भी ! मैं ही कहे देता हूँ ! नींद । तुम्हारे चले जानेके बाद, बचपनकी इतनी स्मृतियाँ मनमें चक्कर काटने लगों, कि कहते नहीं बनता । जब मैं कराचीमें था, तब एक दिन मुझे लगातार तुम्हारी याद आ रही थी । परंतु दूसरे दिन हड़तालकी गड़बड़ीमें जो मैं तुम्हें भूल गया, तो उस दिन रेलगाड़ीमें तुम्हारी अचानक भेट होतेतक । अब तुम्हारी याद नहीं भूलेगी । परंतु कुछ भी कहो और वापसी डाकसे मेरी नींद भेज दो ! मौसीजीको अनेक प्रणाम, और उनसे कहना मैंने उनकी खूब खूब याद की है ।

तुम्हारा —
मुकुन्द’

मंद चाँदनी अंधकारको दूर न करे, फिर भी गृष्टिको जिस तरह प्रसन्नता प्राप्त हो जाती है, उस तरह इस पत्रसे सुलभाके मनकी स्थिति हो गयी । केशर शिरगाँव गयी अथवा नहीं, यह मुकुन्दने जानबूझकर ही न लिखा था या कि उसे लिखनेको भूल गया था, यह उसकी समझमें न आता था । परंतु मनोहरके विषयकी उसकी चिंता ज़रूर दूर हो गयी ।

इसके कारण भोजन करते समय उसकी निद्रा दोपहरसे अधिक प्रसन्न दीख रही थी । परंतु मौसीजी झटसे ताड़ गयी कि खानेमें उसका ध्यान नहीं है । वे बोलीं, — ‘तेरी पसंदका ‘सार’ बनाया है । फिर भी तूने खाना ठीक तरहसे नहीं खाया !’

सुलभा सिर्फ हँसी । उसकी खामोशीका तात्यासाहबको भी तबज्जुब हुआ । प्रत्युत्तर दिये बिना चुप बैठनेवाली लड़की नहीं थी वह !

मौसीजीने मज़ाकमें कहा, — ‘आजकलकी लड़कियोंकी बात ही छोड़िये । उनके पेट पत्र पढ़कर ही भर जाते हैं !’

‘किसका पत्र आया है आज ?’ — तात्यासाहबने प्रश्न किया ।

‘बंबईकी एक सहेलीका !’

‘क्या कहती है वह ?’

‘एक केस मैं उसके पास दे आयी थी । उसने लिखा है — सब ठीक है, कोई चिंता न करो ।’

‘इसमें चिंता करनेकी क्या ज़रूरत है ? यदि किसी खूनीका वकालतनामा

हमने ले लिया, तो इसलिये घरमें हम उसकी चिंता करते नहीं बैठे रहते कभी ! है कि नहीं, विजय ?'

विजय बाहरी रूपसे हँसा; परंतु उसने सुलभाकी ओर इस दृष्टिसे देखा जिससे वह झटसे यह महसूस कर ले कि मैं झूठ बोली हूँ ! उसका मन कह रहा था — 'सहेली-वहेली सब झूठ बात है ! उस मुकुंदका ही पत्र आया होगा इसे ।'

विजयकी ओर ध्यान न देते हुए सुलभा उठकर चल दी । अपने कमरेमें कदम रखते ही उसे एकदम हरे चंपाकी खुशबू आयी । तुरंत उसके ध्यानमें आ गया कि मौसीजीने चंपाके फूल मँगवाकर मेरे कमरेमें रख दिये होंगे । उसे लगा — मौसीका मुझपर जो स्नेह है, वह कितना अलौकिक है ! बिना कहे सुने मौसी मुझे सुखी रखनेका कितना प्रयास करती हैं ! किसने पढ़ाया उन्हें इतना प्यार करनेके लिये ? परंतु प्रेम क्या ऐसी कोई तोतारटन्त विद्या है जो पढ़कर आ जावे ?

इन विचारोंमें खोये हुए ही सुलभाको नींद आ गयी । एक विचित्र स्वप्नमें वह तल्लीन हो गयी । बचपनमें पढ़े हुए शाप-संभ्रम नाटकमें वह महाश्वेताका पार्ट कर रही थी । उसे यह पता ही न था कि पुंडरीक कौन बननेवाला है । परंतु सुंदर ऋषिकुमारके रूपमें मुकुंद आकर उसके सामने खड़ा हो गया । तब उसके आश्चर्यकी सीमा न रही ।

‘सज्ज करुनि चाप मदन येत मागुनी ।

मार्ग दावि इंदु मला तम निवारुनी ।’^१

— यह मधुर गीत उसके कानोंमें गूँज रहा था, तभी द्वारकी घंटी बजी । चौँककर जागी हुई सुलभाने दरवाज़ा खोला । दरवाज़ेके सामने तारवाला खड़ा था । उसने नाम लिया —

‘विजय देशपांडे !’

● ● ●

१ ‘शरसंधान करके कामदेव पीछेसे आ रहा है ।

हे चन्द्रमा, अंधेरा दूर करके मुझे मार्ग दिखाओ ।’

१४

ध्रुव और तार

सुलभा तर्क नहीं कर सकी कि विजयको तार किसने भेजा होगा। यदि यह कहा जाये कि उसके घरमें कोई वीमार होगा, तो ले देकर उसके घरमें एक ही व्यक्ति था। वह उसकी दूरका मौसी या बुआ थी! अपना पेट भरनेके लिये उसने विजयका आश्रय लिया था। परंतु या तो विजयके छुटने स्वभावके कारण हो अथवा उस स्त्रीमें ही भावुकताका अभाव होनेके कारण हो, दूसरे मनुष्यको यह सहजमें मालूम हो जाता था कि इस घरमें उसका कोई हक नहीं है। लेकिन वह अगर मर भी रही होगी, फिर भी विजयको तार करनेकी उसे हिम्मत न पड़ती।

तारके बारेमें इसी तरहके कुछ विचारोंको दिलमें घुमाते हुए ही सुलभाने दस्तखत करके वह तार ले लिया। तारवाला चला गया। यह स्पष्ट ही था कि तार जरूरी है। जीना चढ़ते हुए उसे आश्चर्य हुआ कि घंटीकी आवाज़से और कोई क्यों नहीं जागा। तुरंत ही उसके ध्यानमें आया—तात्यासाहब और विजय बहुत राततक बातें करते रहे होंगे। हालहीमें उनकी आँखें लगी होंगी। पहले प्रेमकी तरह पहली नींद भी गहरी ही होती है; होती है न ?

अपने मनकी इस मनमानी कल्पनापर स्वयं उसे ही हँसी आ गयी। वह हँसी जैसे आयी, वैसे चली गयी और उसके मनमें आया—‘तात्यासाहब विजयसे

लगातार आखिर किस विषयपर इतनी बातें करते हैं ? जर्ज और मुकद्दमोंकी वही बासी बातें, वैभव और बड़प्पनके वही वही मनोराज — इनके परे विजय कभी जाता ही नहीं है ! उसकी सारी अहंकारकी नुमाइश ही होती है । तात्यासाहब जैसे बुजुर्गको इस नुमाइशको देखनेमें इतना मज़ा क्यों आना चाहिए ? वे उसकी बातोंमें एक बच्चेकी तरह रम कैसे जाते हैं ? वैसे देखा जाय तो तात्या जैसे वृद्ध मनुष्यको तत्त्वज्ञान अधिक पसंद होना चाहिए; परंतु मुकुन्द सरीखे नवजवान तत्त्वज्ञानका पिष्टपेष्टण करें और जीवनका पूर्ण अनुभव जिन्हें हो गया है वे बूढ़े —

विजयके कमरेके पास वह आ गयी थी । अधिक विचार करना अब असंभव था । उसने दरवाज़ेको धीरेसे खोलकर देखा । वह सिर्फ़ भेड़ा हुआ था । भीतर जाकर उसने स्विच 'ऑन' किया । तुरंत कमरा प्रकाशसे जगमगा उठा । माखूम नहीं, नींदमें भी प्रकाशको महसूस करके या किस वजहसे, विजयने अपने हाथ और गरदनकी थोड़ी हलचल की । परंतु उसने आँखें नहीं खोली थीं । सुलभा उसके पलंगके पास जाकर खड़ी हो गयी । उसने धीरेसे पुकारा, — 'विजय !'

आँखें न खोलते हुए विजय हँसा । जैसे नशेमें हो वह पुटपुटाया, — 'सुलभा !'

सुलभाको लगा कि वह मज़ाकमें नींदका ढांग कर रहा है । कुछ क्षण वह स्तब्ध रही । पर विजयने आँखें न खोलीं । उसने ज़रा जोरसे फिर पुकारा ।

अब विजय जाग गया । उसने आँखें खोलीं । परंतु क्षण-भर उसे अपनी आँखोंपर विश्वास न होता था । परंतु दूसरे ही क्षण वह उठकर बैठ गया और बोला, — 'मनुष्यके सभी स्वप्न इस तरह सच हो जायें —'

सुलभाको उसकी बात ठीक तरहसे समझमें न आयी । उसके भी ध्यानमें यह बात आ गयी । हँसते हँसते वह बोला, — 'मेरे सपनेमें अभी तुम्हीं आयी थी । परंतु इस तरह गंभीर मुद्रासे नहीं —'

'तार आया है तुम्हारा !'

विजयने शान्तिपूर्वक तारका लिफाफा हाथमें लिया । उसे खोलते हुए वह बोला, — 'दूसरेकी ज़मीन या घरमें बिना इज़ाज़तके अगर कोई प्रवेश करे, तो कानूनमें उसके लिये सज़ा है; परंतु दूसरेके मनमें या स्वप्नमें प्रवेश करनेवाले मनुष्यको —'

सुलभाको मुकुन्दके आजके पत्रके शब्दोंका स्मरण हो आया — 'इतने सालोंके बाद मिले हुए अपने बाल-भित्रकी, अत्यंत आवश्यक चीज़को चुरा ले जानेवाली ह. चं. १०'

मित्रानीको क्या कहा जाय, यह अवश्य एक प्रश्न ही खड़ा हो गया है मेरे सामने ! वापसी डाकसे मेरी नींद भेज दो ।’

विजय तार खोलकर पढ़ रहा था । उसे किसी प्रकारका संकोच न हो इसलिये सुलभा सहजभावसे उसकी मेज़के पास चली गयी । उस मेज़पर बंबईसे लायी हुई अनेक चीज़ें रखी हुई थीं । परंतु उसका ध्यान तुरंत आकर्षित कर लिया एक फोटोने । विजय और पुष्पाका फोटो था वह । बंबईमें उन्होंने उसे कब खिंचवा लिया था, कौन जाने ! उस फोटोको देखते ही सुलभाको लगा कि चुपचाप कमरेसे चल दूँ । अभीका सपना और वह फोटो — क्या, विजय यही समझता है कि स्त्री पुरुषका खिलौना है ?

शिष्टाचारके लिये उसने रूखे स्वरसे पूछा,—‘क्या है तारमें ?’

‘बड़ी खुशीकी खबर है !’

‘कोई केस जीत गया शायद !’—कुछ तो पूछना ही था, इसलिये सुलभाने प्रश्न किया । तुरंत ही उसे स्वयं एकदम बोध हुआ कि आजकल अदालतोंको गरमीको छुट्टी है ।

‘केस हार गये !’—विजयका यह उत्तर सुनकर ज़रूर वह चकित हो गयी ।

‘मतलब ?’

‘यह मेरा केस न था, समझी ! डॉक्टरका केस था !’ उसके द्वारा दिया गया तार सुलभाने पढ़कर देखा । ‘रावसाहब सख्त बीमार हैं । दूसरा तार मिलते ही चले आओ !’ इतना मज़मून था उसमें । वह पहले ही क्षण यह न समझ सकी कि किसी आदमीका सख्त बीमार होना खुशीकी खबर किसतरह होगी ! फिर सब बातें उसे याद आ गयीं । रावसाहब यानी उस ज़मींदारीके मालिक ! वे सख्त बीमार हैं । उनका स्वर्गवास हुआ कि वह ज़मींदारी विजयको मिल जायेगी !

व्यवसायके निमित्त देखी हुई सब मौतें उसे याद हो अयीं । मानव-जातिकी सारी दुर्बलता उस समय स्पष्ट रूपसे दिखायी देती है । मौत ! उसकी केवल कल्पनासे ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं । परंतु वही मौत आज विजयको अपने मित्र-की तरह लग रही है ।

वह सुन्न होकर खड़ी रही । इसी समय मुँहके मुँहमें ही सीटी बजा रहे हुए विजयने कहा,—‘अब कहाँ नींद आने चली ? बस ! चलो कहीं घूम आवें !’

दुखकी तरह आनंद भी मनुष्यको पागल कर देता है। विजयकी बातें और बर्ताव सुलभाको उसी तरह लगा। सुलभाको स्तब्ध खड़ी हुई देखकर, वह बोला,— ‘स्त्रियोंको बाहर जानेके लिये तैयार होनेमें बड़ी देर लगती है! यदि सिनेमाका पहला शो देखनेको जानेकी तैयारी करनेके लिये वे शीशेके मामने खड़ी हो गयीं, तो दूसरा शो देखनेको मिल जानेकी थोड़ी बहुत संभावना होती है।’

‘आप खुशीसे जाइए बाहर घूमने इतनी रातको! मैं नहीं निकलूँगी बाहर अब!’—यह उत्तर सुलभाकी बिलकुल जीभपर आ गया था! परंतु जीभको दुनियामें स्वतंत्रता कहाँ है! जहाँ तहाँ अपने ही दाँत उसे काटते हैं और अपने ही हाँठ उसे रोकते हैं।

मोहिनी मंत्रका प्रयोग उसने देखा था। उसने बचपनमें सेंपरेको अपनी बीनके स्वरपर नागिनको भी झूम झूमकर डुलवाते हुए देखा था। उसे भ्रम हुआ कि मेरी भी दशा इसी तरह हो रही है। विजयके साथ वह कमरेके बाहर आयी। लेकिन सीढ़िया उतरते उतरते वह एकदम बोली,—‘ज़रा ठहरना; मौसीजीसे पूछ आती हूँ।’

विजय सिर्फ़ हँसा। उसका हाम्य जैसे कह रहा था—गौतमी बुआके इतनी कड़ी नज़र रखते हुए भी भोली-भाली शकुन्तलाने बात-की-बातमें उसकी आँखोंमें धूल झाँक दी। प्रणयको धोखा देना कभी सिखाना नहीं पड़ता। बीसवीं सदीमें बड़ी हुई, इतनी बड़ी डॉक्टरनी बनी हुई यह तरुणी शकुन्तलासे भी अधिक भोलेपनका टाट बना रही है! क्या, कोई उसके धोखेमें आ जायेगा? एक अर्थसे देखा जाये, तो कहना चाहिए कि यह ठीक भी है! प्रणय भी एक लेनदेन ही है। यह तो प्रत्येकका अनुभव है कि सौदेबाज़ीमें जितना तानकट रखा जाय उतनी ही हमारी कीमत भी बढ़ती है।’

उसकी हँसीके इस मतलबका ज़रूर सुलभाको पता न चला। उसे लगा—यह देखकर कि मुझ जैसी बड़ी लड़की जेठे-बड़ोंसे इज़ाज़त लेनेकी शृंखलामें पड़े, उसे बड़ा अजीब-सा लगा होगा। सफरमें, सिनेमामें और घूमने, मैं विजयके साथ पहले कितने ही बार अकेली गयी हूँ। इसलिये ही उसे मेरे शब्दोंपर हँसी आयी होगी।

विजय बाहर ड्राइवरको बुलानेके लिये गया।

मौसीजी अभीतक देवघरमें ही थीं। उस तरफ़ सुलभा सुड़ी। उसके मनको

लग रहा था - बड़ा अच्छा हो यदि मौसीजी मुझसे कह दें 'न जा' ! देवघरके द्वारके पास खड़ी होकर सुलभाने झाँककर भीतर देखा। मौसीजी भगवानके सामने बैठी हुई एक अभंग (पद) धीरे धीरे गुनगुना रही थीं। बचपनसे कितनी ही बार वह उसने मौसीजीके मुँहसे सुना था।

‘तू माझी माऊली
मी वो तुझा तान्हा
पाजी प्रेम पान्हा माझे आई
तू माझी माऊली
मी तुझे वांसरू
नको पान्हा चोरू माझे आई
तू माझी हरिणी
मी तुझे पाडस
तोडी भवपाश माझे आई
तू माझी पक्षिणी
मी तुझे अंडज
चारा घाली मज माझे आई — ’^१

१ ‘तुम मेरी माता हो।
मैं तेरा दूध-पीता नन्हा हूँ।
मेरी माँ, मुझे प्रेमसे भर
आया हुआ अपना दूध पिला।
तू मेरी माँ है। मैं तेरा बछड़ा हूँ।
मेरी माँ, अपना दूध न रोक।
तू मेरी हरिनी है।
मैं तेरा छोना हूँ।
मेरे भवपाशोंको तोड़ दे, मेरी माँ!
तू मेरी पंछिन है।
मैं तेरा चेंडुआ हूँ।
मेरी माँ, मुझे अपनी चोंचसे चारा चुगा।’

अनेक बार सुनी हुई उन मधुर पंक्तियोंसे सुलभाके अस्वस्थ मनको एकदम शान्ति मिली। उसने अपने मन-ही-मन यह निश्चय भी कर डाला कि विजयसे सीधी जाकर कह दूँ कि मैं घूमने नहीं चलती। मौसीजीको अपनी आहट न मिले इसलिये वह दवेपाँव धीरेसे लौट रही थी। परंतु इसी समय मौसीजी अक्षय-दीपके काजलको झड़ानेके लिये उठीं। काजल झड़ा करके मुड़ीं तो उन्हें लगा जैसे द्वारमें कोई खड़ा है। अब सुलभा भाग नहीं सकती थी। मौसीजी आगे बढ़ी। सुलभाको पहचानते ही वे बोलीं,— ‘कैसे चाहती हो, बेटा?’

‘तुम्हें!’

‘मैं क्या कहीं भागकर जा रही हूँ?’

‘बूढ़े लोगोंका क्या ठिकाना? तुम्हीं कहती थीं न कि चलते फिरते ही यदि भगवान् आँखें मूँद दे तो —’

‘तेरा लड़का देखे बिना, मैं आँखें नहीं मूँदूंगी, समझी?’— बड़े प्यारसे सुलभाको अपने नज़दीक खींचते हुए मौसीजीने कहा। उनकी बूढ़ी आंखा अपने पहले ध्रुपदपर आ गयी। कितनी संकुचित; परंतु कितनी प्यारी दुनिया थी वह! मानो कि बहुत ऊँचेपर बना हुआ गरमाहटदार घोंसला ही हो!

मौसीजी नीचे बैठ गयीं। सुलभाने उनकी जंघापर अपना सिर टेक दिया। छोटा बच्चा देखता है, उस तरह वह मौसीकी ओर टकटकी लगाकर देखने लगी। मौसीको लगा— ‘लड़कीके दिलमें कुछ चुभ रहा है। धीरेसे देखना चाहिए कि वह क्या है!’

इसी समय विजय दरवाज़ेमें आकर खड़ा हो गया। वह एकदम बोला,— ‘दरखास्त मंजूर हो गयी?’

‘कैसी दरखास्त?’— मौसीजीने पूछा।

‘सुलभा एक दरखास्त लेकर आयी थी न आपके पास?’

‘उसने तो कुछ भी नहीं कहा!’

‘ज़रा ठंडी हवामें घूम आये इसलिये गाड़ी निकाली है बाहर। इससे कहा, चलो, घूम आवें! तो आपसे पूछनेके लिये आयी थी वह —’

‘अरे भैया, लड़कियोंकी जाति ही बड़ी शरमीली होती है!’

सुलभाको स्वयं अपने आपपर ही बड़ा क्रोध हो आया! वह कुछ कहना चाहती थी, इसी समय मौसीजीने कह दिया,— ‘जाओ बेटा, घूम आओ न!’

अब वह असहाय हो गयी। मौसीकी ओर उसने गुस्सेसे देखा भी। परंतु मौसीको उसका वह गुस्सा बनावटी मालूम हुआ। शायद उन्होंने यही सोचा हो कि जब सुलभाने मेरी इज़ाज़त लेनेके निमित्त मेरे बड़प्पनका सम्मान किया, तो मुझे भी उसे जानेकी इज़ाज़त देकर उसके लजीले यौवनको सम्मानित करना चाहिए !

सुलभा बोली, — ‘तुम भी चलो न हमारे साथ !’

‘वाह; यह भी खूब कही। कल कहेगी हमारे साथ फोटो भी खिंचवाओ !’

‘तो क्या तुम समझती हो कि मैं यह कहनेको छोड़ दूंगी ?’

‘उत्तम ! मैं फोटोमें बैठ जाऊँगी, तो फिर कहेगी — अब सिनेमामें काम करो !’

अब ज़रूर हँसी किसीसे भी न रोकी गयी ! इस हँसनेके आनंदमें ही सुलभा मोटरमें जाकर बैठी। उसका मन मौसीजी और मुकुन्दकी तुलना कर रहा था। ‘दुखमें भी सुखी किस तरह रहना चाहिए, और अपने दुखके बजाय दूसरोंके सुखकी ओर ध्यान कैसे देना चाहिए — यह मुकुन्दने कहाँसे सीखा ? मौसीजीने तो कम-से-कम बहुत बारिशें भी देखी थीं।’

गाड़ी स्टार्ट होते ही विजयने कहा, — ‘हम दोनों किसी मंदिरमें नहीं चल रहे हैं ?’

‘मतलब ?’

‘तुम मौसीजीको भी अपने साथ ले रही थी न, इसलिये कह रहा हूँ !’

मौसीजीके अन्तःकरणकी उदारताको विजय महसूस न करे, इसपर सुलभा झल्ला उठी। वह ज़रा अकड़कर ही बोली, — ‘मौसी जैसी स्नेहमयी दुनियाभरमें खोजनेसे भी न मिलेगी !’

‘इससे किसे इन्कार है। परंतु जो मनुष्य जहाँके लायक है, उसे वहीं रहना चाहिए !’

सुलभा खामोश बैठी रही। विजयने झाँवरसे शायद यह पहले ही कह दिया होगा कि मोटर किन रास्तोंसे और कहाँ जायेगी। चारों तरफ़ अँधेरा छाया हुआ था। मोटरके दीयोंके प्रकाशमें पेड़, पौधे, बँगले, झोपड़ियाँ आदि रेखाचित्रकी तरह दीखते और फिर लुप्त हो जाते थे। सुलभाके मनमें आया — मनुष्यके जीवनका प्रवास क्या इसी तरह नहीं है ? अँधेरेमें भी हम भागते रहते हैं। किसी आकांक्षाकी एक धुँधली-सी ज्योति अधूरा प्रकाश देती हुई आगे दौड़ती रहा,

हैं और हम पीछे पीछे हाथ-पाँव पटकते हुए और छटपटाते हुए, लगातार दौड़ते रहते हैं। इस प्रवासका मतलब क्या है, इसका हमें पता ही नहीं रहता। कितनी ही विचित्र बातें हमारे जीवनमें हो जाती हैं! मनुष्य आतं हैं और फिर चले जाते हैं। मुकुन्द और विजय! जीवन! कितनी बड़ी पहेली है यह!

सुलभाकी यह खामोशी विजयको शायद बरदाश्त न हुई होगी। मोटर गाँवके बाहर दूर निकल गयी थी। उसने उसे रोकनेको कहा। 'चलो, ज़रा थोड़ी दूर पैदल ही घूम आवें।' - उसने सुलभासे कहा।

हूँ या चूँ न कर सुलभा उतर पड़ी।

बत्तीके प्रकाशमें दोनों चलने लगे। विजय बीचहीमें बोला, - 'लगता है, मुझपर नाराज़ हो गयी हो!'

'तुमपर नाराज़ होनेका मुझे क्या अधिकार है?'

'खैर, वह अधिकार आज न हो, पर कल मिल जायेगा!'

'कलका गुस्सा आज नहीं निकाला जा सकता। बैंकमें रकम जमा ही नहीं है, फिर चेक देनेमें क्या मतलब है?'

'आज भी तुम्हें मुझपर नाराज़ होनेका हक है।'

'किस तरह?'

'मनुष्यका मनुष्यपर कोई हक ही नहीं है क्या?'

'कल ज़मींदारी पा जानेपर तो नहीं भुला दोगे इसे? हज़ारों लोग तुम्हारी तरफ़ आशा-भरी दृष्टिसे देखेंगे, तुम्हारे चरण पकड़ेंगे —'

यह देखकर कि सुलभाने संभाषणका रुख अप्रस्तुत दिशाकी ओर मोड़ दिया है, विजय मन-ही-मन क्रोधसे उबल पड़ा; परंतु उसने उसे बाहर प्रकट नहीं होने दिया। सामने ही एक पुल था। बैटरीसे इधर उधर रोशनी डालकर वह बोला, - 'आओ, हम लोग यहीं बैठें!'

सुलभा बैठ गयी और आकाशकी ओर देखने लगी। तारे किस तरह गस गये थे वहाँ! मानो चंद्रमाका स्वागत करनेके लिये रजनीने अपने महलमें बहुत देरसे फूलोंके पाँवड़े बिछा रखे थे।

विजय सुलभाका ध्यान खींचनेकी गरज़से बोला, - 'पुरुष सुंदर चंद्रिकाओंकी ओर क्यों देखते रहते हैं, यह मैं समझता हूँ। पर स्त्रियाँ —'

'स्त्रियाँ कोई यों ही नहीं देखतीं!'

‘वे चंद्रिकाओंसे ईर्ष्या करती होगी। कोई चंद्रिका यदि टूटकर नीचे गिर पड़ती होगी, तो तरुणियोंको बड़ी खुशी होती होगी, क्यों?’

‘उनका ध्यान दूसरी ओर रहता है।’

‘कहाँ? चंद्रमाकी ओर?’

‘छिः! ध्रुवकी ओर! विशाल समुद्रमें तैरनेवाले जलयानोंको वह जिस तरह धीरज देता है, उसकी वे सराहना करती हैं!’

संभाषणमें आप ही आप रुकावट पड़ गयी। कुछ समयके पहले मोटरमें बैठते समय विजयने कितने ही चंचल सुख-स्वप्न अपनी आँखोंके सामने देखे थे। मुझे आये हुए तारको सुलभाने पढ़ लिया है, वह कितनी भी बुद्धिनिष्ठ और प्रणय-पराङ्मुख हो, फिर भी जमींदारीका मोह उससे दूर नहीं किया जा सकेगा, अपनी अस्फुट प्रणययाचनाका वह अब संदिग्ध परंतु प्रिय उत्तर ही देगी, एकान्तमें मेरे स्पर्शसे कदाचित वह प्रसन्न भी हो जायेगी—इत्यादि अनेक विचार उसके मनमें गुत्थमगुत्था हो गये थे। परंतु सुलभाका इस समयका बर्ताव उसकी अपेक्षासे सर्वस्वमें असंगत था। यही नहीं, बल्कि उसके कारण स्त्रियोंके विषयमें उसकी जो कल्पनाएँ थीं, उन्हें, छोटा ही क्यों न हो, एक धक्का ही लग गया। उसका यह जैसे एक सिद्धान्त ही था कि जब पुरुष अपने पराक्रमका मंदिर बना लेता है, तो मूर्तिके रूपमें उसके भीतर पूजा करनेके लिये कोई भी रमणी हँसती हुई आगे आ जाती है! शिरगाँवमें इस सिद्धान्तके उसे अनुभव भी हुए थे! बंबईके दो दिनके मुक्ताममें पुष्पा बातकी बातमें उसके आसपास चक्कर नहीं काटने लगी थी क्या?

थोड़े ही क्षणमें वह विलक्षण शान्ति विजयको असह्य हो गयी। सुलभा किसी संगमरमरकी बनी मूर्तिकी तरह आकाशकी ओर देख रही थी।

हँसनेका प्रयत्न करते हुए विजयने उससे कहा,—‘सुलभा, एक सालके भीतर तुममें बड़ा फर्क हो गया है!’

‘मनुष्यमें फर्क होनेके लिये एक सालकी क्या ज़रूरत है? एक दिन, एक क्षण भी काफ़ी हो जाता है बहुत बार!’

‘मुझमें क्या फर्क हो गया है?’

‘मुझे कहनेकी क्या ज़रूरत है? तुम्हारी मेज़पर रखा हुआ फोटो ही तो कह रहा है!’

विजयको कुछ संतोष-सा हुआ। तो कहना चाहिए कि सुलभाकी उदासीनताका जड़में मत्सरभाव है! मनुष्यके कितने ही पढ़-लिख जानेसे उसके जन्मसिद्ध मनोविकार थोड़े ही दूर हो जाते हैं? सुलभाका मत्सर विजयको इष्टापत्ति ही मालूम हुई। प्रेमकी लतामें ही मत्सरके काँटे होते हैं। यह लता आज नहीं तो कल बिना फूले क्या रहनेवाली है? प्रेमकी भाषा आखिर दिखावटी लिपिकी तरह साकेतिक ही तो रहेगी!

सुलभाको प्रफुल्लित करनेके लिये विजय बोला,—‘डॉक्टरजीजी, क्या कविताएँ लिखने लगी हैं आजकल?’ सुलभा खामोश रही। विजय नज़दीक आया। उसकी आँखोंके अनुनयकी उसे अस्पष्ट-सी कल्पना भी आयी। परंतु वह अपनी जगहसे उठी नहीं। उसकी ओर टकटकी लगाकर देखते हुए उसने पूछा,—‘विजय, इन लाखों तारोंकी ओर देखकर क्या तुम्हें कोई भी कल्पना नहीं सूझती?’

‘तुम क्या मुझे इतना अरसिक समझती हो?’

‘तो ज़रा मैं भी तो सुनूँ तुम्हारी कविता!’

‘हर रोज़ रातको भगवान अपना भंडार खोलता है और यह देखकर कि सारे रत्न यथास्थान हैं या नहीं, फिरसे बंद कर देता है!’

‘तो कहना चाहिए कि तुम्हारा भगवान बहुत ही कंजूस है! यदि इनमेंका एकाध रत्न नीचे गिरने लगा, तो उसको पकड़नेके लिये पीछे पीछे वह भी कूद पड़ेगा!’

उसके उद्गारोंमें जो व्यंग्य था, वह विजयके ध्यानमें आये बिना न रहा। परंतु इस कल्पनासे कि मैं भी उसे लज्जित कर सकूँगा, वह बोला,—‘अच्छा, अब ज़रा तुम्हारी भी कल्पना तो सुनूँ!’

‘ये तारे मुझे फूल प्रतीत होते हैं!’

‘यह तो बहुत बासी कल्पना है!’

‘जानते हो काहेके फूल?’

‘हरसिंगार या रातरानी!’

‘आँ हाँ! हरे चम्पाके फूल! कितनी दूरसे इनकी सुगंधि आती है! जिस जगसे इनका कोई संबंध नहीं है, उस जगको अँधेरेमें कितना धीरज देते हैं ये तारे!’

विजय उपहाससे सिर्फ़ हँसा!

वापस घर लौटनेके बाद, सुलभाको किसी भी तरह नींद नहीं आती थी ! बीचहीमें उठकर उसने मुकुन्दके पत्रको पढ़ा । बीचहीमें उसकी आँखोंके सामने विजयके नाम आया हुआ तार खड़ा हो गया । उसके अन्तर्मनके सारे अनुभव और सारी आशाएँ किसी अजीब नशेमें मस्त होकर, परस्पर एकदूसरेका हाथ पकड़े हुए नाच रही थीं ।

सुबह होते ही उसने मौसीजीसे बासे दूधकी ही चाय माँगकर पी और वह अकेली घूमने चल दी । परंतु किसी भी तरह उसका मन प्रसन्न नहीं होता था । सड़क बुहारनेवाली औरत धूल उड़ा रही थी, इसलिये कॉलेजकी तरफसे टेकड़ी चढ़कर वह आगे जाने लगी । गोखले-स्मारकके पायेपर पेन्सिलसे घसीटे हुए आड़े-टेढ़े नामकी ओर ही उसका ध्यान गया । उसने दायीं ओरके दृश्यकी ओर देखा, तो मज़दूरोंकी वस्तीका करुण दृश्य उसे दिखायी दिया । और आगे चलकर तो जब वह उस रास्तेको छोड़कर जा रही थी, उसके पैरमें ज़ोरसे एक काँटा चुभ गया । उदास मनसे ही वह लॉ कॉलेजके पीछेवाली टेकड़ीपर आयी । उसे भ्रम हुआ जैसे कोई ज़ोर ज़ोरसे बोल रहा है । कुतूहलके वश हो वह आगे बढ़ी । प्रोफ़ेसर गरुड और कदम ज़ोर ज़ोरसे बातें कर रहे थे । कदम तो जैसे लड़ ही रहा था ! वह गरुडसे कह रहा था, -- 'आपको दुनियाका कोई अनुभव नहीं है, सर ! उस शिरगाँव रियासतमें कारखानेके लिये किसानोंकी ज़मीनोंको धड़ाधड़ छुड़ा रहे हैं । यह देखनेको चलिये मेरे साथ । ज़रा देखिये तो कि किसानोंकी खुरपियाँ किस तरह तलवार बन जाती हैं और फिर अपना मानसशास्त्र और अर्थशास्त्र दिखाइये हमें !'

सुलभाको देखते ही वह ठहर गया । परंतु उसकी मुद्रापरका आवेश उसी तरह बना रहा । गरुड सुलभाकी ओर देखकर हँसते हँसते बोले, -- 'देखिये कैसा आदमी है यह ! सुबह होते ही घरमें घन्ना देकर बैठ गया है ! यह तो गनीमत है कि मेरा 'जोरू न जाता, अल्लामियाँसे नाता' वाला हाल है ! इसका काम क्या है, तो कलकी सभाका मेरा भाषण !'

'मुझे भी आपसे कुछ शंकाएँ पूछनी हैं । आपका भाषण बहुत सुंदर रहा । परंतु --' सुलभाने कहा ।

'वही मैं कह रहा हूँ !' -- कदमने क़रीब क़रीब गर्जकर ही कहा ।

गरुडने सुलभासे कहा, -- 'चलो हमारे घर पहले सब लोग चाय पिओ । और फिर मैं तुम्हें उस विषयके अपने नोट्स ही दिये देता हूँ ! फिर तो हो गया ?'

उठते उठते कदम आवेशसे बोला—‘टिप्पणियाँ ! हूँ ! दुनियाको ऐसे मरे हुए ज्ञानकी ज़रूरत नहीं है। सर, आप ज़रूर ही चलें मेरे साथ। अनायास कॉलेज भी बंद है !’

गरुड़ सिर्फ हँस दिये।

• • •

गरुड़के घर चाय पीकर सुलभा घर लौटी। रास्तेमें गरुड़की नोट-बुकके पन्नोंको उलटनेका मोह वह न रोक सकी। कितने विलक्षण वाक्य और विचित्र विधान थे उस छोटी-सी नोट-बुकमें ! मानवी जीवन क्या सचमुच इस प्रकार है ? स्त्री-पुरुषोंकी परस्पर संबंधके विषयकी मामूली टिप्पणियाँ नहीं थीं वे। अनेक आश्चर्योंकी परंपरा ही थी उनमें।

और सुलभा घर पहुँची, तो इस आश्चर्यको चरम सीमापर पहुँचानेवाली दो बातें उसे दिखायी दीं। तात्यासाहब शिरगाँव जानेकी तैयारी कर रहे थे। केशरके पिताने उन्हें साथ लेकर आनेका विजयको तार भेजा था ! दूसरी बात यह थी कि एक तार उसे भी आया था ! मुकुन्दके तारमें इतना ही मजबूत था —

‘ट्यूशन बंद हो गयी; परंतु केशरकी सिफ़ारिशसे शिरगाँवमें एक नौकरी मिल गयी है। पत्र भेज रहा हूँ !’

मतलब यह कि मुकुंद और केशर शिरगाँवमें इकट्ठे रहेंगे और बेचारा मनोहर बंबईमें अकेला ही !

• • •

१५

निर्माल्यकी कलियाँ

सुलभा अपने मन-ही-मन बहुत देरतक यह सोचती रही कि मुकुन्द द्वारा भेजे गये पत्रमें क्या मज़मून होगा। शतरंजकी दोनों तरफ़की चालें खुद ही चल-कर, अपने खेलके शौक़को पूरा करनेवाले कुछ खिलाड़ी होते हैं न ? उसका मन भी उसी तरह हो गया था आज। उसे पहले यह लगा कि पुष्पाके पिता ठहरे सनातनी मतवाले। किसी विषयपर उनकी और मुकुन्दकी चर्चा छिड़ गयी होगी और मुकुन्दके मतोंसे डरकर उन्होंने उसे छुट्टी दे दी होगी। आखिर ऐसे भी तो कुछ लोग होते ही हैं कि जिन्हें लोग खानेसे गरमी हो जाती है और इलायची खानेसे जुकाम हो जाता है। इस सनातनियोंके मन भी ठीक उसी तरहके होते हैं। परंतु यह विचार मनमें आ ही रहा था तभी उसे लगा कि घंटा-भर संस्कृत पढ़ानेवालेके मतोंसे किसीको क्या लेना-देना है ? मत भिन्न होनेसे कोई व्याकरणके रूप भिन्न नहीं हो जाते ! मुकुन्दने स्वयं ही ट्यूशन छोड़ दी होगी। केशरके साथ शिरगाँव जानेका मौक़ा मिल रहा था, तो फिर उसे भी ट्यूशनकी क्यों परवाह होनी चाहिए ? केशरके पिता अमीर हैं। उन्होंने उसे अपने कारखानेमें कोई नौकरी दे दी होगी ! पैसा और रूप-इनमेंसे हरएकके आगे तनी हुई गर्दनके लोग नम्र हो जाते हैं; फिर यहाँकी बात क्या पूछना है ? यहाँ तो दोनोंका संगम ही हो गया है !

परंतु इस विचारके मनमें आते ही उसे यह महसूस हुए बिना न रहा कि मैं मुकुंदकी ओर दूषित दृष्टिसे देख रही हूँ। उसकी बीमार बहन शिरगाँवके सैन-टोरिअममें है। इस हालतमें यदि उसने वहाँ नौकरी कर ली तो इसमें अनुचित क्या हुआ? बंबईकी ट्यूशन कौन हमेशाके लिये थी?

फिर उसके मनमें आया—मजदूरोंके लिये कराचीमें इतने हाथ-पाँव पटकने-वाले मुकुन्दने एक लखपतिके कारखानेमें नौकरी स्वीकार कर ली? क्या, यह बात ऐसी नहीं हो गयी कि शराबकी दूकानपर पिकेटिंग करनेवाला कुछ दिनोंके बाद उसी दूकानपर जाकर खुद ही शराबकी बोटलें उड़ाने लगे। मुकुन्द विलक्षण निग्रही है। एक बार वह भूखों मरनेके लिये तैयार हो जायेगा; परंतु धनीके घरका पालतू कुत्ता बना रहनेमें उसे कभी सुख न होगा। फिर वह मनसुखलालकी नौकरी करनेके लिये कैसे राजी हो गया? यह नौकरी उसे क्यों स्वीकार करनी चाहिए? कुछ समयके पहले कदम कह रहा था कि उस कारखानेके लिये कास्त-कारोंकी ज़मीनें उनसे छीनी जा रही हैं। फिर मुकुंदको यह मोह क्यों हुआ?

कल आये हुए मुकुंदके पत्रकी जब याद आयी, तब कहीं सुलभाका मन थोड़ा स्थिर हुआ। फिर भी वह मन-ही-मन पुटपुटा ही रही थी,—‘यह मुकुंद हल न होनेवाली पहेली है एक!’

मनुष्यके ध्यानमें बहुधा यह नहीं आता कि हम दूसरोंकी जो आलोचना किया करते हैं, वही दूसरे हमारी करते हैं। इसके कारण विजय और तात्यासाहब जहाँ बैठे हुए थे, वहाँ जाकर सुलभाने कहा कि ‘मैं भी चलती हूँ शिरगाँव’, तब विजयके चेहरेपर जो भाव दिखायी दिया उसका अर्थ यही था कि ‘सुलभा हल न होनेवाली पहेली है एक’। पर सुलभाके ध्यानमें यह न आया। विजय ज़रूर मनमें कह रहा था—‘अब मेरी समझमें आ गया कि संस्कृत कवियोंने स्त्रीको चंचल क्यों लिखा है।’

तात्यासाहबको सुलभाके शिरगाँव चलनेका कोई आश्चर्य न हुआ। उसका बचपन और मुग्ध वय शिरगाँवमें ही बीते थे। जगमें ऐसा कौन है जिसे अपने जन्मग्रामके प्रति, फिर वह कुग्राम ही क्यों न हो, प्रेम न लगता हो? आजकल तो सुलभाको शिरगाँव जानेका मौक़ा ही न आया था। वहाँ जाकर वह अपनी बाल-बच्चोंवाली सहेलियोंको देखेगी और उन्हें देखकर उसके मनमें भी गृहस्थीके विषयमें उत्सुकता प्रसन्न होगी, यह तो पक्का ही है कि विजयको जागीर शीघ्र ही

मिल जायेगी, इसलिये यह दूसरी 'जागीर' उसे उसी समय मिल जानेसे सर्वत्र आनंद हो जायेगा — इस प्रकारके कितने ही विचार तात्यासाहबके मनमें तुरंत चमक गये। वे हँसते हुए सुलभासे बोले, - 'मैं ही तुमसे चलनेके लिये कहने-वाला था !'

• • •

पूनासे रवाना होते समय, किसी दैनिक समाचार-पत्रके आधारपर यद्यपि पांडुरंगने यह कहा था कि आज प्रवासमें दुर्घटनाका योग है, फिर भी दोनों गाड़ियाँ शिरगाँव सकुशल पहुँच गयीं। भोजनके बाद तात्यासाहब और विजय तुरंत ही किसी कामके लिये बाहर चल दिये। विजयकी बुआसे क्या बातें की जायें यह एक सवाल ही था ! कारखानेकी तरफ़ जाकर केशरसे मित्रूँ, तो तात्यासाहब यह कह गये थे कि शामको हम सब मिलकर वहाँ जायेंगे। अंतमें, सुलभाको समय बितानेका आखिर एक उपाय सूझा। उसकी सहपाठीनी एक सहेली नज़दीक ही कहीं रहती थी ! उसका पति मुकुंदका सहपाठी था और उसे यह भी स्मरण हुआ कि आगे चलकर वह डॉक्टर हो गया। उसने सहेलीके घर जानेका निश्चय किया।

परंतु उस सहेलीके घरमें कदम रखते ही उसे लगा कि क्यों मैं यहाँ आयी। सुलभाकी उम्रकी ही लड़की थी वह ! लेकिन उसके चार बच्चे थे और पाँचवेके दिन पूरे हो रहे थे। उसके चेहरेकी ओर देखते ही सुलभाका मन क्षण-भर सुन्न हो गया। आँखमिचौली खेलते समय किसीके भी हाथ लगनेवाली यह लड़की दस वर्षमें दादी बनकर बैठ गयी थी। दादीका संतोष भी उसके हिस्सेमें कहाँसे आयेगा ? तरुण मन और असमय हुआ बूढ़ा शरीर — दोनों एक स्थानमें सुखसे रहें यह स्वभावतः संभव नहीं है। इसके कारण पन्द्रह वर्षमें जो अत्यंत विनोद-प्रिय थी, वह लड़की सिर्फ़ दस वर्षमें कितनी चिड़चिड़ी हो गयी थी ! उसका बड़ा लड़का कोई शिकायत लेकर आया और उसने उसको पूरी न सुनकर ही उसकी पीठपर जोरसे घौल जमा दिये ! तिलमिलाकर रोनेवाले उस लड़केको सुलभाने अपने छातीसे लगा लिया, फिर भी उसका रोना बंद न हुआ ! उसकी माँ ज़रूर बीच-बीचमें कह ही रही थी, - 'मेरे प्राण खाने जन्मे हैं, दइमारे !'

सुलभाके मनमें आया — यह बच्चा जब पैदा हुआ, तब इस माँका हृदय कितने आनंदसे उमड़ आया होगा ! 'मेरा राजा', 'मेरा मुन्ना', 'मेरा प्यारा' आदि

कहकर, उसको चूमते समय वह अपने सारे दुःखोंको भूल गयी होगी, वह सिर्फ़ नींदमें ही रोया होगा, फिर भी उस समय उसके प्राण किस तरह सकपका गये होंगे; उसके मूक सहवासमें इसे यह आभास हुआ होगा कि मैं यक्ष-गंधर्वोंकी अलौकिक सृष्टिमें आ गयी हूँ ! और आज ? क्या, स्त्रियोंको यह सिखाना पड़ता है कि फूलों और वृक्षोंको सिरपर ही धारण करना पड़ता है ? फिर इसका माँका हृदय है ! पर उसका हृदय माँका हो, फिर भी शरीर पत्नीका था । उसकी सहन-शक्तिकी आखिर कोई सीमा होती ही है न ? उसका पति डॉक्टर होते हुए भी इस विषयमें बिल्कुल उदासीन रहे ?

सुलभा उस सहेलीसे बातें करने लगी; तब उसका स्वभाव कितना बदल गया है, यह वह पद पदपर महसूस करने लगी — निसर्ग इल्लीको तितलीमें बदल देता है; परंतु मनुष्य तितलीको इल्ली बना देता है; यह विचित्र विचार उसके मनमें आये बिना न रहा । दस वर्ष पहले मेरी यह सहेली मेरे बराबर ही होशियार, उत्साही और महत्वाकांक्षिणी थी; परंतु आज फूल जिस तरह निर्मात्य हो जावे, उस तरह उसके मनकी स्थिति हो गयी थी । उसका व्यक्तित्व एकदम मर चुका था — नहीं, वह आप-ही-आप नहीं मरा था; घुटन करके उसे मार डाला गया था । अनजाने किये गये इस खूनका पहला गुनहगार — उसका पति ? डॉक्टर होकर स्त्रीके मनकी मृत्युको शांत चित्तसे देख रहे थे हज़रत !

चायके वक्त सुलभाको डॉक्टरसाहबके दर्शन हुए । इस उम्रमें ही उनकी काफ़ी तौंद निकल आयी थी । सुलभाने उनसे कारखानेके विषयमें बातें करना शुरू किया ।

‘ सुनती हूँ यहाँ कोई कारखाना निकला है ! ’

‘ हाँ, किसी अखबारमें पढ़ा ज़रूर था मैंने ! ’

सुलभाके मनमें आया — स्वयं अपनी पत्नीके स्वास्थ्यका समाचार जब किसी अखबारमें छपे, तभी इन महाशयको उसका पता लगना संभव दीखता है !

‘ किस चीज़का कारखाना है यह ? ’

‘ सुनता हूँ शक्करका है ! हमें इससे क्या वास्ता ? शक्करका हो, या ननक़ा हो — ’

‘ आपने उसे अभीतक नहीं देखा ? ’

‘ मैं पेशन्ट देखता हूँ । कारखाने देखकर मुझे क्या करना है ? ’

इस उत्तरकी उद्धतताकी अपेक्षा उसकी मूर्खता ही सुलभाको अधिक महसूस हुई। वह चुप हो गयी। परंतु डॉक्टरके विनोद-सागरमें अब ज्वार आने लगा था।

‘सुनता हूँ उस कारखानेका मालिक लखपति है ? वह जिस दिन बीमार होगा, उसी दिन अपने राम कारखाना देखने जायेंगे ! हाँ, पर अधिक अच्छा तो यह होगा कि उसके बीमार पड़नेके बजाय, उसकी रखैल ही बीमार पड़े ! सुनता हूँ, उसके चरणोंके सगुनपर सेठजीका बड़ा विश्वास है ! उसे अच्छी करनेके लिये पानीकी तरह पैसा खर्च कर डालेंगे हज़रत ! नहीं तो हम दोनोंका प्रेम देख लीजिये !’

इसपर हँसू या रोऊँ, यही सुलभा न समझ पायी। विषय बदलनेकी गरजसे वह बोली,—‘कितना सुंदर है आपका यह बँगला ! इसके बनवानेमें कितना खर्च आया होगा ?’

‘दस हज़ार !’ — एकदम ठहाका मारकर हँसते हुए डॉक्टर आगे बोले, ‘सिर्फ पाँच हज़ार इन्जेक्शन्स !’

और फिर अपने यहाँ आनेवाले हर एक मरीज़को मैं किस तरह भिन्न भिन्न प्रकारके इन्जेक्शनोंकी सलाह देता हूँ, इसका डॉक्टरसाहबने जो रसभीना वर्णन किया उसे सुनकर तो सुलभाके रोंगटे खड़े हो गये ! जिसके हाथमें सत्ता, विद्वत्ता अथवा अवसरकी कुल्हाड़ी आ जावे, वह जीवनके मार्गपर जाकर खड़ा हो जावे और उस मार्गसे गुज़रनेवाले ग़रीब प्रवासियोंको डांटडपट दिखाकर लूटे, इसे ही क्या सुधार कहते हैं ? प्रत्येक मनुष्य जन्मसे ही लुटेरा होता है क्या ? उच्च शिक्षासे यदि इस लुटेरेपनकी रोकथाम न होती हो, तो उस शिक्षाका क्या मूल्य ?

अपनी सहेलीसे बिदा लेकर सुलभा जैसे तैसे उस बँगलेसे बाहर निकली; परंतु उसका मन कहीं न लगता था। उसकी अन्तःसृष्टिकी तरह बाहरकी सृष्टि भी उदास ही थी। करीब पाँच बज रहे थे, परंतु धूप कम न हुई थी। बीचहीमें हवा चल पड़ती; परंतु वह अपने साथ इतनी धूल भरकर लाती कि ऐसा हो जाता कि वह कब थमती है। सड़कके गड़ढ़े, इधर उधर पड़े हुए कूड़े-कचरेके ढेर, हलवाईयोंकी दूकानपर रखे पदार्थोंपर भिनभिनेवाली मक्खियाँ, गन्ना पेरनेके चरखोंकी कर्क कर्क आवाज़, — बचपनमें देखी और सुनी हुई इन सब बातोंको सुलभाने इस समय भी देखा और सुना। उसे किसी भी बातमें रत्ती-भर भी फ़र्क नज़र न आया मंदिरमें कथावाचकजी द्रौपदी-शील-हरणकी वही कथा सुना रहे थे, स्त्रियाँ पहलेकी तरह ही बड़े भक्तिभावसे उसे सुन रही थीं; पसीनेसे तरबतर हमाल पहले जैसे ही

बोरे उठा रहे थे; और तो और, म्युनिसिपैलिटीकी पानीकी गाड़ी दस वर्ष पहले सड़कोंको पानीसे जितना भिगाती थी, उतनी ही भिगो रही थी।

सुलभाके ऊब गये हुए मनने कहा — ‘कितने ही वर्ष व्यतीत हो जावें, परंतु सूख गये हुए वृक्षमें पत्ते नहीं निकलते। समाजमें सुधार कभी नहीं होता; वह करना पड़ता है।’

शहर छोड़कर जब वह बाहर गयी, तब जैसे उसका बचपन लौट आया। सड़कके किनारेवाले काले खेतोंको देखकर, बचपनमें उनसे चुगकर ग्वायी हुई कच्ची मूँगफलीकी फलियोंकी उसे याद हो आयी। कोई नन्हा बालक जितनी मोहकतासे तोतला बोलने लगता है, इतनी ही मोहकतासे कपासका बोंड किस तरह खिल जाता है, इसका उसे स्मरण हुआ। गुड़ बनानेकी जगहके गुड़की मिठास उसकी जिह्वापर रेंगने लगी और चुट्टेके कच्चे दानोंके दूधकी नन्ही सुंदर बूँदें उसकी आँखोंके सामने नृत्य करने लगीं। उस समय उसे लगा कि सड़कके दोनों तरफ़, दूर क्षितिजतक फैली हुई धरतीमातामें, कितना काव्य भरा हुआ है! लेकिन बीचहीमें देखे हुए किसानोंके नंगघडंग बच्चे, उनके छोटे छोटे झांपड़े, उनके मरियल कुत्ते—वह अन्तर्मनमें विचार करने लगी—निसर्गकी तरह मनुष्यको भी प्रसन्न रहते क्यों नहीं बनता?

चलते चलते वह शहरसे काफी दूर निकल आयी थी। अब सड़कसे दूर एक छोटा-सा पहाड़ दिखायी देने लगा। उसे याद आयी—बचपनमें, मैं इस पहाड़से फिसलकर, नीचे गिर रही थी, उस समय अच्छा हुआ कि मुकुन्दने फुर्तीसे आगे बढ़कर मुझे पीछे खींच लिया! वरना — !

सुलभा उस पहाड़की ओर ध्यानसे देखने लगी। उसका सारा स्वरूप ही बदल गया था। उसके नीचे कितनी ही छोटी-बड़ी इमारतें दीख रही थीं। उनके आसपासके वे सुन्दर बगीचे — एकदम उसके ध्यानमें आया, मुकुन्दकी दीदी जिस सैन्योरीअममें है, वह यही होना चाहिए। वह जल्दी जल्दी उस पहाड़की दिशामें क़दम बढ़ाने लगी। धीरे धीरे उसे इमारतें स्पष्ट रूपसे दिखायी देने लगीं! सिर्फ़ दो-तीन सालके भीतर ही कितना पसारा उस पहाड़के तले फैल गया था! साफ़ और सुथरी सड़कपर बालू चमक रही थी। दर्शनीय भागके पास सुरूके पेड़ स्वागतके लिये खड़े थे। ये थे नाचनेवाला एक फव्वारा दूरसे ही मनको आनंद दे रहा था। सुलभाने फाटकपर लगी हुई तख्तीको देखा। वह ईसाई

मिशनरियों द्वारा संचालित एक रुग्णालय था। वह उस तख्तीके पास थोड़ी देर ठहरी रही। उसको नज़रोंके सामने जैसे दो चित्र नाच रहे थे - पहला, कुछ समयके पहलेके उस हिंदु डॉक्टरका, जिसे यह भी पता न था कि बच्चोंके लिये अपनी पत्नीका स्वास्थ्य नष्ट हो रहा है, दूसरा अल्पवैतनपर विदेशमें आकर सेवाके लिये अपनी पूरी ज़िंदगी बितानेके लिये तैयार इन मिशनरी डॉक्टरोंका। अपने देशके सुशिक्षितोंकी संकुचित मनोवृत्तिपर उसे बड़ी लाज आयी! शिक्षा, पैसा, मोटर, बैंगला, और यदि रंगीन तबीअतके हुए तो मदिरा और मदिराक्षी! भोग और उपभोग ही उनके जीवनका सर्वस्व है। हमारे यहाँके सुशिक्षितोंमें भी कितने लोग यह जानते हैं कि त्यागके बराबर दिव्य उपयोग दूसरा कोई भी नहीं है। कुछ समय पहलेका वह डॉक्टर, विजय - दूसरोंकी बात ही क्या? तात्यासाहबने भी अपनी पूरी ज़िंदगीमें क्या किया? उन्होंने सारा पैसा शिरगोवमें कमाया; परंतु राजासाहबके नामवाले हाई स्कूलको पाँच सौ, रानीसाहबके विज्ञान क्लबको तीन सौ, 'महावीर निःशुल्क वाचनालय' के लिये सौ रुपये आदि थोड़ेसे दानोंको छोड़कर, उन्होंने भी अपने पैसोंका विनियोग कहाँ किया है?

कोई भी हथियारको जब स्वयं अपनेपर ही चलानेका मौक़ा आ जाता है, तो उसकी धार अधिक तीक्ष्ण लगने लगती है। इसी कारण सुलभा अपनी विचारा तंद्रासे जागृत होकर आगे चलने लगी। दीदीका कमरा खोजनेमें उस कोई विशेष देर न लगी।

दीदीके कमरेमें कदम रखते ही, उसने यह दृश्य देखा कि दीदी लेटी हुई है और उसकी चारपाईपर बैठे हुआ मुकुन्द उसके पाँव दाब रहा है। मुकुन्दके विचित्र त्याग और उसके विलक्षण विचारोंके कारण उसके प्रति उसके हृदयमें जो स्नेहभाव था, उसमें आदरकी ही वृत्ति अधिक खिलकर दिखा करती थी; परंतु मुकुन्दकी सेवाका यह भावुक दृश्य देखते ही उस स्नेहभावका दूरत्व क्षणार्धमें ही लुप्त हो गया। उसके मनमें बड़ी इच्छा हुई कि सीधी चली जाऊँ और धीरेसे पीछे जाकर उससे कहूँ - 'तुम्हारे हाथ थक गये हों, तो जरा आराम कर लो। दीदीके पैरमें मैं दवाँ देती हूँ।' परंतु इसी समय दीदीकी नज़र द्वारमें खड़ी हुई सुलभाकी ओर गयी और वह बोली, - 'अय हय!'

मुकुन्दने चौककर पीछे देखा। फिर एकदम खः खः हँसता हुआ वह बहनसे बोला, - 'वाह जी, कितना डरा दिया तुमने मुझे!'

‘अरे वाह ! जैसे कि तुम डरते ही होगे किसीसे इस दुनियामें?’ — दीदीने सराहना-भरे स्वरमें कहा ।

सुलभा आकर मुकुन्दके सामने चारपाईकी दूसरी तरफ़ बैठ गयी ।

उसकी ओर मंद मुस्कानसे देखता हुआ मुकुन्द बोला, — ‘आजतक भगवानसे ही नहीं डरा मैं; परंतु आज ज़रूर एक व्यक्तिको देखकर —’

‘समक्ष आये हुए देवको दंडवत करनेसे क्या होता है ?’

‘देखा दीदी, लोग स्वयं अपनी तारीफ़ किस तरह खुद ही करा लेते हैं ? मैं इन्हें मनुष्य कह रहा था; परंतु ये तो भगवान बनने चली हैं !’

अब किसी तरह सुलभासे हँसी नहीं रोकी जाती थी ।

दीदीके पास बैठकर बातें करते हुए एक घंटा कब बीत गया इसका मुकुन्द और सुलभाको पता ही न चला । दीदीकी मुद्रापर स्वास्थ्य-सुधारके कोई चिन्ह नज़र नहीं आ रहे थे । इसलिये उसके मनको प्रसन्न रखनेके लिये मुकुन्द और सुलभा दोनोंमें जैसे होड़ लग गयी थी । श्लेषपर श्लेष किये जाते, यदि खुदका ही मज़ाक उड़ गया हो, तो खुद ही पहले हँस देते — इस तरह दोनोंका चल रहा था । सात अजनेकी घंटी बजी । तब कहीं दोनोंको होश आया । मरीज़ोंके मुलाकातियोंको ठंडमें ४: बजेतक और गरमीमें सात बजेतक अस्पतालसे चले जानेका वहाँका नियम था ।

फाटकके बाहर निकलनेपर मुकुन्दने उस बस्तीकी ओर मुड़कर देखा और वह सुलभासे बोला, — ‘सच्चा मंदिर लगता है यह; है न ?’

सुलभा उसकी ओर देखकर सिर्फ़ हँसी । उसके मनमें यह विचार आया था कि त्यागकी सच्ची कीमत त्यागी मनुष्य ही जानता है ।

सुलभाको पहुँचानेके लिये मुकुन्द उसके साथ शिरगाँवकी तरफ़ आने लगा, अब वह बोली, — ‘तुम्हें तो वापस कारखानेकी ओर जाना होगा न ?’

‘छि ! सुबह जाऊँगा मैं !’

‘तो फिर रातको हमारे घर ही ठहर जाओ न ?’

मुकुन्दने नकारात्मक गर्दन हिला दी ।

‘और कहीं जाना होगा तुम्हें ?’

‘हाँ ।’

‘बड़े आदमी मिल जानेपर फिर हम किस खेतकी मूली हैं ?’

‘सच है !’

‘कहीं शिरगाँवके राजासाहबने तो नहीं बुलाया है तुम्हें ?’

‘हो, उन्होंने ही तो बुलाया है ! लेकिन आजकल उन्होंने अपना घर बदल दिया है !’

‘घर ?’

‘यहाँ रहने आ गये हैं राजासाहब !’

मुकुंदने अँगुली दिखायी उस दिशाकी ओर सुभाने देखा । सड़कसे थोड़ी दूर दस-पन्द्रह मिट्टीके घरोंका वह एक छोटासा गाँव था ।

मुकुंद बोलने लगा । सुलभाको भ्रम हुआ जैसे उसकी तेजस्वी आँखोंकी चमक, धीरे धीरे घने होते जा रहे अँधेरेमें, शुक्रके तारेकी तरह झलक रही है ! राजासाहब और मनसुखलालकी कैचीमें किसानोंकी कैसी धज्जियाँ उड़नेवाली हैं, यह बात उसने इतने त्वेषके साथ कही, कि यदि कोई दूसरा यह कहता कि इसी मनसुखलालका यह नौकर है, तो सुलभाको यह सच ही न लगता । शीघ्र ही बातोंके सिलसिलेमें यह निकल पड़ा कि उसकी ट्यूशन क्यों बंद हो गयी । उत्तर भारतसे आये हुए गीता कहनेवाले पंडितजी कितने मोटे थं, कहींका भी दीया जलते ही उसे प्रणाम करनेका उनका नियम होनेके कारण पुष्पा बार बार स्विच दाबकर उनसे कितने जल्दी जल्दी प्रणाम कराया करती, कितनी गंभीरतासे उन्होंने यह सूचना की थी कि आजकलकी स्त्रियाँ पाउडर लगानेके बदले भस्म लगावें, मेरे यह कहते ही कि, गीताका ‘कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन’ चरण सम्पन्न लोगोंके लिये है, वे पंडितजी और पुष्पाके पिताजी कितने उबल पड़े - आदि बातें उसने हँसते-हँसते बड़े विनोद-पूर्ण ढंगसे कह सुनायीं । आगे चलकर यह कहते हुए कि दीदीकी बीमारीका रूपान्तर हृद्रोगमें हो गया है, उसके स्वरमें जो अत्यंत सूक्ष्म कँपकँपी आ गयी थी, वह सुलभाको महसूस हुई । - उसी तरह जब उसने यह कहा कि सैनेटोरियमका वृद्ध अमेरिकन डॉक्टर केवल सेवाके लिये अविवाहित कैसा रहा, उस समय उसकी भावनाओंको जो ज्वार आ गया था, वह भी उसे महसूस हुए बिना न रहा ।

अब अँधेरा हो गया था । शिरगाँव बिल्कुल नज़दीक था । थोड़ी दूरपर ही रेलगाड़ीका रास्ता था । वहाँ एक चनेमुरेवाला चिल्ला रहा था —

‘चुरमुरी खारि फुटाणी तिखट लसणाची चटणी’ १

ऐसे यह काव्य सुनकर सुलभाको हँसी ही आ जाती। परंतु इस समय उस चनेमुरेंको खरीदनेकी सनक आयी। उसे खरीदकर सड़कके किनारेके खेतमें वह और मुकुन्द जब जाकर बैठे, तब मुकुन्द बोला, — ‘सुलभा, तुम्हें देर हो गयी है। तात्यासाहब नाराज़ तो न होंगे तुमपर ?’

सुलभा कोई उत्तर देनेवाली थी; परंतु इसी समय चुरमुरे लेनेके लिये उसने अपना हाथ नीचे किया, तो वह जाकर मुकुन्दकी भरी हुई मुट्ठीमें ही पड़ा।

‘अनायास अच्छा हो गया !’—वह बोली।

‘वाह ! मैं तुम्हें अपनी मुट्ठीके नहीं दूँगा !’—मुकुन्दने मज़ाकमें कहा।

‘देखू !’

धीरे धीरे मुट्ठीसे टपकनेवाले उन छोटे छोटे दानोंका स्पर्श उसे कितना सुखदायी प्रतीत हुआ !

चुरमुरे खत्म करके वे दोनों उठे, तभी मुकुन्दने कहा, — ‘तुम्हें एक चीज़ देना है। बहुत देरसे देनेकी सोच रहा हूँ। पर बार-बार भूल ही जाता हूँ।’

‘क्या देनेवाले हो ?’

‘केशरका पत्र !’

मुकुन्दके हाथसे पत्र लेते हुए सुलभा बोली, — ‘मैं भी बार बार भूल जाती हूँ। आज न जाने ऐसा क्या हो गया है ?’

दोनों दिल खोलकर हँसे।

‘मनोहरका अब आगे क्या करना है ?’—सुलभाने पूछा !

‘मैं उसे यहीं बुला रहा हूँ।’

‘यहाँ ? शिरगाँवमें ? यहीं तो उसपर वह अभियोग लगा !’

मुकुन्द आगे कुछ भी न बोला। गाँवके दीये दीखने लगे थे। तब उसने सुलभासे कहा,—‘तुम जाओ अब !’ अँधेरेमें उसकी अदृश्य होती जानेवाली पीठाफिरी हुई आकृतिकी ओर देखनेका सुलभाने असफल प्रयत्न किया। फिर वह धीरे

१ ‘मेरे पास मुरें और नमकान फुटाने हैं। तीखी लहसूनकी चटणी भी है।’

धीरे चलने लगी। एक दूकानके पेट्रोलैक्सका ज़गमगाता हुआ प्रकाश सड़कपर पड़ा था। कुतूहलसे उसने केशरके पत्रको खोलकर देखा। बिलकुल छोटासा था वह।

‘प्रिय सुलभा बहन,
तुम्हारी केशर बड़े संकटमें है। इसी समय चली आओ। मनोहरकी
सौगंद है तुम्हें। जैसी हो वैसी ही आ जाओ।’

● ● ●

१६

प्रीतिकी प्रतिध्वनि

केशरके उस पत्रको पढ़कर सुलभाको पहले हँसी ही आयी। मनसुखलाल जैसे लखपतिकी बेटी ! अगर उसके पैरमें मामूली काँटा भी चुभ जावे, तो उसके लिये उसका पिता दस डॉक्टरोंको बुलायेगा ! यह कौनसे संकटमें पड़ गयी होगी ! कच्चे दिलके लोगोंके पैरके पास अँधेरेमें कुछ सरसरा जाय, तो वे एकदम 'सॉप, सॉप' कहकर चिल्लाते हैं न ? उसी तरह गद्दीसे आरामकुर्सीपर, और आरामकुर्सीसे मोटरमें — इस प्रकारका जीवन बितानेवाले धनी मनुष्यकी स्थिति होती होगी ! उन्हें इसका पता ही नहीं रहता कि दुनियामें कितने ही दुख स्वाभाविक हैं। क्या, अस्पतालमें मुझे हज़ार बार यह अनुभव नहीं आया ? ग़रीब लोग चुपचाप वेदना सह लेते हैं, परंतु इतनी ही वेदनाका धनी लोग बड़ा ढकोसला बना देते हैं — 'ओ माँ ! मरा ! हे प्रभो !' आदि उद्गार निकाले बग़ैर एक घड़ी भी नहीं ब्रीतती उनकी ! गरम कपड़ोंमें चौबीस घंटे लिपटे रहनेवालोंकी ठंड सहन करनेकी शक्ति क्या लुप्त नहीं हो जाती ? थालीसे पीढ़ेपर और गद्दियोंसे तकियोंपर रहनेवाले इन धनियोंके मन भी उसी तरह कमज़ोर होते हैं।

घर पहुँचतेतक सुलभाके मनमें इसी तरहके विचार आ रहे थे; परंतु विजयके बैठकखानेमें तात्यासाहब, विजय और शिरगाँवके तीन-चार प्रतिष्ठित

व्यक्ति जो बातें कर रहे थे, उन्हें सुननेके लिये वह सहजभावसे वहाँ बैठ गयी। लेकिन उसकी आँखोंके सामने एकदम मुकुंद खड़ा हो गया। यह ध्यानमें आते ही कि मेरा मन मुकुंदके विषयमें चिंता कर रहा है वह अपने आप ही इसतरह हँसी जिस तरह छोटे लड़के शीशेमें अपना प्रतिबिंब देखकर हँसते हैं। तुरंत ही उसे लगा — केशर भी मनोहरकी इसी तरह चिंता करती होगी। मुकुंदके बंबईसे चले आनेपर उस पठान और मनोहरकी भेंट हुई होगी। पठानने उसे बहुत सताया होगा और इससे विरक्त होकर उस आवेशमें उसने कुछ अंतःसंघर्ष बातें पत्रमें केशरको लिख भेजी होंगी ! उन्हें पढ़कर उसका मन अस्वस्थ हो गया हो, तो आश्चर्य क्या है ? प्रणयी मन हरसिगारके फूलसे भी कोमल होता है !

सुलभाके दिलमें आया कि उठूँ और खटसे केशरके घर चली जाऊँ। परंतु जाऊँगी कैसे ? कारखाना काफ़ी दूर है। रात अँधेरी है। यदि तात्प्रासे यह कहकर कि केशरसे मिलने जाती हूँ मैंने गाड़ी माँगी, तो वे कहेंगे — ‘कल सुबह जाना !’ वह उस कमरेमें हो रही बातें सुनने लगी। शीघ्र ही वह उनमें खो भी गयी। बातचीतका मुख्य विषय यही था कि कारखानेके लिये काश्तकारोंसे ज़मीनें किस-तरह प्राप्त करा दी जायें। परंतु किसी पेड़को तनेकी जड़से ही टहनियाँ निकलने लगीं, उसतर्ह उस संभाषणकी स्थिति हो गयी। कारखानेके दोनों मालिक मनसुखलाल और रतिलाल कई बार जाकर दीवानजीसे मिले थे; परंतु एक बूढ़े वर्कालसाहबने कहा कि रिक्तहस्तसे लिये हुए दर्शनको दीवानसाहब नहीं देखते। अदालतमें पैसोंके जोरपर अपने मुकद्दमें जीतनेके लिये सुलभाके बचपनसे ये महाशय विख्यात थे। इसके कारण उनके अनुभवकी इस स्पष्ट बातका सभीने हँसकर स्वागत किया। इसके बाद दूसरे एक दाढ़ीवाले महाशय बोलने लगे। उन्हें हिन्दू धर्मका जाज्वल्य अभिमान था। सुलभाको अपने बचपनके शालाके गणेशोत्सवकी याद हो आयी। उस अवसरपर सब वक्ताओंमें यही महाशय बड़े जोरजोरसे चिल्लाया करते थे। उनके कुछ वाक्य भी सुलभाको याद आ गये क्यों कि लड़के उनकी बार बार विडम्बना किया करते थे — ‘तुम समर्थ रामदासके बेटे हो, तानाजी जैसे सिहके लड़के हो, पहले बाजीरावके वंशज हो !’ इन वाक्योंका तो उन्होंने जैसे पेटेंट ही प्राप्त कर लिया था ! इस भाषणपर सुलभाकी कक्षामें यह शंका भी सामने आयी थी कि रामदासस्वामीकी वरासतमें कफनी और कुबड़ीके सिवाय और कुछ न मिलेगा। ये महाशय कुछ इस तरह बक रहे थे कि हिन्दू काश्तकारोंको

उनकी ज़मीनोंका उचित मुआवज़ा मिलना चाहिए। यदि यह दे दिया गया, तो काम हो जायेगा। मुसलमान काश्तकारोंको दण्ड देनेका यही मौक़ा ठीक है। सुलभा यही नहीं समझ पा रही थी कि तात्यासाहब उनकी ब्रकवासको इतनी शान्तिसे सुन क्यों ले रहे हैं! रियासतके दीवानको रिश्तत देकर शरीब काश्तकारोंके गले काटनेके लिये तैयार होनेवाले और संयोगसे हिन्दू अथवा मुसलमान हुए शरीब जीवोंके लिये न्यायकी भिन्न भिन्न तराजू काममें लानेवाले इन बृहस्पतियोंकी मनोवृत्तियोंका अर्थ ही उसकी समझमें न आता था! सात्त्विक महत्वाकांक्षासे प्रेरित होकर उसने डॉक्टरीकी सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त की थी। मराज़के सामने आते ही सुलभाको इसी विचारमें खो जानेका अभ्यास हो गया था कि वह अच्छा कैसे होगा। यह हिन्दू है, मुसलमान है, या ईसाई है—यह विचार ही उसके मनमें उस समय न आया करता था। इसलिये अपने सामने बैठे हुए शिरगोंवके उन प्रतिष्ठित नेताओंको देखकर, उसके मनमें आया—सारा जग चोरोंका बाज़ार है। जिनके बदनपर साफ-सुथरे और इस्तरी किये हुए कपड़े होते हैं, वे साव माने जाते हैं, और जिनके बदनपर फटे और मैले वस्त्र होते हैं, वे चोर माने जाते हैं। इतना ही सिर्फ़ फ़र्क़ है! उसे मुकुन्दका स्मरण हो आया! उसके मनने कहा—‘कितना पवित्र और उदात्त है उसका मन!’

उसे जिस समय मुकुन्दकी याद आयी, उसी समय एक तीसरे महाशय मुकुन्दके बारेमें बोलने लगे थे। रियासतके बड़े बड़े अधिकारियोंके इर्द-निर्द व्यर्थकी दौड़-धूप कर अपना जेब गरम करनेका इस महाशयका धंधा था। वह राजकवि भी था। मतलब यह कि राजमहलमें कुछ भी होता कि उसकी स्फूर्ति जागृत हो जाती थी। रानीसाहबके पहले दोहदसे लेकर राजासाहबके देहली-गमनके उत्सव समारोह तक एक भी विषय इस शीघ्र-कवित्वकी मारसे नहीं बचा था! एक बार जब गवर्नरसाहबके करकमलोंद्वारा शिरगोंवके प्रसूतिग्रहका उद्घाटन हुआ, उस समय इस महाशयकी प्रतिभाका जो विलास दृष्टिगोचर हुआ, उसको सुलभा ही क्या, पर समूचा शहर भी नहीं भूल सका। ‘राजहंस माझा निजला’^१ की तर्ज़पर, इस कविवर्यने वह रचना की थी।

१ कवि गोविंदाग्रजकी एक अत्यंत सुंदर और लोकप्रिय कविता—‘मेरा यह राजहंस सो गया है।’

‘बा नरा गरोदर होणें । वाटतें सुखाचें तुजला ।
परि दुःखद बहु हे अंती । बांधिली प्रसूतिशाला’^१

इस प्रकारके उस काव्यके आरंभको गुनगुनाकर सारे शहरने कितने ही दिनोंतक अपना मनोरंजन कर लिया था ! इस समय भी उन्हीं पंक्तियोंकी याद होकर सुलभा हँसनेवाली थी; परंतु तभी उस महाशयकी बातचीतमें मुकुन्दका नाम निकल पड़ा । बनमें स्वच्छन्दतासे विचरण करनेवाला खरगोश किसी आहटके पाते ही अपने कान खड़े कर ले, उसतरह उसके मनकी स्थिति हो गयी । वह कह रहा था, — ‘सुनता हूँ वह मुकुन्द कांचली यहाँ आ रहा है । पहले एक बार कराचीमें वह बहुत बड़ी हड़ताल करा चुका है !’

‘शिरगाँव कराची नहीं है, महाशयजी ! यदि तात्यासाहब सरीखे लोग काश्त-कारोसे ज़मीनें मॉगना शुरू कर दें, तो मैं नहीं समझता कि वे लोग इन्कार कर देंगे !’ — विजय बोला ।

दाढ़ीवाले महाशयने उत्तर दिया, — ‘जो मनुष्य रजाई और कंबलके भीतर गरमाहटमें पड़ा रहता है, उसे यह कल्पना नहीं हो सकती कि बाहर कितनी सरदी पड़ रही हैं । यही हाल हो गया है तुम्हारा, विजयबाबू । लेकिन कहीं मसजिदके सामनेसे बाजा बजाते हुए जानेके हिंदुओंके हक्कको आघात पहुँचता है, तो कहीं हिंदूके मंदिरके पास ही किसी पीरकी कबर अचानक उत्पन्न होकर झगड़ा शुरू हो जाता है । इस तरहके एक नहीं, दो नहीं, बल्कि कई निमित्तोंके कारण गाँवोंमें मुझे बार-बार जानेका मौक़ा आता रहता है । इसलिये कहता हूँ कि तुम जितना समझ रहे हो, किसान अब उतना भोला नहीं रहा है । पहले उसे भरपूर खाने-पीनेको मिलता था, तबतक वह हरी घास था ! परंतु वह सारी नमी बिलकुल गायब हो गयी है अब ! घास सूख गयी है । कहींसे भी एक चिनगारी आयी —’

‘आजकलके ज़मानेमें चिनगारियोंकी क्या कमी है ?’ — दीवानजीके दोस्त वकीलसाहब बोले ! ‘अजी साहब, अगर हवाकी दिशा बदल जाय, तो आगकी दिशा भी बदल जाती है । आप इतनी दूरकी बात क्यों कहते हैं ? मेरा सगा भतीजा मैंने उसे कॉलेजकी उच्च शिक्षा दी ! उससे यह भी कहा, कि अगर वह

१ ‘हे नर, गर्भवति होना तुझे बड़े सुखकी बात लगती है । परंतु अंतमें यह बड़ी दुःखद होती है । इसलिये यह प्रसूतिशाला बनायी गयी है ।’

चाहे, तो दीवानजीसे कहकर स्कूलमें एक मास्टरकी जगह दिला दूँगा ! परंतु न जाने छोकरेके दिमागमें क्या समा गया ! बोला, मुझे किसी रियासतकी नौकरी नहीं करनी है; दो-तीन सालतक वह समाज सत्तावादका प्रचार करनेवाला है ! अब आप ही कहिए, बेवकूफ है या नहीं ? कभी बंबईमें रहता है, कभी यहाँ रियासतमें आकर गाँव गाँवमें भटकता रहता है !'

हिन्दू महासभावाले महाशय बोले,— 'तुम्हारे भतीजेकी तरह आज सैकड़ों लोग हैं ! उन्हें धर्मका भी अभिमान नहीं । कहते हैं रोटीका सवाल मुख्य है । अब आप ही बताइये कि रामदास भाँवरोंसे भागे, तो क्या रोटीके लिये ? तानाजी सिद्दहट्टपर आधी रातको चढ़ गया, तो क्या रोटीके लिये ? पहले बाजीराव-साहबने उत्तर भारतपर चढ़ाई की, सो क्या रोटीके लिये ?'

शायद विजय यह जानता था कि जहाँ चार आदमी दिखायी दिये कि इस महाशयका लेक्चर झाड़नेका पागलपन जाग्रत हो जाता है ! वह बीचहीमें बोला,— 'तो इस हालतमें अच्छा यही होगा कि कारखानेके लिये सरकारी हुक्मके ज़रिये ही ज़मीनें प्राप्त करनेकी कोशिश की जाये ।'

तात्यासाहबने पूछा,— 'लेकिन सरकारी हुक्मको भी किसान लोग मान लेंगे क्या ?'

'नहीं तो क्या करेंगे ?'

'सत्याग्रह !'

'रियासतमें क्या करेंगे सत्याग्रह ? एक एक ही हड्डी तोड़ देंगे हम !'—विजयने कहा ।

विजयके ये उद्गार सुलभाको ऐसे लगे जैसे किसीने उसपर जलता हुआ गोला फेंक दिया हो । किसानोंको खुद अपनी ज़मीनके टुकड़ोंके लिये—अपने बालबच्चोंके प्राणोंके लिये सत्याग्रह करनेका अधिकार न हो ? और विजयको सिर्फ़ वरासतके हक्केसे एक ज़मींदारी प्राप्त करनेकी इजाज़त है ! उसके क्षुब्ध मनको लगा—हमारा यह मानना कि दुनिया सुधर गयी है, बिल्कुल झूठ है । नरमांसहारी लोग सिर्फ़ जँगली जातियोंमें ही नहीं मिलते । सारी सुधरी हुई दुनिया आज भी मनुष्यके मांसको चपचप करती हुई स्वादसे खा रही है । फर्क इतना ही हुआ है कि इस मांसको प्राप्त करनेके साधन बदल गये हैं । पहले मनुष्यको सूलीपर चढ़ाते थे; परंतु अब अमरीकामें उसे बिजलीकी कुर्सीपर बैठा देते हैं ! सिर्फ़

इतना ही हुआ है कि नरमांसके खानेकी कलाको आजके जगमें अत्यंत चमकता हुआ स्वरूप दे दिया गया है ! परंतु —

हिन्दू महासभावाले कह रहे थे, — ‘पूनामें कदम नामका कोई एक आन्दोलक है। वह यहाँ दो-चार चक्कर लगा चुका है ! विगड़े दिमागके दो-चार साथी भी हैं उसके ! अगर वह कहीं उस मुकुन्दको ले आया, तो कोई बड़ी विलक्षण अंडबंड घटना हुए बिना न रहेगी यहाँ !’

‘उस मुकुन्दपर रियासतकी हद्दमें प्रवेश न करनेका कानूनन हुक्म जारी करा देनेसे काम बन जायगा। राजासाहब और दीवानजी दोनोंका मिज़ाज बहुत नाज़ुक है। उन्हें सत्याग्रहकी तरह कुपथ्य नहीं चलेगा !!’

विजयके इन उद्गारोंकी सभीने हँसकर सराहना की। जिस नींवपर सत्याग्रहकी इमारत खड़ी होनेवाली है, उसको ही उखाड़कर फेंक देनेकी कल्पना निःसंदेह एक कुशल राजनीतिज्ञकी ही तरह थी। लेकिन दूसरोंकी हँसी जैसे जैसे बाहर फूट रही थी, वैसे वैसे सुलभाका हृदय भीतर-ही-भीतर घुटता जा रहा था। उसका मन कह रहा था — मुकुन्द इन लोगोंकी तरह स्वार्थी और दोगी नहीं है। तो क्या इसलिये ये लोग उसके पीछे हाथ धोकर पड़ जायेंगे ! कहते हैं कि व्यसनी मनुष्यको निर्व्यसनी मनुष्यसे एक तरहकी विलक्षण ईर्ष्या होती है ! उसी तरह इनकी हालत हो गयी है ! मुकुन्द ! मेरा मुकुन्द असहाय और एकाकी लड़ेगा और कौरवोंने अभिमन्युको अधर्मयुद्धमें जिस तरह मार डाला, उसी तरह हिंस्र पशुओंके रूपसे विचरण करनेवाले ये लोग सत्ता और सम्पत्तिके शस्त्रोंसे मनमानी तरह और मनमाने स्थानपर धाव करके उसको पराजित करेंगे — उसे उसके ध्येयके जगसे उठा ले जायेंगे ! क्या, मैं यह सब खुली आँखोंसे देखती रहूँ ? सत्य क्या केवल पुस्तकोंमें पढ़नेकी चीज़ है ? न्यायदेवी क्या एक निर्जीव मूर्ति है ? क्या, मुट्ठी-भर अपनेको बड़ा कहनेवाले लोगोंके लिये लाखों लोग दुखमें सड़ते पड़े रहें ? फिर प्राचीन कालमें देवी-देवताओंको मनुष्योंकी जो बलि दी जाती थी, उसकी हमें खिल्ली क्यों उड़ाना चाहिए ? सारी दुनिया भले ही मुकुन्दके विरुद्ध हो जाय, परंतु मुझे उसीके पक्षका समर्थन करना चाहिए। उसकी मददके लिये जी-जानसे कोशिश करनी चाहिए।

लोग जाने लगे। जाते-जाते वृद्ध वकीलसाहब सुलभाके पास क्षण-भर रुककर बोले, — ‘डॉक्टरनीजी तो बिलकुल चुप रहें। एक भी शब्द न बोलीं हम लोगोंसे !’

‘आपकी इस राजनीतीकी बातोंको मुझ जैसी क्या समझेगी?’

‘अरे हाँ, वह मुकुन्द कांवली इनका बड़ा मित्र है ! तात्यासाहब ! मैं यह बताने-को तो भूल ही गया था । सुलभा और मुकुन्दकी बड़ी घनिष्ठता है । यदि सुलभा उसे इस फंदमें पड़नेसे रोक दे, तो —’ विजय बोला ।

वकीलसाहब आँखें मिचकाते हुए बोले,— ‘वाह ! मोहिनी अस्त्र हाथमें आ जानेसे फिर ब्रह्मास्त्रकी आवश्यकता ही क्या रही ?’

उनकी ओर तीव्र दृष्टिसे टकटकी लगाकर देखते हुए सुलभाने उत्तर दिया,— ‘किसी भी मोहसे ध्येयको बड़ा माननेवाले लोग इस दुनियामें हैं, इसी लिये वह चल रही है !’

वकीलसाहब खामोश हो गये । परंतु उन्होंने अपना चेहरा कुछ ऐसा बनाया जैसे वे दिखाना चाहते हैं कि इस ठमकमें क्या रहस्य है उसको वे पूर्ण रूपसे जान गये हैं । अपना पराभव दिखायी न दे इसलिये वे तात्यासाहबसे बोले,— ‘बचपनमें चाय लेकर आती थी, तब कितनी शरमाती थी यह सुलू ! और हाँ, अब आप इसके दो हाथके चार हाथ कर रहे हैं ? आजकल पाश्चात्य विद्वानोंका भी मत है कि स्त्रियोंकी बच्चे होनेकी उम्रको अधिक आगे बढ़ने देना इष्ट नहीं है !’

‘बच्चे होना ही क्या स्त्रियोंके जीवनका एक मात्र ध्येय होता है ?’—सुलभाने कठोर स्वरमें प्रश्न किया ।

‘बेशक ! वररकर^१ और अत्रे^२ भी तो गर्जकर यही कहते हैं न ? स्त्री पहले माता होती है और फिर पत्नी होती है !’

‘स्त्री पहले स्वतंत्र व्यक्ति होती है । उसकी इच्छा हो, तो वह पत्नी बनेगी, माता बनेगी — नहीं तो —’

वकीलसाहबने सिर्फ दुर्बल हास्य किया ।

सुलभा हँसते हँसते बोली,— ‘पुरुष पहले पिता होता है, फिर पति होता है, इत्यादि इत्यादि तत्त्वज्ञान तो आपको पसंद होगा ही !’

वकीलसाहबको सटकनेकी फिक्रमें देखकर वह आगे बोली,— ‘भोजनकी तरह

१ मराठी भाषाके सुप्रसिद्ध नाटककार ।

२ मराठी भाषाके मशहूर नाटककार और चित्रपट-निर्माता ।

यदि तत्त्वज्ञान भी बासा हो गया कि वह भी खट्टा होकर खराब हो जाता है ! है न, वकीलसाहब ?'

• • •

तात्यासाहब और विजय भोजनके लिये बैठे । सुलभाने कहीं कोई नाश्ता न किया था कि जिससे उसे भूख न लगती । परंतु आज भोजन करनेकी उसे इच्छा ही न होती थी । यह गप मारकर कि मैं एक सहेलीके घर पेट-भर खा आयी हूँ, और दो-तीन गिलास पानी पीकर वह ब्रगलेकी सीढ़ियोंपर आकर खड़ी हो गयी । सामने फैले हुए अँधेरेमें उसे एक प्रकारका अपनापन लगने लगा । ऊपर चमक रहे तारोंकी ओर दृष्टि जाते ही उसके मनमें आया—दुनियाको ध्येयवादकी शिक्षा देनेके लिये ही अँधेरेमें ये तारे अधिक उज्ज्वलतासे चमक रहे होंगे ।

सीढ़ियाँ उतरकर वह धीरे धीरे नीचे गयी और बागमें टहलने लगी । बगीचेकी भूमि, अँधेरा, साँप-बिच्छूका डर—इनमेंसे किसीका भी उसे होश न था । मुकुन्द इस वक्त उन किसानोंके झोपड़ोंमें कैसा बैठा होगा, उनसे क्या क्या बातें कर रहा-होगा, इसीके कल्पनाचित्र उसकी आँखोंके आगसे सरक रहे थे । उसके मनकी अद्भुतरम्यताको उन चित्रोंने जागृत कर दिया । उसे लगा, इसी समय सीधी उन झोपड़ाकी ओर चली जाऊँ । मुझे देखकर मुकुन्द आश्चर्यचकित हो जायेगा । वह जल्दी जल्दी कहेगा, — 'कौन सुलभा ? ऐसी रातको ! और अकेली ?' मैं उत्तर दूँगी, — 'तुम यहाँ अकेले ही नहीं थे क्या ?' वह हँसकर कहेगा, — 'मैं अकेला सौंके लिये भारी हूँ !' कदाचित्त वह बिल्कुल ही न बोलेगा । कदाचित्त उस दिन भ्रष्टाईमें गुनगुना रहा था, उस तरह मृदु स्वरमें कहेगा —

**‘एकत्र गुंफुनि जीवितधागे
प्रीतीचै नर्तन नाचलों मागे
एकटा उभा मी येथे —’**

सुलभा टहलती हुई गैरेजके पीछे जा पहुँची थी । उसका ख्याल था कि विट्टू खानेपर बैठा होगा । परंतु गैरेजसे कुछ कानाफूसी सुनायी दे रही थी । विट्टू शायद किसीसे बातें कर रहा था ! इस समय विट्टूसे बातें करनेवाला कौन होगा ? विजयके घरका नौकर यहाँ अँधेरेमें आकर विट्टूसे किस विषयकी बातें करेगा ? सुलभाके मनकी रहस्यप्रियता जागृत हुई । वह दबेपाँव गैरेजके सिरेपर जाकर

खड़ी हो गयी। बातें बहुत ही मंद स्वरमें हो रही थीं। तिसपर भी उसका एक एक शब्द सुलभाके कानोंमें पड़ने लगा।

‘बेवकूफ़ ! कर्जा लेते वक्त शर्म न आयी ?’—यह आवाज़ विलक्षण रूपसे भारी हुई थी।

‘लेकिन उसे अदा करनेके लिये मुझे कुछ वक्त दे दो न !’—इस आवाज़में किंचित् भय छिपा हुआ था। परंतु सुलभाने सहजहीमें पहचान लिया कि वह विठ्ठकी आवाज़ है।

‘अबे कुत्तेकी औलाद ! क्या, रेस खेलकर मेरा कर्जा चुकायेगा तू ?’

‘पर —’

‘मैं एक नहीं सुनना चाहता। चुपचाप मेरा काम फ़तह कर ला। तुझपर कोई शक भी न करेगा ! जाकर कहना कि मुझसे ही सँदेसा दिया है, फिर कारमें बैठाना और लाकर मेरे हवाले करना !’

‘दूसरे दिन मेरे गलेमें फाँसी लगा जायेगी न ?’

‘तैरा तो खरगोशका कलेजा मालूम होता है रे ! कानपर हाथ रखकर साफ़ छूट जा ! अबे, इन अमीरोंके घर इतनी पोलें होती हैं, इतनी झंझटें होती हैं कि तुझे अदालतमें ले जानेकी किसीको हिम्मत ही न पड़ेगी। सोच ले ठीक तरहसे ! यदि मंजूर करता है, तब तो ठीक है। वरना यह धुरा —’

गैरेजमें एकदम प्रकाश चमका। बोलनेवाले व्यक्तिने अपने हाथकी बैटरीका बटन दबाया होगा ! फिरसे तुरंत अँधेरा हो गया था। सुलभाने दो मनुष्योंको गैरेजसे बाहर निकलते हुए देखा। परंतु उनकी आकृतियाँ इतनी धुंधली और अस्पष्ट थीं कि यदि उनकी बातचीत न सुनी होती तो सुलभाको लगता नहीं कि वे मनुष्य हैं।

पहले सुलभाकी समझमें ही न आया कि उसने जो बातें सुनी थीं उनका मतलब क्या है। विठ्ठकी सहायतासे किसीको भगानेका षड्यंत्र मालूम हो रहा था वह। परंतु यह षड्यंत्र रचनेवाला कौन है ? जिसे भगाना है वह व्यक्ति कौन है ? इधर-उधर दौड़कर उसका मन अंतमें एक ही कल्पनापर स्थिर हुआ। मनोहरको भगाकर उसे मार डालनेका इरादा तो वह पठान नहीं कर रहा है ? परंतु उस पठानको यह पता कैसे चला होगा कि मुकुन्द मनोहरको यहाँ बुला रहा है ? और यह संभव भी है क्या कि सिर्फ़ इस कामके लिये ही वह यहाँ आया होगा ? छि !

विचार कर-करके उसका मन बिलकुल त्रस्त हो गया। उसने सोचा—जाकर पड़े-पड़े कुछ पढ़ूँ ही। इसलिये वह भीतर आयी। उसने देखा, तात्यासाहब और विजय मनसुखलालके बँगलेपर जा रहे थे।

सुलभाने कहा,—‘मैं भी चलती हूँ।’

तब तात्यासाहबने कहा,—‘व्यर्थ ही नींद क्यों खराब करती है? हमें कितनी देर वहाँ रुकना पड़े इसका क्या ठिकाना?’

परंतु विजयने ‘चलने दीजिये न? अपनी सहेलीकी मुलाकातके लिये उत्सुक हो गयी होगी’ ये कहकर बकालत की, तो सुलभाको और अधिक कुछ कहनेकी ज़रूरत ही न पड़ी।

लेकिन तैयार होकर काममें बैठनेके लिये जब सुलभा बाहर आयी, तब उसने देखा कि सारा आकाश अंधेरेसे ढक गया है। कुछ समयके पहले जो असंख्य तारे थे, उनमेंसे अब एक भी वहाँ नज़र नहीं आ रहा था। सुलभाकी समझमें न आया कि आज आकाश भी क्या मेरे मनके खेल ही खेलकर दिखा रहा है? गाड़ी स्टार्ट होते समय उसने विठ्ठी और जानबूझकर ध्यानपूर्वक देखा। उसके हाथने हमेशाकी तरह सफाई आज न दिखायी। सुलभा कुछ समयके पहले सुने संभाषणका फिरसे विचार करने लगी।

गाड़ी शहरके बाहर भी न जाने पायी थी कि बारिश शुरू हो गयी। टप टप आवाज़ करती हुई बड़ी-बड़ी बूँदें गिरने लगीं। सुलभाने अपनी तरफ़के शीशेको ऊपर उठा लिया। इसी समय बाहर बिजली चमकी। जोरकी हवा चली और धूलकें गुब्बारे उड़ने लगे।

विठ्ठी मोटर चलाये जा रहा था। परंतु एकदम किसी कारणसे मोटरकी गति रुक गयी।

विजय झल्लाकर बोला,—‘क्यों रे, आज पी ली है क्या?’

बाहर पानीमें भीग रहे विठ्ठीने कोई उत्तर न दिया। दीया जलाकर वह मरम्मत करनेके लिये ज़रूरी सामान निकालने लगा। एकदम उसने ‘चू चू’ किया। ज़रूरी चीज़को वह गैरेजमें ही भूल आया था। ‘अभी लेकर आता हूँ’, कहकर उसने यह देखा कि गाड़ी ठीक किनारेसे लगी है या नहीं, और फिर अंधेरेमें ही वह शिरगाँवकी दिशामें दौड़ पड़ा।

विठ्ठीके लौटतेतक मोटरमें प्रतीक्षा करते हुए बैठे रहना विजयकी जानपर आया।

बारिशको जिस तरह पहले आनेकी सनक आ गयी थी, वैसी अब जानेकी भी आ गयी थी।

बाहरके खेतोंकी ओर अँगुली दिखाकर, विजयने तात्यासाहबसे कहा,—
‘कारखानेके लिये इन्हीं ज़मीनोंकी ज़रूरत है।’

तात्यासाहबने उस ओर देखा। दूर दो-चार दीये टिमटिमा रहे थे। वे किसानोंके झोपड़े होंगे।

‘चलिये, वहाँतक घूम आयें!’—विजयने कहा। दूसगंकी सम्मति प्राप्त होनेसे पहले ही वह मोटरसे उतर भी पड़ा। गाड़ीका बीचहीमें रुक जाना और बिठूका शिरगांवकी तरफ़ दौड़ते हुए जाना—इस विषयमें सुलभा भी सशक हो गयी थी। उसके उतरनेपर तात्यासाहबने कोई आनाकानी न की। विजय बैटरीकी रोशनी डालता हुआ आगे चलने लगा।

वे झोपड़े वैसे कोई बहुत दूर न थे। लेकिन सड़क छोड़कर जब वे लोग किनारेके खेतोंमें घुसे, तो बारिशसे गीली हुई मिट्टी उनके जूतोंमें इतनी चिपकने लगी कि विजयको ऐसा हो गया कि कहाँसे मैने उन झोपड़ोंकी तरफ़ जानेकी बात निकाली! लेकिन चप्पलोंके तलोंमें मिट्टीकी मोटी तहें चिपकते समय सुलभाको ज़रूर बड़ा आनंद आ रहा था। उसके मनमें यह विचार भी आ गया कि जिस मिट्टीमें किसान ज़िंदगीभर चलते हैं, उसमें क्षण-भरके लिये हमें क्यों ऊब जाना चाहिए।

उन झोपड़ोंके समूहमें जो एक बड़ा-सा झोपड़ा था, उसके नज़दीक ये लोग पहुँचे। भीतर कोई बड़े आवेशसे बातें कर रहा था। बिल्कुल नज़दीक जानेपर उन्हें शब्द सुनायी देने लगे—

‘कारखाना खोलनेवाला कोई भगवान नहीं है और तुम कोई जानवर नहीं हो। वह भी इन्सान है और तुम भी इन्सान हो। ग़रीबोंकी ज़िंदगीकी होलीपर अमीर लोग मज़ेसे अपनी रोटियाँ सेंक लेते हैं। इस समय भी वही होगा, अब तुम्हें उन्हें यह दिखा देना होगा कि यह आग अब तुम्हारी रोटियाँ नहीं सेंकेगी, बल्कि तुम्हें भुन डालेगी!’

पहले शब्दोंको सुनते ही जहाँके तहाँ ठिठककर खड़ा हुआ विजय आगे बढ़ा। उसके पीछे पीछे सुलभा और तात्यासाहब भी झोपड़ेके द्वारके पास आये। उन्होंने सामने देखा। एक बड़ा-सा दीया जल रहा था जिसकी रोशनी सारे कमरेमें फैली

हुई थी। दस-पन्द्रह तरुण, वृद्ध और अधेड़ उम्रके गरीब काश्तकार बैठे हुए थे। कुछ स्त्रियाँ, लड़के और बच्चे भी थे। इनमें कुछ मुसलमान काश्तकार भी थे। उनसे बातें करनेवाले व्यक्तिने मुड़कर द्वारकी ओर देखा ही था, तभी विजयके मुँहसे निकल पड़ा,

‘मुकुन्द !’

सुलभाके हृदयसे प्रतिध्वनी हुई,

‘मेरा मुकुन्द !’

● ● ●

१७

‘ज्ञानदीप न बुझा, रे!’

झोपड़ीके द्वारमें विजय, सुलभा और तात्यासाहबको देखकर, मुकुन्दको आश्चर्य हुआ। पर वह क्षणभर ही। तुरंत ही उसकी विनोदवृत्ति जागृत हुई। हँसते हँसते वह सामने आया और विजयको नमस्ते करता हुआ बोला, — ‘भीतर आ जाइये न!’

भीतर जो काश्तकार बैठे हुए थे उनमेंसे बहुतसे विजयको जानते ही थे। ऐसा एक भी मनुष्य वहाँ नहीं था जिसे साहूकारों या ज़मींदारोंकी कृपाके कारण अदालतकी सीढ़ियाँ न चढ़नी पड़ी हों। लेकिन इन सीढ़ियोंको तय करनेके बाद, भीतरके न्यायमंदिरमें उन्हें विजयके जो दर्शन हुए थे, वे बहुधा विरुद्ध पक्षके वकीलके रूपसे ही। विजयकी सारी बुद्धि उनके टूटे-फूटे घर-द्वार और बर्तन-भांडोंपर ज़ब्तीका हुक्म लानेपर ही खर्च हुआ करती थी, फिर भी उन्हें उसकी बड़ी धाक मालूम होती थी इसमें संदेह नहीं। विजय द्वारपर ही ठिठक गया। परंतु उसको देखते ही एक बूढ़े मुसलमान काश्तकारको छोड़कर, बाकीके सब लोग एकदम झटपट उठकर खड़े हो गये। यदि मुकुंद वहाँ न होता, तो उनमेंसे बहुतोंने इसलिये कि वकीलसाहबसे पुनीत चरणोंसे ग़रीबकी झोपड़ी पवित्र हो गयी, आनंद भी प्रदर्शित किया होता। परंतु थोड़ी देर पहले ही

मुकुन्दकी उन लोगोंसे जो बातें हुई थीं, उनके कारण उनके ध्यानमें आ गया होगा कि इसतरहकी चापलूसी उसे बिल्कुल पसंद न होगी। इसलिये उनकी आँखें करुणापूर्ण कृतज्ञतासे विजयकी ओर देख रही थीं, पर उनके मुँहमें एक शब्द भी न निकला।

विजयने मुकुन्दको कोई उत्तर न दिया। वह अपनी जगहसे हिला तक नहीं। इसी समय वह बूढ़ा मुसलमान काश्तकार आगे बढ़कर बोला, - 'आ जाइये न, रावसाहब भीतर। इस झोपड़ीमें गलीचा नहीं है, पर फटा कंबल ज़रूर बिछा हुआ है। मुकुन्द भैयाको गुड़की डली और पानी मिला, उस तरह आपको भी वह देनेकी शक्ति भगवानने हमें दी है !'

विजयने क्रोधसे उस बूढ़ेकी ओर देखा। मुकुन्दके ध्यानमें यह आ गया। परंतु झगड़ा न बढ़े इसलिये तुरंत सुलभाकी ओर मुड़कर वह बोला, - 'सुलभा भीतर आ जाओ न? हालहीमें बाहर चारिश हो गयी है, ज़मीन गीली है !' विजयने यह कहकर कि 'बाहर ज़मीन गीली है, पर यह थोड़े ही है कि वह भीतर गीली नहीं है ?' डंक मारनेकी कोशिश की। परन्तु उसकी ओर तथा तात्या-साहबकी ओर ज़रा भी ध्यान न देकर, सुलभा झुककर भीतर आयी और एकदम कृपक स्त्रियोंके दलमें जाकर घुस गयी। भीड़में नागिन घुस जानेसे लोग जिस तरह तितर-बितर हो जाते हैं, उसी तरह उन स्त्रियोंकी दशा होनेवाली थी। परंतु सुलभाने दो स्त्रियोंको अपने हाथोंसे मज़बूत पकड़कर, अपने पास बैठा लिया, इसलिये जो भागनेकी सोच रही थीं, उन्हें भी अपने स्थानपर ज्योंके त्यों बैठे रहनेकी हिम्मत आ गयी - जादूके खेलको जिस आश्चर्य-भरी दृष्टिसे देखते हैं, उस दृष्टिसे वे सुलभाकी ओर देखने लगीं। सुलभाके ध्यानमें आ गया कि वे घबड़ा गयी हैं। समीप ही करीब दो सालका एक बच्चा सोया हुआ था। उसके बदनमें एक फटा कुरता था। शामको खेलते समय उड़ी हुई धूल उसके केशों और चेहरेपर दीख रही थी! परंतु एक पलका भी विलंब न लगाकर, सुलभा थोड़ी आगे सरकी और उसने उस बच्चेको चूम लिया। उसने गरदन उठाकर झोपड़ीके द्वारकी ओर देखा। मुकुन्दकी आँखोंमें फूल-खिले हुए थे; परंतु विजयकी आँखोंमें ज़रूर चिनगारियाँ उड़ रही थीं। वह कर्कश स्वरमें चिल्लाया, - 'सुलभा !'

तात्यासाहबने भी किंचित डाँट-भरे स्वरमें कहा, - 'सुदू, चल जल्दी। हमें कारखाने जाना है न ?'

‘मुझे भी कारखाना जाना है!’—मुकुन्दने कहा।

‘काहेके लिये? आग लगानेको?’—विजयने प्रश्न पूछा।

‘कारखानेमें कर्मचारी हूँ मैं!’

‘नौकरी तो खूब निभा रहे हो! मनसुखलालकी थालीमें खाते हो और उसीमें छेद कर रहे हो! उनके खिलाफ़ इन भोले-भालोंको भड़का रहे हो!’

‘मैंने ग्यारहसे लेकर चारतकका अपना समय कारखानेको किरायेपर दिया है। मैंने उसे अपने विचार नहीं बेच दिये हैं!’

‘वाह रे धर्मगज! तात्यासाहब, सुना आपने? चोर और ऊपरसे—’

मुकुन्द कुछ प्रत्युत्तर दे ही रहा था तभी मुलभा उठकर सामने आयी और विजयकी ओर तीव्र दृष्टिसे देखती हुई बोली,—‘दूसरेको चोर कह देनेसे कोई साब नहीं बन जाता इस दुनियामें!’

शब्दोंसे शब्द न बढ़ें इसलिये मुकुन्द विजयसे बोला,—‘कम-से-कम थोड़ा घैठ ही लो इस झोपड़ीमें। ये बेचारे इतनेसे ही खुश हो जायेंगे!’

‘बड़ा आग्रह किये जा रहे हो तबसे! परंतु ‘घरमें नहीं दाने और अम्मा चली भुनाने’ जैसा हाल हो रहा है साग। ऐसी झोपड़ीमें, चाहे प्राण भी चले जायें, पर मैं क्षण भर भी नहीं बैठूंगा!’

‘परंतु ये लोग सालके बारह महीने और जीवनके सारे साल इसी प्रकारकी झोपड़ियोंमें बिताते आये हैं।’

‘बिताये होंगे! उनसे हमारा क्या संबंध?’

‘वे हमारे अन्नदाता हैं!’

विजयने झोपड़ीमें खड़े उन ग्रामीणोंकी ओर तुच्छतासे हँसकर देखा और तात्यासाहबकी ओर मुड़कर कहा,—‘अब भाषण शुरू हो जायेगा, देख लीजिये! मार्क्स, लेनिन, स्टैलिन, कुल्हाडी, हथौड़े! हः हः हः! मुकुन्द, कुल्हाडियाँ और हथौड़े गरीबोंके खिलौने नहीं हैं, समझे?’

मुकुन्दके चेहरेपर झटपट एक तेजस्वी रेखा चमक गयी। उससे ऐसा मालूम हुआ कि वह कोई विलक्षण उत्तर देगा। परंतु विजयकी बात खत्म होते होते ही मोटरका हॉर्न जोरजोरसे बजने लगा इससे स्पष्ट था कि विठू लौट आया होगा। मुकुन्दकी ओर पीठ फेरता हुआ विजय बोला,—‘अच्छा, करते रहो अपने अन्न-दाताओंसे बातें!’

सुलभाने मुकुंदको इशारेसे साथ चलनेके लिये कहा। विजयको पहले इसका पता ही न चला। खेतकी आधीसे अधिक सड़क तय करनेके बाद, उसने लौटकर देखा तो सुलभाके साथ मुकुन्द चला आ रहा है और उनके पीछे वह बूढ़ा मुसलमान काश्तकार भी है। वह मन-ही-मन क्रोधसे जलने लगा।

शिरगाँव जाते समय दूकानसे एक साइकिल विटूने ले ली थी। इसलिये वह इतनी जल्दी लौट सका था। तात्यासाहब और सुलभा मोटरकी पिछली सीटोंपर बैठे। इस इरादेसे कि विजयके बैठनेके बाद मैं बैठूँगा, मुकुन्द दूर खड़ा हुआ था। साथ ही उस बूढ़े किसानसे धीरे धीरे वह कुछ बातें भी कर रहा था।

गाड़ीमें बैठते समय विजयका मन कुछ असमंजसमें पड़ गया था। उसके मनकी यह दशा देखकर मुकुंदको हँसी आये बिना न रही। अगली सीटपर बैठनेके लिये विजयने दरवाज़ा खोला। लेकिन उसके ध्यानमें एकदम यह आया होगा कि यदि मैं आग बैठूँगा, तो मुकुंद सुलभाके साथ पिछली सीटपर बैठ जायेगा। इसलिये पहला दरवाज़ा खुला हुआ छोड़कर ही उसने पीछेका दरवाज़ा खोला और भीतर जा बैठा।

अगली सीटपर बैठते हुए मुकुंदने कहा, — ‘जीवनमें अगला स्थान मिलनेका संयोग सिर्फ आज ही आया है!’

मोटर स्टार्ट होते होते मुसलमान किसानने मुकुंदको नमस्ते करते हुए कहा, — ‘अच्छा, भाई! अब कल रातको!’

‘ठीक है!’ — मुकुंद बोला।

विजयके शुब्ध मनने कहा, — ‘क्या करनेवाले हैं ये लोग कल रातको?’

• • •

गाड़ी कारखानेके अहातेमें मनसुखलालके ऑफिसके सामने रुकी, उस समय भीतरके दीये जल रहे थे। इसलिये यह स्पष्ट ही था कि मनसुखलालजी कारखानेके दूसरे सिरेवाले अपने बँगलेमें न होकर ऑफिसमें थे। आधी रातको जलनेवाली इस रोशनीको देखकर सुलभा ताड़ गयी कि काश्तकारोंकी ज़मीनोंका सवाल बड़े झमेलेमें पड़ गया होगा। विजय और तात्यासाहब ऑफिसके सामने मोटरसे उतर पड़े। लेकिन उतरनेके बाद विजयने सुलभासे कहा, — ‘केशरताईके बँगलेतक पहुँचाने चलूँ क्या मैं?’

‘तुम्हारे काममें व्यर्थ ही हर्ज होगा? मुकुन्द दिखा देंगे मुझे वह बँगला!’

तुरंत ही विठूकी ओर टकटकी लगाकर देखते हुए सुलभा बोली, —

‘मुकुन्द मुझे भगा नहीं ले जायेगा!’

विठू दूसरी ओर देखने लगा, यह सुलभाके ध्यानमें आया। उसका विश्वास हो गया कि कुछ समयके पहले गैरेजके पीछे खड़े हुए मैंने जो वाक्य सुने थे उनमें कुछ अनर्थ जरूर भरा हुआ है। वह हँसकर विजयकी ओर देखने लगी। वह रूखे स्वरमें बोला, — ‘मुकुन्द नहीं भगायेगा तुम्हें; परंतु तुम ही यदि उसके साथ भाग गयी, तो क्या करूँगा?’

‘उसके साथ दौड़नेकी स्पर्धामें मैं उसे हरा दूँगी। मेरी इस जीतके लिये मुझे एक अच्छा इनाम दे देना!’

इस सारे संवादको सुनते ही तात्यासाहबकी मुद्रा अत्यंत त्रसित ही हो गयी थी। स्टेशनपर सुलभा द्वारा भेजे गये हरे चंपाके फूलोंको लेकर मुकुन्द उनसे मिला था। उस समय उसके कोटमें भी हरे चम्पाका फूल लगा हुआ था। उस क्षणसे उन्हें यह शक होने लगा था कि सुलभा मुझसे दूर जाने लगी है, और इस समय वह उनके मनमें पक्का ज़म गया। उनका मन कह रहा था — मुकुन्दमें ऐसी कौनसी बात है जिसके कारण सुलभा विजय जैसे मनुष्यका तिरस्कार कर उससे प्रेम करे? काश्तकारोंको उभाड़कर वह कल यदि अधिक गड़बड़ी करने लगा, तो उसके हाथमें हथकड़ियाँ पड़े बिना भी न रहेंगी इस रियासतमें! नदी समुद्रसे मुख मोड़कर किसी पथरीले नालेसे मिलनेके लिये दौड़ पड़े, सुलभा भी क्या उसी तरह नहीं कर गयी है? बचपनसे जिसको हृदयसे लगाकर रखा उस लड़कीसे कुछ भला-बुरा कहनेकी मुझे हिम्मत नहीं पड़ती! परंतु बच्चे जब बड़े हो जाते हैं, तब वे हृदयको दुख देने लगते हैं। मनोहरने मुँहमें काल्ख लगा दी, अब सुलभा — मौसीजीको बुलाकर उनके ज़रिए उसके कान उमेटने ही होंगे। इस तरह मनमें निश्चय करके तात्यासाहबने मनसुखलालके सुन्दर रीतिसे सुसज्जित ऑफिसमें क़दम रखा।

• • •

विठूके गाड़ीको गैरेजमें ले जानेतक मुकुन्द और सुलभा ऑफिसके सामने ही खड़े थे। फिर दोनों धीरे धीरे चलने लगे। सुलभाने पूछा, — ‘केशर किस संकटमें है?’

‘संकट!’ — यह कहते हुए मुकुन्द बहुत जोरसे हँसा हो यह बात न थी; परंतु रातके प्रशान्त वातावरणमें उसका वह हास्य सुलभाको बड़ा विचित्र लगा।

‘मैं मज़ाक नहीं कर ही हूँ! कुछ समय पहले तुमने मुझे उसका जो पत्र दिया था, उसमें उसने यह लिखा है!’

‘जीवन जब त्रिलकुल ही अलोना हो जाता है, तब मनुष्यको उसपर कल्पनाकी नमकमिर्च लगानेकी आदत हो जाती है।’

‘कितने निर्दयी हो तुम?’

‘मैं निर्दयी नहीं; निसर्ग निष्ठुर होता है। सुलभा, जो लोग अमीरीमें बढ़ते हैं, उनके दुःखोंको क्या तुम सच मानती हो? कराचीके एक व्यापारीका कुत्ता एक दिन कुछ भी नहीं खा रहा था। उसे लगा, इसे कुछ हो गया है। उसके लिये उसने ब्रंबर्डसे स्पेशलिस्ट बुलवाया! यह समाचार अखबारमें भी छपा था। यदि यह भी छपकर आता कि उस कुत्तेके स्वास्थ्यकी पृष्ठताछ करनेके लिये बड़े बड़े लोगोकी कारें उस व्यापारीके दरवाज़के सामने खड़ी होने लगीं, तो वह भी मुझे झूठ न लगता। इस चित्रके नज़दीक अब यह दूसरा चित्र रखकर देखो: बच्चा बीमार है, फिर भी मज़दूर माँ-बापको कामपर जाना ही चाहिए। पेट घर बैठे बैठे तो भरता नहीं है। काम करनेवाले मज़दूरका बच्चा मौतके दरवाज़ेमें है, इसकी परवाह कोई भी मालिक क्यों करने चला? इलाज तो दूर रहा; बच्चेके पास बैठकर उसके मुँहमें दो घूँट पानी डालनेका संतोष भी ऐसे माँ-बापको नहीं मिलता! अंतमें तड़प तड़पकर वह बच्चा प्राण त्याग देता है। उसके लिये दुःख करते बैठे रहनेकी भी इन अभाग प्राणियोंको फुरसत कहाँ होती है? आजकलकी दुनियामें गुलामोंको रोनेके लिये भी अवकाश नहीं मिलता!’

मुकुन्द और सुलभा जिस पगडंडीसे चले जा रहे थे, उसपर महीन बालू फैली हुई थी। दोनों तरफ़ सुंदर पुष्पवृक्ष लग थे और बीच बीचमें एकाद छोटासा बँगला भी उस सड़कके सौंदर्यकी शोभा बढ़ा रहा था। कारखानेका इतना बड़ा और सुंदर विस्तार होगा, इसकी सुलभाको कल्पना भी न थी। ‘वीरान भूमिको बिल्कुल नंदनवन बना दिया है!’—उसके मुँहसे सहज-भावसे ये उद्गार निकल पड़ें।

लेकिन मुकुन्दके जल रहे मनका प्रवाह अभीतक रुका नहीं था। वह रुखे स्वरमें बोला,— ‘यह सब पैसोंका खेल है, सुलभा! परंतु यह पैसा कहाँसे आता है, यह तुम जैसी बुद्धिमति लड़की भी नहीं सोचती। अमीरोंके पास जो पैसा है, वह शरीरोंके परिश्रमका पसीना है!’

‘सारे कारखानोंको बंद कर देनेपर भी शरीर सुखी हो जायेंगे क्या?’

‘मैं यह नहीं कहता कि सारे कारखाने बंद कर दिये जायें और लोग वल्कल पहनकर कंदमूल फल खाते रहें। और भी बहुतसे कारखाने खुलने दो; उनके मालिक पैदा होने दो; परंतु वह जिनके परिश्रमसे निर्मित होता है, उनका उसपर हक होने दो। सुलभा, किसी समारोहमें सम्मानका स्थान ऊपर नीचे हो जावे, तो सुशिक्षित लोगोंका जी भी ऊपर-नीचे हो जाता है। और जो अपने खूनका पानी करके — क्या पागलकी तरह बकना शुरू कर दिया है मैंने!’

‘तुम्हारे जैसे पागल बहुत थोड़े हैं! इसी लिये दुनियाके दुख कम नहीं हो रहे हैं।’

चलते-चलते मुकुन्द एकदम रुक गया। सुलभाके कंधेपर हाथ रखकर वह बोला,— ‘फिर तुम क्यों पगली नहीं हो जाती? क्या, तुम्हें यह भय है कि लोग कहेंगे कि मुकुन्दने तुम्हारे दिमागमें यह पागलपन भर दिया है? सुलभा, कविता बनानेवाला लोगोंकी सलाह लेकर कविता बनाता है क्या? चित्रकार कौनसा चित्र बनावे, इसके बारेमें अपने माँ-बापके उपदेश मानेगा क्या? हमारा जीवन भी एक भावगीत है, एक रंगीन चित्र है —’

‘क्यों, बीचहीमें कैसे टहर गये?’

‘कारखानेमें जहाँ तहाँ पहलेसे ही गड़बड़ी मची हुई है। इसलिये यह सोचकर कि आधी रातको कोई आन्दोलक भाषण दे रहा है, मनमुखलालके नौकर दौड़कर यहाँ आ जायेंगे, और मेरी अच्छी तरह मरम्मत कर देंगे!’

‘तुम्हारे और मेरे हाथ क्या माड़ झोंकने चले गये हैं?’

मुकुन्द सिर्फ हँसा। अन्यायसे चिढ़ जाना ही जिंदा इन्सानकी पहचान होती है। यह देखकर कि सुलभामें वह भाव पद पदपर दृष्टिगोचर होने लगा है, उसके मनको विलक्षण संतोष हो गया था। मुकुन्द जब हँसा, तब सुलभाने उसकी ओर देखा। उसे भ्रम हुआ जैसे ग्रीष्मके सूर्यका शरदऋतुके पूर्णचन्द्रमें रूपान्तर हो गया हो। उसकी आँखोंके सामने यह स्वप्न घूम गया कि इस विचित्र विषम जगसे हम दोनों कहीं दूर चले गये हैं। उसकी ओर स्निग्धतासे देखनेवाला मुकुन्द मज़दूरोंका नेता नहीं था, किसानोंका समर्थक नहीं था, अपने जीवन-पुष्पको समाजदेवीकी सेवामें अर्पण करनेवाला तरुण नहीं था, बल्कि सुलभाके मनमें छिपा बैठा हुआ, सुलभाके स्वप्नमें दिखायी देकर उससे ठठोली करनेवाला, सुलभाके कानोंमें कुछ कानाफूसी करनेके बहाने उसके गालोंपर ललायी खिला देनेवाला

जादूगर मुकुंद था वह। इस दृश्यका आनंद सुलभाके लिये असह्य हो गया। उसे लगा — ‘मुकुंदके कंधेपर सिर रखकर मूँदी हुई आँखोंसे मुकुंदकी इस मूर्त्तिको जन्मभर देखते रहनेमें ही क्या अपने जीवनकी सफलता नहीं है?’

उसके कंधेपर हाथ रखकर मुकुंद कह रहा था, — ‘सुलभा, जब तुमसे बातें करने लगता हूँ, तब मुझे होश ही नहीं रहता! और तुम्हारा यह स्पर्श — इस स्पर्शसे मैं भूल जाता हूँ कि मैं मुकुंद हूँ। यह कहनेवाले कवि कि तरुणीके पहले स्पर्शमें अमृत है, पागल हैं। उस स्पर्शमें भयंकर विष होता है।’

‘पर वह मेरे स्पर्शमें न होगा!’

‘क्यों?’

‘तुम्हारे लिये तरुणी स्त्रीका यह पहला स्पर्श नहीं है।’

‘मतलब?’

‘तरुणी स्त्रीके पहले स्पर्शका अनुभव तुम्हें पहले ही हो चुका है।’

‘कहाँ?’

‘कराचीमें! उस लड़कीका नाम बताऊँ क्या? केशर!’

‘सुलभा ...’

‘वह स्पर्श उन्मादक होता है, ऐसा लिखा है तुमने! और अब तुम मुझसे कह रहे हो कि उसमें विष रहता है! मुकुंद, दुनियाको धोखा देना सहज है! परंतु स्वयं अपने आपको धोखा देकर कोई सुखी नहीं होता!’

‘सुलभा, कल रातको यदि तुम आओगी, तो सारी बातें मैं तुमसे कह दूँगा।’

‘कल रातको कहाँ आऊँ?’

‘सैनेटोरिअमके उस पारवाले मैदानमें!’

‘रातको?’

‘हाँ, रातको! काश्तकारोंको दिनमें अवकाश कहाँ मिलता है?’

‘सभा है क्या कल रातको?’

‘बहुत बड़ी सभा है! आज और कल कदम और उसके साथी आसपासके गाँवोंमें घूमकर, सारे काश्तकारोंको इकट्ठा करनेवाले हैं वहाँ!’

रातको सभाके लिये शिरगाँवसे इतनी दूर कैसे आऊँगी; तात्या क्या कहेंगे; आदि प्रश्न सुलभाके मनको अस्पष्ट रूपसे छूते हुए चले गये। लेकिन मुकुंदसे उसने दूसरा ही प्रश्न किया।

‘यह बहुत बड़ी सभा होगी ? है न ?’

‘हाँ !’

‘और क्या तुम अपनी खानगी बातें इतनी बड़ी सभामें कहनेवाले हो ?’

‘तुमसे कुछ कहना ही न पड़ेगा । तुम्हें सब दीख जायेगा ! सभाके बाद यदि तुम चाहो तो कहीं बैठकर हम बातें करेंगे । खुले मैदानमें आसमानके छतके तले अपने प्रिय व्यक्तिसे बातें करनेमें — निश्चय ही आओगी न कल ? किसीको साथके लिये भेजूँ क्या ?’

‘मैं कोई दूध-पीती बच्ची नहीं हूँ !’

‘भद्र पुरुषोंकी, दूध-पीते बच्चे बने रहनेकी आदत, कभी छूटती ही नहीं है ।’

‘तब तो तुम्हें कल एक बड़ा भारी चमत्कार दिखेगा !’

‘कौनसा ?’

‘सुलभा रातको अकेली उस सभामें आयेगी !’

मुकुन्द ज़ोरसे हँस पड़ा ।

‘शायद तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा है ?’

‘विश्वास होता है; परंतु उस चमत्कारके कारण मेरा सिद्धान्त कोई झूठ नहीं होगा । साँपको रस्सी समझकर खिड़कीमें चढ़नेकी तुलसीदासकी कथा है ही कि नहीं ?’

मुकुन्दको एक अच्छी चिकोटी काटनेकी सुलभाको इच्छा हुई; परंतु इसी समय गीतके मधुर स्वर कानोंमें पड़नेके कारण उसका ध्यान उस ओर खींच गया । नज़दीकके एक बैंगलेसे वे स्वर आ रहे थे ।

उस बैंगलेकी ओर अँगुली दिखाता हुआ मुकुन्द बोला, — ‘यही है मनसुख-लालका बैंगला !’

‘लगता है, केशर गा रही है ?’

‘हम लोग बीचहीमें बातें करते खड़े हो गये थे, वरना तुमने तो अबतक उसका संकट दूर भी कर दिया होता !’

पगडंडीसे बैंगलेके पिछवाड़ेवाले फाटककी तरफ़ रास्ता गया था । अब गीतके स्वर स्पष्ट रूपसे सुनायी पड़ने लगे !

‘अंतरिचा ज्ञानदिवा मालवूँ नको रे !

मालवूँ नको रे !’

१ ‘अपने अन्तरके ज्ञान-दीपको न बुझा रे, न बुझा !’

मंत्रमुग्धकी तरह मुकुन्द सुनने लगा । सुलभाने भी होश खो दिया । उन्हें यह आभास हुआ कि उन स्वर-लहरियोंके विमानमें बैठकर हम दूर किसी सुंदर प्रदेशको चले जा रहे हैं !

गाना समाप्त होनेपर दोनों अगले द्वारके फाटककी ओर आये । फाटकके पास पठान पहरी बैठा हुआ झपकियाँ ले रहा था । मुकुन्दकी ओर दृष्टि जाते ही वह उठकर खड़ा हो गया । इससे सुलभाको आश्चर्य हुआ; परंतु मनसुखलालने अपने पत्र-व्यवहारका कार्य मुकुन्दके ज़िम्मे लगाया था जिससे उसे वारंवार बँगलेपर आना पड़ता था । इसलिये पठानकी दृष्टिसे मुकुन्द सलाम करने लायक योग्यता रखनेवाला साहब ही था !

मुकुन्द सुलभाको केशरके कमरेकी ओर ले गया । कमरेका द्वार बंद था । सुलभाने द्वारपर दस्तक दी । परंतु भीतरसे किसीने हूँ या चूँ न किया । मुकुन्दने जोरसे द्वार खटखटाया । केशर कठोर स्वरमें भीतरसे चिल्लाया, — ‘जाओ, अपना रास्ता नापो !’

सुलभा और मुकुन्द दोनों आश्चर्यचकित हो गये । सुलभा जोरसे बोली, — ‘केशर बहन, मैं आयी हूँ तुम्हारे पास !’

अब ज़रूर केशर दरवाज़ेके पास आयी होगी । दरवाज़ेके बोल्टको वह बड़ी सावधानीसे निकाल रही थी । उसने पहले द्वारको आधा खोलकर देखा । और जब उसे विश्वास हो गया कि बाहर सुलभा ही है तब उसने द्वार पूरा खोल दिया; उसके हाथमें बेत देखकर सुलभासे हँसी रोके न सकती थी । वह बोली, — ‘सहेलीका स्वागत करनेकी यह अच्छी रीति है !’

केशर क्षण-भर लज्जित हो गयी । पर तुरंत ही गुस्सेसे बोली, — ‘उस हठीले रतिलालका मुझे बड़ा डर लगता है । अभी कुछ समयके पहले, मुआ शराब पीकर मेरे कमरेमें आया था और —’ केशरके मुँहसे आगे शब्द बाहर न निकले । परंतु उसके सिहरे हुए शरीरने उसपर बीते हुए संकटका सुलभाको बोध करा दिया ।

मुकुन्दके चले जानेपर केशरने सिसकियोंके बीच सुलभाको सारा हाल कह सुनाया ! मनसुखलालने बड़े बड़े सट्टे खेले और उनमें उन्हें अच्छी ठोकर लगी । इसलिये कारखानेके लिये उनके पास पूंजी न थी । सिर्फ़ इसी लिये उन्होंने रतिलालको अपना साथीदार बना लिया था । रतिलालकी इच्छा थी कि केशर पास रहे । केशर मनसुखलालकी रखैलकी लड़की थी । इसलिये विवाहका प्रश्न ही उसके सामने खड़ा न हुआ था । उसे सिर्फ़ केशरके सौन्दर्यकी आवश्यकता थी ।

उसे पैसोंके ज़ोरपर एक सुन्दर लड़की खरीद लेनी थी ! वंशपरंपरासे चली आयी अमीरी और उपभोगके बढ़े हुए विलासोंका धुँआ उसकी आँखोंपर छा गया था । उस लड़कीकी भावनाओंको देखना उन आँखोंके लिये संभव न था ।

जैसे तैसे लड़खड़ाते हुए यह सब हाल सुनाकर केशरने सुलभाके गलेमें बाँहें डाल दीं और कसकर उससे चिपक गयी । उसके पुलकित शरीरकी प्रत्येक हलचलसे सुलभाका हृदय कम्पित हो गया ! केशरने आँसू बहाते हुए कहा, — ‘मनोहरको मैंने तार दिया है !’

‘तार ?’

‘हाँ ! उसके आनेपर वह, मुकुन्द और तुम मुझे इस संकटसे मुक्त करोगे न ? सुलभा, मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ न ? मैं तुम्हारी भाभी ही हूँ !’

सुलभाकी समझमें न आया कि हम तीनोंके एक हो जानेपर भी हम लोग क्या कर सकेंगे । केशरको संतोष देनेकी गरज़से वह बोली, — ‘तुम्हारी माँ क्या अपने सामने तुम्हारा इस तरह गला कटने देगी ?’

‘माँ ? — माँ ही तो मुझे रतिलालकी रखैल बनकर रहनेका आग्रह कर रही है ! केशरने एक पत्र लाकर सुलभाके हाथमें थमा दिया ।

● ● ●

१८

दो पत्र

‘केशर,

कहते हैं कि दुनियामें माँ बनना सबसे बड़े भाग्यकी बात है और यह मुझे सच लगता था ।

तुम्हारे पितासे मेरा विवाह नहीं हुआ है । वह होना संभव भी न था । वे हैं गुजराती ब्राह्मण और मैं कुर्मिन जातिकी एक काश्तकारकी लड़की हूँ । वे लखपति हैं; मैं पेटकी ज्वालाको शान्त करनेके लिये बाजारमें आ कर बैठ गयी हुई एक भिखारिन हूँ । अन्य अभागिनी स्त्रियोंकी तरह मेरे जीवन-को धूलमें नहीं मिल जाना था । इसी लिये एक दिन मनसुखलालकी दृष्टि मुझपर पड़ गयी । उन्हें पसंद आ गयी और विवाहका नहीं, परंतु एक पुरुषसे ही प्रेम करनेका सुख मुझे मिला ।

इस सुखके कारण ही तुम्हारे समय जब मैं गर्भवती थी, तब मैं आनंदसे नाचने लगी । उस समय मुझे यह कल्पना भी न आयी कि बिना विवाह हुए पैदा हुए बच्चेमें बहुत बड़ा अन्तर है । मैं अपने ही सुखमें खोयी हुई थी । किसी कहानीको पढ़ते समय बिना विवाहके पैदा हुए बच्चेके बारेमें कुछ लिखा हुआ दिखायी देता, तो मैं कहती — कितने मूर्ख होते हैं ये लेखक !

दुनियामें पहले युगलको जो बच्चा हुआ था, वह क्या विवाहका ही था ?
उन दोनोंका विवाह करनेके लिये कौनसे पंडितजी आये थे ?

केशर, मनसुखलालके घर आयी, इससे पहले मैं एक गँवार देहातिन थी। रातदिन कठिन परिश्रम करना, अर्ध-पेट रहना, बेदम मार पड़ते हुए भी मुँहसे उफ़ तक न करना और अगर दुख अधिक हो जाये तो देवताओं-की मनौतियाँ मनाते रहना — इतना ही जानती थी मैं। भगवानने मुझे रूप दिया था। पर सुख न दिया था। मुझे सारी दुनियापरसे निछावर कर दिया गया हुआ पति मिला था ! शानदार साफ़ा बाँधता था, डटकर शराब पीता था, जूआ खेलता था, और वेष्ट्याओंके घर चक्कर काटनेवाले अमीरोंको हिकमतसे लूटा करता था — बस, इतना ही आता था उसे। उसके दोस्त बहुत थे। उसकी गैरहाजिरी वे घर आया करते। मैं रोटियाँ सेंकती रहती तो वे उन्हींको मुझसे खानेको माँगते। यदि मैं गोबरसे घट लीपा करती, तो वे बेशरमीसे मुझसे पूछते, — ‘हम आकर हाथ बटा दें तुम्हारा ?’ मुझे उनपर बड़ा गुस्सा आता ! लगता — सामने पड़ा हुआ गोबर उठाकर उनके मुँहपर दे माँ ! बदमाश मुए ! हड्डिका टुकड़ा देखकर कुत्ते जिस तरह चुप नहीं बैठते, उसी तरह कहीं कोई औरत दिखी तो ये दहमारे अंटसंट बकने लगते हैं ! परंतु एक भी पुरुषसे उस समयतक मैंने स्वप्नमें भी अपनेसे हेलमेल न होने दिया।

आगे चलकर मैं मनसुखलालके पास रही। उन्होंने पानीकी तरह पैसा खर्च करके मुझे शिक्षित किया। अपनी रखैलको कोई बिल्कुल गँवारन न समझे, इसी लिये शायद उन्होंने मेरी शिक्षापर इतना खर्च किया होगा। परंतु उसके कारण एक ही जीवनमें दो जन्मोंका अनुभव मुझे हुआ और — माँको अपनी बेटीसे नहीं कहना चाहिए — पर कह ही देती हूँ ! ईश्वर, धर्म और नीतिपरसे मेरा विश्वास उठ गया ! पहले जब गाँवमें थी, तो एक दिन पंढरपुर जानेवाले कुछ यात्री हमारी शोंपड़ीमें ठहरे हुए थे। उनमेंकी एक स्त्रीकी चाँदीकी बिछिया भूलसे हमारे घर ही रह गयी। सुबह जब वे उठकर चले गये, उसके बाद वह बिछिया मुझे दिखायी दी। हाथका काम छोड़कर, मैंने वह ज़हर उठाया और जिस दिशामें वे लोग गये थे उस ओर दौड़ पड़ी। उन लोगोंको रास्तेमें पकड़कर जब मैंने वह जेवर उनके

सुपुर्द कर दिया, तब कहीं मेरे जीको चैन मिली। मैं चुप बैठ जाती, फिर भी भगवानके घर मैं चोर करार न दी जाती। परंतु नीतिके ऐसे होने न होनेवाले काँटे शरीरोंके ही मनमें चुभा करते हैं !

सेठजीके घर रहने आयी तबसे बड़े बड़े लोगोंको मैं देखने लगी। हर-एककी कितनी सफेद और शुभ्र पोशाक रहा करती ! परंतु पोशाक जितनी शुभ्र, हृदय उतना ही काला कट्टा ! चाय प्यालेसे ही पीनी चाहिए; नहीं तो उनकी सभ्यताको धक्का पहुँचता है। परंतु नज़दीक बैठी हुई सुंदर स्त्रीको जानबूझकर कोढ़नीसे छू लेनेसे अथवा मेज़के नीचे अपने पैरसे उसका पैर दबा देनेसे इनकी नक़ली सभ्यतामें कोई धब्बा नहीं लगता। केशर, तुम्हें आश्चर्य होगा ! अच्छे उच्च कुलके और पढ़े-लिखे ऐसे कुछ लोगोंको मैं जानती हूँ जिन्होंने उच्च-पद प्राप्त करनेके लिये, सम्मान प्राप्त करनेके लिये, और अपनी चैनबाजीको कायम रखनेके लिये, अपनी पत्निया, बहनें और बेटियाँ अमीर जानवरोंके बंगलोंपर भेजी हैं ! मैं अपने पतिके शराब पीनेसे ऊब उठी थी। वह तो गँवार ही था। परंतु बंबईमें पढ़े-लिखे लोगोंकी शराबकी नशेबाज़ीका तमाशा मैंने स्वयं देखा है। तुम्हें एक ही उदाहरण देती हूँ। मनसुखलालजीको बड़े बड़े धंधे करनेकी आदत ही है। बीचमें उन्हें एक स्टूडियो खोलनेका जो शौक चर्राया था, यह इसी लिये। उस समय एक बड़े गुजराती लेखक आये थे हमारे घर। उन्होंने शराबके दुष्परिणामोंपर एक नाटक लिखा था जिसे मैं करीब पचीस बार देख चुकी थी। उस नाटकको देखते हुए मैं गद्गद हो जाया करती। ऐसे महान लेखककी चरण-रजसे हमारा मकान पवित्र होगा, इसलिये मैं बड़ी खुश हुई और मैंने उनके भोजनकी शानदार तैयारी की थी ! परंतु खानेपर बैठनेके बाद उन्होंने तुरंत कहा,—‘ऐसे सूखे खानेमें कोई मज़ा नहीं, भई !’ इस प्रकार उन्होंने भूमिका बाँधी। उस रातको मेरे ही सामने शराबकी न जाने कितनी बोतलें खाली हुई ! उस रातको उस लेखकने हमारे घस्की नौकरानीका हाथ पकड़कर उससे यह कहते हुए कि, ‘मैं तेरे बापकी तरह हूँ, बेटा !’ ऐसा ऊधम मचा दिया था कि उसे सम्हालते सम्हालते तेरे पिताजीको और उसने जो कय कर दी थी उसे साफ़ करते करते नौकरोंकी नाकमें जो दम आ गया था, उसकी याद आ जाती है,

तो अब भी मुझे हँसी आती है। परंतु उस दिन सारी रात रो रोकर मैंने अपनी आँखें फुला ली थीं। मानो कोई ऐसे प्रिय व्यक्तिकी ही मृत्यु हो गयी हो, जो मुझे अत्यंत ही प्रिय था—इतना दुःख मुझे हुआ था ! केशर, मरणप्राय दुःख हो—ऐसा ही प्रसंग था वह। मनुष्यतापरकी मेरी श्रद्धा उस दिन मर गयी। नीति और पवित्रता—ये केवल मीठे शब्द हैं। दुनियामें इन्सान नहीं हैं। इन्सानकी खाल ओढ़े हुए जानवर हैं। जानवरोंकी तरह वर्ताव करनेमें मनुष्योंको आनंद होता है, उसका कारण यही है।

मैं बहुत पुस्तकें पढ़ती रहती हूँ। मराठी भाषाकी प्रायः सभी कहानियाँ, नाटक और उपन्यास मैंने पढ़ डाले हैं। परंतु इनके पढ़नेके कारण मेरी गुमि हुई श्रद्धा वापस नहीं लौटी। समय नहीं पड़ता इसलिये मैं पुस्तकें पढ़ती हूँ। पढ़ पढ़-कर मैं अच्छी बोलनेवाली हो गयी हूँ। पराया मेरा ओर देखे, तो उसे यह कभी न लगेगा कि मैंने बचपनमें, खेतोंमें काम किया है ! उन दिनों गोबरसे मेरे हाथ भरे रहते थे। अब वे इत्रसे मढ़कते हैं। परंतु इसको छोड़कर, उस समयकी और आजकी दुनियामें दूसरा कौनसा फर्क पड़ा है।

मैं मनसुखलालके पास रहने लगी, तब दुनियापरका मेरा विश्वास उठ चुका था। और इसी लिये जब तू मेरे गर्भमें आयी, तब मुझे रत्ती-भर भी बुरा न लगा। मैं माँ बननेकी भूखी हो गयी थी। बेटा, वह भूख तूने तृप्त कर दी। भूखा मनुष्य अन्न देनेवालेकी जाति-पाति नहीं देखता। वही बात है यह। यदि मैं कहूँ कि पेटमें तेरी हलचल महसूस होते ही मेरे मनमें जो गुदगुदी हुई थी, वे तेरा गाना सुनकर होनेवाले आजके आनंदकी अपेक्षा भी अधिक मीठी थी, तो तुझे कदाचित् यह सच भी न लगेगा। परंतु यह बिलकुल सच है। जब तू माँ बनेगी, तभी इसकी सच्चाईका तुझे पता चलेगा। बहुत समयतक मुझे यह सच ही न लगता था कि तू मेरी है। लताको फूल आनेपर छोटा बालक उसकी ओर आश्चर्यसे देखता है न ? ठीक उसी तरह मैं तेरी ओर देख रही थी। जिस दिन तेरा जन्म हुआ, उस दिनसे मेरा पुनर्जन्म शुरू हुआ। तू टकटकी लगाकर मेरी ओर देखने लगती, तो मैं भी तेरी ओर टकटकी

१३ द्वा चं.

लगाये घंटों बैठी रहती। तू जब खुनखुना बजाती, तो सारा मधुर संगीत मेरे कानोंमें गूँजने लगता। चंदामामा जब बादलोंकी ओटमें छिप जाता, तो तू रोने लगती ! उस समय उन बादलोंपर मुझे बड़ा गुस्सा आता ! फूः करके तू दूध थूक देती तो मुझे लगता मेरे शरीरपर जैसे किसीने अमृत बरसा दिया हो। तुझे छातीसे लगाकर तरे कोमल गालोंको चूमते समय मुझे जो लगता था उसका वर्णन मुझसे ही क्या, किसी कविसे भी करते न बनेगा !

केशर, जिस दिनसे तू पैदा हुई, उस दिनसे मैंने तरे सारे शौक पूरे किये। तू बड़ी होने लगी, सुन्दर दीखने लगी, हठ करने लगी — परंतु मुझे लगता, मेरी केशर अभीतक बच्ची ही है। तरे पिताजीने भी तरे सुखके लिये पैसा खर्च करते समय आगे-पीछे न देखा ! तुझे स्कूल जानेके लिये स्वतंत्र कार दी, तुझे संगीतकी शिक्षा देनेके लिये शिक्षक रखा, एक फूलकी तरह तुझे उन्होंने बढ़ाया।

और अब इसी फूलको वे एक जंगलीके हवाले कर रहे हैं। यह जानते हुए भी कि वह उदंड इस फूलको मसल डालेगा, उसीको सौंपने जा रहे हैं। केशर, इस समय यदि तुझे अपने पिताजीपर क्रोध आ जाय, तो यह स्वाभाविक है। रतिलाल जैसे मनुष्यकी रखैल बनकर रहना — छिः ! तुझे ही क्यों, पर किसीको भी यह पसंद न होगा, यह मैं भी जानती हूँ। परंतु मनसुखलालने मुझसे सच्चा प्रेम किया है, तुझसे सच्चा स्नेह किया ! उनपर मुझे दया आती है ! विलक्षण बड़े बड़े धंधे किये बिना उनसे रहा नहीं जाता। कहीं स्टूडियो खोलेंगे, कहीं सट्टे खेलेंगे, तो कहीं कारखाने बनाने लगेंगे। उनके खूनकी एक एक बूंदमें साहस भरा हुआ है ! परंतु हालके कुछ सट्टोंमें एकके बाद एक ठोकर खाकर उनकी हालत बहुत गिर गयी है। सिर्फ इसी वजहसे इन्होंने रतिलालको अपना साथीदार बना लिया है। कारखानेमें बहुतसी पूंजी उसीकी लगी हुई है। गन्नेकी काश्तके लिये आवश्यक काश्तकारोंकी ज़मीनोंको राजासाहबने कारखानेके लिये देना मंजूर कर लिया था। परंतु सुनती हूँ कि इसके लिये भी उन्हें खासी मोटी रिश्वत देनी होगी। अकेला दीवान ही पचास हज़ार रुपये माँगता है !

रतिलाल निरा पत्थर है। परंतु इस पत्थरके नीचे तेरे पिताजीका हाथ दब गया है न ? मैं जानती हूँ कि जिस तरह माँमें बच्चेके लिये दूध पैदा होता है, उसी तरह पुरुषके प्रति स्त्रीके मनमें प्रेम उत्पन्न होता है। जिसके प्रति हमें प्रेम होता है, उसको ही प्रेम देनेमें स्त्रीके हृदयको विलक्षण आनंद होता है। परंतु यह आनंद मेरे हिस्सेमें न आया और इस अभागिनी माँके गर्भसे जन्म लेनेके कारण तू भी उससे वंचित रहेगी। अब मुझे ऐसा लगने लगा कि यही अच्छा होता कि मैं ब्राँझ रही आती और मेरा जीवन उदास बना रहता। यदि तू किसी गरीब किसानकी झोपड़ीमें जन्म लेती, तो आजसे अधिक सुखी रहती।

छिः ! झोपड़ीमें इन्सानको सुख कहाँ मिलता है ? कारखानेके लिये किसानोंसे ज़मीन छीननेकी कोशिशें जो शुरू हो गयी हैं न, ऐसे ही किसी किसानके ज़मीनकी झोपड़ीमें यदि तू होती, तो वहाँ तुझे कौन सुख देने देता ? ज़मीन छीन जानेके बाद तेरा पति तुझे बंधवई ले जाता। दिन-भर किसी मिलमें मर मर काम किये बग़ैर और किसी कबूतरखानेमें रात काटे बग़ैर तुम्हें दूसरा चारा न रहता और तुझ जैसी सुंदर लड़कीका शील वहाँ —

केशर तेरी माँ गरीब थी, यह उसका पहला गुनाह है; सुंदर थी, यह उससे भी बड़ा गुनाह है ! पति निरा जानवर था, फिर भी मैं उसके साथ ईमानदार रही। परंतु दुनियाको मेरे ईमानकी ज़रूरत न थी।

मेरा पति एक कल्लेके मुकद्दमेमें फँस गया था। सब लोग कहने लगे कि उसे फाँसीकी सज़ा होगी। मेरा कलेजा काँप उठा। वह शराबी था, व्यसनी था। उसके बचावके लिये मैं बड़े बड़े वकील और बैरिस्टर कहाँसे लाती ? अंतमें उसके मित्रोंने एक हिकमत निकाली। जिस जजकी अदालतमें मुकद्दमा था, उस जजको रिश्वत लेनेकी आदत थी। पैसोंकी नहीं, सुन्दर स्त्रीके रूपकी ! मेरे पतिकी तरफ़से एक वकील पैरवी कर रहा था। मुझसे यह कहकर कि वकीलने बुलाया है ये लोग मुझे उसके घर ले गये। वहाँ जो बातें हुईं उनसे मुझे धुँधली-सी कल्पना हो गयी कि मुझपर क्या बीतनेवाली है। मैंने हाथ जोड़कर उस पढ़े-लिखे वकीलसे कहा, — ‘महाराज, मैं आपकी धर्मकी बहन हूँ।’ इससे आगे मुझसे कुछ

बोला ही न जाता था। जीमें आया कि भाग जाऊँ, पर पैर ही अपनी जगहसे उठते न थे। फाँसी जानेवाले पतिकी चीखें कानोंमें गूँजने लगीं। वकील मुझे उस जजके घर ले गया और—

मेरा पति फाँसीकी सज़ासे छूट गया, परंतु मैं मनुष्योंमेंसे उठ गयी। उसे काले पानीकी सज़ा हुई और वहीं उसका देहान्त हो गया। दुनियाको न्याय देने बैठे हुए जानवरने मेरी इज्जत लेकर छः महीनेके बाद मुझे छोड़ दिया। स्वजातीय और परिचित सारे लोग मेरे मुँहपर थूकने लगें। मैं बंबई जाकर बाज़ारमें बैठ गयी। मनसुखलाल यदि उस नरकसे मुझे न ले आते, तो गंदे रोगसे सड़ते हुए बंबईकी किसी सड़कपर प्राण त्यागनेका मुझे मौक़ा आता! उनके इन उपकारोंको मैं कैसे भुला दूँ? मेरे पैरोंके सगुनसे दो-तीन बार उनका काम सम्भल गया है। इस समय भी उनके बुरे दिन हैं। इस वक़्त उन्हें छोड़कर मैं कैसे चली जाऊँ? कहाँ जाऊँ? तुझे इस आफ़तसे बचानेके लिये मुझे उनको छोड़ना पड़ेगा। यदि हम दोनों यहाँसे चली भी जायें, फिर भी तुझ जैसी लड़कीसे विवाह करनेवाला अच्छा मनुष्य मिल ही जायेगा, इसका क्या भरोसा है? दुनियांमें भलमनसाहत है इस बातपर मुझे विश्वास नहीं है! बाहर जाकर ज़हर ही पीना है, तो मनसुखलालका फ़ायदा हो, इस रीतिसे उसे घरमें ही पीना अच्छा नहीं है क्या?

उस दिन वह वकील यदि मुझे धर्मकी बहन मान लेता तो—तो केशर, तू बिना विवाहकी लड़की न रहती, और फिर यदि रतिलाल तुझे अपनी रखैल बनानेकी बात कहता, तो मुझे इतना गुस्सा आता कि मैं उसकी ज़बान खींच लेती। परंतु क्या करूँ? मेरा ही मन मरा हुआ है। वह अपने आप नहीं मरा, गला दबोचकर वह मार डाला गया है। उस बेशर्म जजने, उस स्वार्थी वकीलने यह खून किया है। वह वकील यहीँका, इसी शिरगाँवका था। अभी भी जीमें आता है—उसे खोज निकालूँ और उससे बदला लूँ। परंतु मेरा मन मुर्दा हो गया है। वह अब क्या बदला लेगा?

मैं बड़ी बेचैन थी। मुझे कुछ भी नहीं सूझता था। इसलिये यह सब लिखा है। केशर, यह दुनिया ग़रीबोंकी नहीं। आजकी दुनिया सत्यकी नहीं, सत्ताकी है। हो चुकी घटनाके आगे चुपचाप गर्दन झुका देनेके

सिवा हम जैसे कमजोरोंको कुछ भी करते नहीं बनता इस दुनियामें !
वेटा, तू अपनी इस कमजोर माँपर क्रोध न करना। तू ही मेरी माँ है।
मुझे हृदयसे लगा और मेरे गुनाह माफ़ कर दे।

तेरी अभागिनी माँ

• • •

पत्र समाप्त करके सुलभाने केशरकी ओर देखा। शून्य दृष्टिसे ऊपर गिरगिराने-
वाले बिजलीके पंखेकी ओर देखती हुई वह पलंगपर बैठी हुई थी। सुलभाको
लगा कि इस समय उसके मनमें शायद यही विचार उठ रहा होगा कि इस पंखेकी
तरह ही मेरा जीवन परतंत्र है। वह धीरेसे उसके पास गयी और उसके मस्तकको
अपने कंधेपर रखकर थपथपाने लगी। सहानुभूतिके उस स्पर्शसे केशरकी आँखोंसे
आँसुओंकी धाराएँ बहने लगीं। सुलभाकी आँखोंसे भी केशरके मस्तकपर उष्ण
अश्रुविंदुओंका अभिषेक शुरू हो गया। दोनों बहुत देरतक चुप थीं ! अंतमें
केशरके मस्तकको दोनों हाथमें पकड़कर सुलभाने उसे अपनी ओर मोड़ा और
हँसते हुए वह बोली,— ‘केशर, विपत्तियाँ रोनेवालोंकी परवाह नहीं करतीं। लड़ने-
वालोंसे डरकर वे भाग जाती हैं !’

केशरके दुःखका आवेश भी कम हो गया था। वह भी हँसकर बोली,— ‘मैंने
भी अब लड़ाईकी तैयारी शुरू कर दी है।’

‘लड़ाईकी या शादीकी ? मनोहरको तुमने जो तार भेजा है, वही तैयारी है
क्या तुम्हारी लड़ाईकी ?’

‘भागकर ही इस लड़ाईको जीतना है ! हाँ, पर उस काममें मुझे तुम्हारी
मददकी ज़रूरत होगी। समझी ? मित्र-राष्ट्रको भेजनेके लिये एक खलीता मैंने
कुछ समयके पहले तैयार भी कर रखा है !’

केशरके द्वारा दिये गये दूसरे पत्रको सुलभा पढ़ने लगी —

‘प्रिय सुलभा बहन,

मुकुंदके साथ मैंने जो पत्र भेजा था उसे पढ़कर तुम बड़े असमंजसमें
पड़ गयी होगी। उस समय मेरा मन ही स्थिर न था। कोई गला दवाने
लगे और मनुष्य जिस तरह अंटसंट-सा कुछ भी चिल्लाता है, उस तरह
मुझे हो गया था। मनोहरको तार भेजा और तुम्हें पत्र भेजा। बहुत बार
लगा कि मुकुंदके सामने दिल खोलकर रख दूँ, परंतु उससे कुछ कहनेकी

हिम्मत ही न पड़ी। प्रेमका मज़ाक उड़ानेकी बहुत बुरी आदत है उसकी। परसों बंबईमें उसने मनोहरको रुला दिया। बातें क्या मजेदार करता है! पर लगता है जैसे उसके हृदय ही नहीं है। सज्जन होकर हृदय न रखनेवाला उसके समान मनुष्य देखती हूँ तो मनको बिजलीका धक्का-सा लगा जाता है।

साथमें माँका पत्र भेज रही हूँ। उसे पढ़ोगी तब तुम्हें पता चलेगा कि मेरे जीवनकी कैसी धज्जियाँ उड़नेवाली हैं! और यह सब है इस कारखानेके कारण! लगता है, सीधी जाऊँ और इस कारखानेके विरुद्ध एक बड़ा आन्दोलन खड़ा कर दूँ।

जीजी, केवल पैसोंके बलपर एक पुरुष किसी लड़कीको खरीदे — तो यह क्या दुनियाका न्याय हुआ? जब इस रतिलालको देखती हूँ तो मेरे वदनमें जैसे आग लग जाती है और किस्मतने मुझे इस जानवरकी रखैल बननेका दाँव लगाया है। इस जुल्मके आगे मैं ज़रा भी न झुकूँगी। मेरा जिससे प्रेम है उसके साथ जीवन बिताऊँगी, नहीं तो आनंदसे मौतको गले लगा लूँगी।

स्त्रीका प्रेम क्या सड़कके किनारे बिकनेवाली खोचेमें रखी मिठाई है? बिना किसी पराक्रमके अथवा बिना किसी बड़े गुणके क्या कोई पुरुष रमणीके मनको मोहित कर सकता है? मनोहरसे मेरी भेट होनेसे पहले ऐसा एक ही पुरुष मुझे मिला था। कराचीकी वह विलक्षण रात मैं आज भी नहीं भूली हूँ। उसके साथ कमरेमें बिताई हुई वह रात। उसका वह विलक्षण आनंद देनेवाला स्पर्श —

क्या व्यर्थकी बातें लिखना शुरू कर दिया है मैंने! हाँ, पर तुमसे मैं कुछ भी छुपाना नहीं चाहती। इसलिये यह ऊपर लिखा हुआ मज़मून ज्योंका त्यों रहने दिया है। वरना इसे फाड़कर क्या दूसरा पत्र नहीं लिख सकती थी?

मनोहर आया कि मैंने निश्चय किया है कि उसके साथ कहीं भाग जाऊँगी। हमारे भागनेका सारा प्रबंध तुम्हें ही करना होगा, समझी? सौमद्र नाटकमें कृष्ण हिकमतसे सुभद्राका अर्जुनसे विवाह करा देता है न?

वहाँ भाईने बहनके लिये जो किया, वही अब बहनको भाईके लिये करना चाहिए। समझी मेरी नन्दरानी !

तुम्हारी ही —
'केशर'

• • •

कारसे शिरगाँव लौटते समय इन दोनों पत्रोंके मज़मून सुलभाके मस्तिष्कमें घूम रहे थे। यह बात न थी कि ज़मीनें लेनेके बारेमें आगे क्या नीति निश्चित हुई है, इसे जाननेका उसे कम उत्सुकता थी। परंतु तात्यासाहब और विजय एक दूसरेसे एक भी शब्द नहीं बोल रहे थे। इसलिये सुलभाको चुप रहना ज़रूरी था।

विजयके बैगलेमें बिस्तरपर एक घंटा पड़े रहकर भी उसे नींद नहीं आ रही थी। यह बात सच थी कि वह स्थान नया था; परंतु उसके मस्तिष्कमें हो रहे विचारोंका कोलाहल इससे भी अधिक नया था।

उसका मन कह रहा था — दुनिया शरीबोंकी नहीं है। वह क्यों नहीं है? दुनियाको ज़िंदा कौन रखता है? दुनियाको जो रम्य रूप प्राप्त हुआ है वह किसके परिश्रमका फल है? आजकी दुनिया शरीबोंकी न होगी; परंतु कलकी दुनिया उनकी क्यों न होनी चाहिए? परंतु दुनियामें इतना बड़ा फर्क पड़ जायेगा क्या? इस दुनियामें आपसे आप कुछ भी नहीं बदलता। किसी भी देवताकी मूर्ति पत्थरमेंसे प्रकट नहीं होती। वह किसी मूर्तिकारके द्वारा पत्थरमेंसे निर्मित की हुई होती है। फिर अब इस दुनियाको यह नया रूप कौन देगा? शरीबोंमें ताकत नहीं है। अमीरोंकी इच्छा नहीं है! इन दो दुनियाओंकी सीमापर रहनेवाले मनुष्योंको ही इस क्रांतिका नेतृत्व करना होगा। उनकी आँखोंपर अमीरीका धुँआ नहीं छाया होता और उनकी आँखोंसे शरीबीके आँसू नहीं बहा करते। इसलिये खुली आँखोंसे सारी वस्तुस्थितिको वे स्पष्ट रूपसे देख सकते हैं। उनके हृदय उपवासोंसे सूखे नहीं होते और विलासके कारण सड़े हुए भी नहीं होते। एक दूसरेसे तिल-मात्र भी स्नेहसंबंध न रखनेवाली इन दो दुनियाओंमें, यदि कोई मनमाना संचार कर सकता है, तो वे मध्यम वर्गके लोग ही हैं! यह उनका कर्तव्य ही है कि वे यह कोशिश करें कि कलकी दुनिया शरीबोंकी हो।

इतना सोचनेके बाद इसके आगे सोचे बिना उसके मनसे चुप बैठ ही नहीं सक्ता था। वह इसे जिन लोगोंका कर्तव्य कह रही थी, उन्हीं लोगोंमें वह भी

थी। उसके हृदयसे एक ही गंभीर प्रश्न बार बार सुनायी पड़ने लगा,—

‘सुलभा, क्या करेगी? अब तू क्या करेगी? मुकुन्द और विजय, दीदी और केशर—इन दो ध्रुवोंसे संबंधित मनुष्योंसे तेरा समान संबंध आया है। किस दुनियामें तू जायेगी? किसकी तरफसे लड़नेमें तू अपनी जीवनशक्तिको खर्च करेगी?’

इस प्रश्नके मूर्तिमान उत्तरके रूपमें ही शायद उसकी आँखोंके सामने मुकुन्दकी मूर्ति खड़ी हो गयी। कल रातको मुकुन्दने मुझे किसानोंकी सभामें बुलाया है। अँधेरेमें इतनी दूर मैं अकेली जाऊँ न? अँधेरा और एकाकीपन अधिक महत्त्वके प्रश्न नहीं हैं। इनसे अधिक महत्त्वका प्रश्न यही है कि तात्यासाहबसे क्या कहा जाय अगर विजयको यह पता चल गया कि मैं कहाँ गयी थी, तो तात्यासाहबके कान भरकर मुकुन्द और मेरी मैत्रीको तोड़ डालनेका क्या वह प्रयत्न नहीं करेगा?

इससे कल रातको सभामें न जाना ही अच्छा होगा। परंतु मुकुन्द मेरी बात जोहता रहेगा। यदि मैं नहीं गयी, तो वह निराश हो जायेगा। ऐसा वर्ताव करनेमें जिससे उसके मनको आनंद हो, मेरे मनको भी विलक्षण आनंद होता है। यह प्रीतिका ही लक्षण नहीं है क्या? प्रीति जीवनके मार्गकी एक ओर फूलने-वाली लता है! इससे अधिक मुझे प्रीतिकी कोई कीमत नहीं मालूम होती थी। परंतु यह लता तो हृदयमें खिलती है। वह सिर्फ क्षणिक आनंद नहीं देती। जीवन-कलहके कोलाहलमें भी दो तारोंके सुसंवाद द्वारा निर्मित हुआ मधुर संगीत वह सुनवाती है। मुकुन्दविरहीत जगकी कल्पना भी अब मैं सहन नहीं कर सकूँगी।

परंतु उसका मुझसे इतना निर्मल प्रेम है क्या? केशरने अपने पत्रमें जिस पुरुषका उल्लेख किया है वह मुकुन्द ही होगा। यह तो केशर भी कह रही थी कि मुकुन्दसे उसकी पहचान कराचीमें हुई है। दोनों रात-भर एक ही कमरेमें थे। ‘तरुणी-का पहला स्पर्श कितना उन्मादक होता है!’—यह उसने अपनी नोटबुकमें लिख रखा है। केशरने भी अपने पत्रमें उसके स्पर्शके आनंदका वर्णन किया है। मुकुन्द—मेरा मुकुन्द क्या ऐसा होगा? चंद्रमापर दाग दिखायी देता है और सूर्यका दाग दिखायी नहीं देता। परंतु सूर्यपर भी तो दाग होते ही हैं न? मनुष्य कितने भी बड़े हों, वे कितने भी उदात्त मालूम हों; पर कहीं न कहीं उन्हें कलंक लगा होता ही है। जगका ऐसा कोई नियम ही है क्या? कम-से-कम मेरे मुकुन्दको तो इस नियमका अपवाद होना था।

उसे प्रोफेसर गरुडने स्त्री और पुरुषोंकी समताके बारेमें जो टिप्पणियाँ दी थीं, उनकी याद हो आयी। उसमें एक विचार यह था - जिसे अपने पूरे जीवनमें केवल एक ही पुरुषके लिये आकर्षण लगता है, ऐसी स्त्री भी दुनियामें न मिलेगी। तब ऐसा पुरुष खोजना कि जिसे एक ही स्त्रीके लिये आसक्ति उत्पन्न हुई, खरगोशके सिरपर सींग खोजनेकी तरह है। परंतु अनेक व्यक्तियोंके लिये आकर्षण लगना कोई पाप नहीं है। यह निसर्गका प्रभाव है। सुधारका मतलब है निसर्ग और समाजका सुखकारी मेल करनेका प्रामाणिक प्रयत्न !

सुलभाको लगा - मुकुन्दको इस समय यहाँ होना चाहिए था। मैंने उससे सब बातें पूछ ली होतीं, उसे मैं माफ़ भी कर देती। फिर उसे एक विलक्षण आभास हुआ। उस आभासके कारण कुछ अजीब-सी सिहरन उसके रोम-रोममें नाचती हुई चली गयी। मंत्रमुग्ध मनुष्यकी तरह उसने आँखें मूँदकर मधुर स्वरमें पुकारा —
‘मुकुन्द, मुकुन्द !’

रात-भर उसे गोकुलका एक दृश्य स्वप्नमें दीख रहा था। मुरलीके मधुर स्वर कुंजवनमें गूँज रहे थे और राधा बार बार पुकार रही थी, — ‘मुकुन्द, मुकुन्द !’



१९

घाटी और शिखर

सत्यसृष्टि और स्वप्नसृष्टिमें आकाश-पातालका भेद होता है, इसका सुलभाको एक अलग ही ढंगसे अनुभव हुआ। उसका मन स्वप्नमें मुकुन्दको खोज रहा था। परंतु मुबह जागनेके बाद, तात्यासाहबने उसे अपने पास बुलाया और बात-चीतके सिलसिलेमें उसे यह इशारा किया कि मुकुन्दसे स्नेह बढ़ने देना इष्ट नहीं है। तात्यासाहब क्रोधसे कुछ कह देते, तो सुलभाको वह अधिक अच्छा लगता। वह भी तड़ातड़ उत्तर दे सकती थी अथवा अपने पक्षका समर्थन कर सकती थी। परंतु तात्यासाहबकी रगरगमें वकालत पूर्ण रूपसे भिदी हुई थी। उन्होंने घड़ी शान्तिके साथ और सुझाते हुए ढंगसे बातें की थीं। एक ओर विजय बैठा हुआ था। वह कुछ कागज़ात देख रहा था। उसकी उपस्थितिके कारण कोई झगड़ा भी कुरेदकर निकालना संभव न था। इसलिये मन-ही-मन क्रोधसे उबलती हुई वह अपने कमरेमें चला दी।

वह खिड़कीसे बाहर देखने लगी। परंतु वहाँ ऐसा कुछ भी नहीं था जिससे उसके सुन्न मनमें ताज़गी आ जाती। अखबार बेचनेवाला एक लड़का कर्कश आवाज़में दस-बारह नामोंके नीलाम पुकारता हुआ चला गया, कसाईके पीछे पीछे एक बकरा कारुण्य-भरे स्वरमें चीखता हुआ जाता उसे दिखायी दिया,

किसी गाँवसे शिरगाँव आयी हुई गाड़ीके मरियल बैल विजयके बँगलेके सामने चुपकेसे बैठ गये और सुंदर सूर्योदय देखनेकी आशासे सुलभाने जब सामने देखा, तो मिलकी चिमनीसे निकल रहे काले धुँएके बड़े बड़े बादल उसे दिखायी दिये।

लेकिन इस अवधिमें उसने अलग अलग तरहके दस-बीस लोगोंको बँगलेमें आते हुए देखा। थोड़ी देरके बाद, कारसे मनसुखलाल और रतिलाल आये। शीघ्र ही उसने देखा कि उनके साथ तात्यासाहब और विजय कारमें बैठकर बाहर चल दिये।

कही भी उसका मन नहीं लगता था। इसी समय एक नौकरने डाकसे आया हुआ उसका एक पत्र उसे लाकर दिया। अक्षर मुकुंदके ही दीख रहे थे। उसने पूनाके पतेपर जो पत्र भेजा था वहाँसे लौटकर यहाँ आ गया होगा ! सुलभाने उसे बड़ी उत्कंठासे खोला।

‘प्रिय सुलभा,

अचानक शिरगाँव जानेका तय हुआ, इसलिये तुम्हें तार भेजा। तुमने मुझे ट्यूशन लगा दी थी; परंतु तुम्हारी पुष्पाके पिताजी और शास्त्रीजीसे मैंने जो अनायास बहस छेड़ दी, वही मुझे खा गयी। दुनियामें दुष्टतासे दुर्बलता ही अधिक है। इन लोगोंसे गीताके किसी श्लोकका मज़ाक बरदाश्त नहीं होता ! धर्म, नीति, तत्त्वज्ञान इन सब बातोंको ये ‘रेडिमेड’ कपड़ोंकी तरह चाहते हैं। बेचारोंके यह ध्यानमें ही नहीं आता कि रेडिमेड कपड़े बदनपर नापसे बने कपड़ोंके बराबर सुंदर कभी भी नहीं दीखते। ईसा सन्के पहलेके जीवनके प्रश्नोंको हल करनेका प्रयत्न करना निरी मूर्खता है। वर्तमानकाल बढ़ती हुई नदीकी तरह होता है। उसका उद्गम भूतकालके पर्वतसे भले ही होता हो। पर क्या, उसके प्रवाहको भविष्यकालके सागरकी ओर नहीं दौड़ना चाहिए ?

अपनी जब मुलाकात होगी, तब मैं तुम्हें पुष्पाके पिताजी और उन गीतानुगागी शास्त्री महोदयकी एक अच्छी नक़ल करके दिखाऊँगा। मुझे दुख होता है सो पुष्पाके लिये। कितनी रुक गयी है उसके मनकी बाढ़। उसमें यह जाननेकी भी शक्ति नहीं है कि हमें समाजका कुछ ऋण भी चुकाना है। किसी संस्कृत श्लोकका अर्थ समझाते समय मैं ऐसी कोई

बात-उससे कहने लगा, तो उसे सुनकर शायद उसे यह शक होने लगा, कि मैं कहीं पागल तो नहीं हो गया हूँ। मेरा वह भाषण सुनकर वह हँसने ही लगी। घरकी चहारदीवारीके भीतर बंद कर रखनेके कारण, ऐसे कितने ही बच्चे निस्तेज हो जाते होंगे ! इन दीवारोंमें बड़ी तो छोड़ ही दो, पर छोटी खिड़कियाँ भी नहीं होतीं। बाहर क्या हो रहा है इसे ये लोग कभी नहीं देख सकते। बाहरकी हवाका एक छोटासा झोंका भी कभी भीतर न आयेगा, बाहरकी धूप, वर्षा, अंधकार और चाँदनीका सिर्फ आवासे भी ये लोग मज़ा नहीं लट सकते !

शिरगाँवमें दीदीको सैनेटोरियममें रख दिया है। वहाँका खर्च हर माह भेज देना ज़रूरी है। साथ ही उसके बाल-बच्चे भी हैं। माँसे अब उन्हें दूर रहना पड़ रहा है। उनके खाने-पीनेका भी अच्छा इन्तज़ाम होना चाहिए। इसलिये अब कोई नौकरी किये बिना मुझे दूसरा कोई चारा ही नहीं है। मैं फिरसे बड़ी विवंचनामें पड़ जाता। परंतु केशर अपने आप ही मेरी कठिनाईको ताड़ गयी। वह बड़ी प्यारी लड़की है। है न ? उसने मनसुखलालसे मेरी सिफ़ारिश कर दी। पहले कराचीमें इसी मनसुखलालके कारखानेमें मैंने हड़ताल करायी थी। इसलिये मेरा शिरगाँव जाना, सेठजीका मुझे नौकरी देना और मेरा उस नौकरीको स्वीकार करना—सभी बातें करीब करीब असंभव थीं। परंतु ऐसा लगता है कि उस लड़कीका अपने पितापर बड़ा प्रभाव है; अथवा सेठजी लोगोंको शायद यह दिखाना चाहते हैं कि मेरी मिलमें हड़ताल करनेवाला मनुष्य अब मेरे ही द्वारपर भीख माँगने आया है ! मुझे नौकरी मिल गयी। सेठजीका पत्रव्यवहार करनेका काम मुझे मिला है। मैंने यह नौकरी दो कारणोंसे स्वीकार की। पहला कारण यह है कि सैनेटोरियमके डॉक्टरसाहबका हालहीमें मुझे एक पत्र मिला है जिसमें उन्होंने लिखा है कि दीदीका स्वास्थ्य दिन-प्रति-दिन गिरता जा रहा है। दूसरा कारण, तुम्हें बता देनेमें हर्ज़ नहीं, यहाँ जब दीदी बीमार थी, तब तुम्हें उनके पास छोड़कर मैं पूना गया था न ? कदम नामका मेरा एक मित्र आजकल पूनामें रहता है। उसके विचार कट्टर समाजसत्तावादी हैं। उसने मुझे एक कामके लिये बहुत जल्दी पूना बुलाया था। कदम दिलका सच्चापण है; परंतु वह कहाँ, कब, क्या बक देगा और क्या कर डालेगा, इसकी

कोई

ठिकाना नहीं। इसलिये उसके कारण सरकारको कोई त्रास न होते हुए भी, उसपर पुलिसकी बड़ी कड़ी नज़र रहती है। उस दिन यदि हम उसके घरमें बैठकर बातें करते, तो यह डर था कि कोई न कोई खुफिया तौरसे हमपर निगरानी ज़रूर रखता। इसलिये उस रातको, हम दोनों टेकड़ीपर चले गये और वहीं बैठे हुए हमने बातें कीं। उसने शिरगाँवके किसानोंकी सारी कथा सुझे सुनायी। उस दिन मुझसे इसने यह भी कहा कि कुछ साथियोंके साथ उसने पूरी रियासतमें दौरा किया है और वहाँके किसान अब अपने हक्कोंको जानने लगे हैं। उसने इसी विचारसे मुझे वहाँ बुलाया था कि यदि मैं शिरगाँवके किसानोंका नेतृत्व स्वीकार कर लूँ, जैसा कि मैंने कराचीमें किया था, तो वहाँके किसानोंकी लड़ाई भी सफलतापूर्वक लड़ी जा सकेगी। वह मुझसे यही कह रहा था कि मैं पूनासे ही बाला बाला शिरगाँव चल दूँ; परंतु बंबईमें दीदीके अस्वस्थ होनेके कारण, मैंने उसका वह प्रस्ताव मंजूर न किया। आज उसका भी पत्र मिला है। उससे यह जान पड़ता है कि यदि इस समय वहाँ कोई आन्दोलन न किया जाये, तो अधिकारी और कारखानेवाले सेठजी काश्तकारोंको समूचे निगल जायेंगे। मैंने सोचा, जब शिरगाँव जाना ही है, तो कारखानेकी नौकरी स्वीकार करके जाऊँ तो अंदरूनी ढाँवपेचोका पता चलता रहेगा जिससे सब लोग चौकन्ना रहकर काम करते रहेंगे। मनसुखलालके कारखानेमें नौकरी करनेका मेरा यह भी उद्देश्य है।

मनकी बातोंको तुमसे कहे बिना मुझे अच्छा ही नहीं लगता। इसकी मैंने आजतक परवाह न की कि लोग क्या कहेंगे, आत्मीय क्या सोचेंगे, और आगे भी मैं इसकी परवाह न करूँगा। सच्चा और संपत्तिसे जो सुख जन्म लेते हैं उनकी ओर मैंने आनंदसे अपनी पीठ फेर ली है। इसी लिये कोई भी काम करते समय स्वयं अपने मनको छोड़कर मैं किसीकी ओर भी कोई ध्यान नहीं देता। परंतु उस मनकी बारीकसे बारीक हलचल-पर भी नज़र रखना मैं सीखा हूँ! इसलिये तुम्हारी सिर्फ याद आते ही उसे किस तरह कोमल गुदगुदियाँ होने लगती हैं, यह मैं जानने लगा हूँ। सुलभा, सच यह है कि समाजके लिये ज़िंदा रहनेवाले मनुष्यको भी स्वयं अपने लिये जीवित रहनेकी इच्छा होती है! बड़ी बड़ी सड़कोंके बिना शहरका

अन्योन्य संसर्ग ठीक तरहसे नहीं होगा, परंतु ऐसी ही सड़कके किनारे यदि कोई बाग हो फिर वह कितना ही छोटा क्यों न हो, तो उसकी शोभा बढ़ जाती है। है न ? हमारे जीवनकी भी बात यही है। बचपनमें शालामें मेरा और तुम्हारा परिचय हुआ और मेरी होशियारीके लिये तुम अपने मनमें गर्व अनुभव करने लगी। मेरी सुलभाका यह गर्व थोथा न निकले इसलिये मैं उस समय जी-जानसे पढ़ा करता था। उस समय उसका मुझे भी पता न चला। फिर तुम्हारे ध्यानमें कहाँसे आवे ?

आगे कराची जानेपर तुम्हारी याद धुँधली पड़ने लगी। भावनामें जब मन व्याकुल हो जाता, तब तुम्हारी मूर्ति आँखोंके सामने खड़ी हो जाती; न खड़ी होती हो सो बात नहीं। परंतु यह विश्वास हो जानेके कारण कि हम दोनोंके जीवन-मार्ग अलग अलग हैं, तुम्हें पत्र लिखकर भी उसे डाकमें छोड़नेकी हिम्मत मुझे नहीं होती थी।

कराचीमें दिनके चौबीस घंटे और सालके बागह महीने मैंने मज़दूरोंके कामके लिये अपने आपको समर्पण कर दिया था। इसलिये जागृतावस्थामें मुझे शायद ही कभी तुम्हारी याद आयी हो। परंतु मेरे चलते-फिरते जीवनपर समाजकी सत्ता चले ही हो, फिर भी स्वप्नपर तुम्हारी ही थी ! पत्थरोंके बीचहीमे हरियाली ऊपर सिर उठा देती है न ? हमारा अन्तर्मन — मनुष्यका व्यक्तिगत जीवन — उसी तरह है।

मैंने एक बड़ी हड़ताल करायी। मज़दूरोंके गलेमें विजयकी माला पड़ी और मिलके मालिकोंने अपने पराभवका बदला मुझसे लिया। कराचीकी सीमाके भीतर प्रवेश न करनेका मुझे सरकारी हुक्म मिला है।

मनुष्यका सामाजिक जीवन जब कम हो जाता है तब वह अपने खानगी जीवनके अभावको तीव्रतासे महसूस करने लगता है। कराचीमें मनपर पड़े कामके तनावके कारण हो, अथवा इस वजहसे हो कि ध्येयका ज्वार हमेशा ही कायम नहीं रहता, मैंने कराची छोड़ी, तो अत्यंत उदास मनःस्थितिमें बंबई आकर, सिवा इसके कि दीदीकी सेवा करूँ, मुझमें किसी कामके लिये उत्साह नहीं रह गया था। मैं सोच ही रहा था कि पूना जाकर कदमसे मिलूँ या नहीं — परंतु तुम रेलगाड़ीमें मुझे मिल गयी और मेरा बचपन

एक दिनमें लौट आया। तुमने भाईदूजके दिन मुझे भाई कहकर मेरी आरती उतारी थी, उसकी मुझे याद हो आयी और —

सुलभा, तुम्हें कल्पना भी न होगी, बिजली पल-भर चमकती है; परंतु वह सारे विश्वको प्रकाशित कर देती है। तुम फिरसे मेरे जीवनमें आ गयी उसलिये कितना उत्साह आ गया है मुझमें! तुम्हारे बारेमें मेरी यह भावना वचनके बराबर निरपेक्ष नहीं है, यह मैं जानता हूँ; परंतु साथ ही मैं यह भी समझता हूँ कि जिनके बीचमें भयंकर घाटी फैली हुई है, ऐसे दो जीवोंका मिलन वर्तमान जगमें संभव नहीं है। तुम समाजके शिखरपर खड़ी हो। मैं उसके नीचे एक बहुत गहरी घाटीमें दौड़ रहा हूँ। मैं यह स्वार्थ-भरी इच्छा कभी न करूँगा कि मेरे लिये तुम इस भयंकर घाटीमें कूद पड़ो। पेड़-पौधोंका सहारा लेकर, चट्टानें चढ़कर कष्टसे मैं तुम्हारे नज़दीक आ सकूँगा, परंतु इसे मैं और तुम हम दोनों ही पसंद न करेंगे। तुम्हारे मुकुन्दकी महानता इसी घाटीमें है। इतनी दूरसे तुम्हारा बीच बीचमें दर्शन हो जाया करे, तो उतनेपर ही मैं मान लूँगा कि जीवनका अनुपम आनंद मुझे मिल गया! हरे चंपाके फूलकी सुगंध दूरसे आती है, फिर भी मन किस तरह मोहित हो जाता है, है न?

मनोहरकी चिंता न करो। मैं ऐसा प्रबंध करके जा रहा हूँ कि मेरे शिरगाँव चले जानेपर भी मनोहरको उस पटानसे कोई त्रास न होगा।

मौसीजीके दर्शनकी बड़ी इच्छा हो रही है। देख कब वह संयोग आता है।

तुम्हारा —
मुकुन्द'

इस पत्रको बार बार पढ़ते हुए सुलभाको लगा कि आज सूरज बहुत आहिस्ता आहिस्ता चल रहा है। रात कब होती है, जब मैं सभा-स्थानपर पहुँचूँगी, तब मुकुन्द मेरा स्वागत किस तरह करता है, इसीका वह लगातार विचार कर रही थी। बीच-हीमें उसने पांडुरंगको पुकारा और उससे अखबार लानेके लिये कहा। वह उन्हें ले आया और एक समाचार-पत्रके 'भविष्य' शीर्षकके नीचे एक स्थानकी ओर अँगुली दिखाता हुआ वह बोला, — 'एक एक बात ऐसी ठीक मिल जाती है कि कुछ न पूछिये!'

सुलभाने हँसते हुए पूछा,— ‘क्या है तुम्हारा आजका भविष्य ?’

पांडुरंग पढ़ने लगा,— ‘वृषभ राशि । दिन ठीक है । जो काम करोगे उसमें सफलता मिलेगी ।’

‘मतलब यह कि आज तुम जो रसोई बनाओगे, वह अच्छी बनेगी ।’

‘आगे देखिये, श्रेष्ठ व्यक्तियोंसे परिचय होगा ।’

‘क्या, महात्मा गांधीसे तुम्हारी भेंट होगी आज ?’

‘गांधीकी क्या ज़रूरत ? पुलिस सुप्रिटेण्डेंट आये थे न ?’

‘पुलिस सुप्रिटेण्डेंट ?’

‘हाँ ! विजयबाबू और वे—दोनों कितनी देरतक बातें करते रहे । हाँ, पर सुप्रिटेण्डेंसाहब है बड़ा भला आदमी । मैं चाय लेकर गया, तो मुझसे भी बातें की उन्होंने ! बोले, चाय बहुत अच्छी बढ़िया बनी है !’

• • •

रात हो जानेपर सुलभा विजयके बँगलेसे बाहर निकली । तात्यासाहब और विजय दीवानजीके यहाँ ज़मीनोंके बारेमें चर्चा करनेके लिये दोपहरसे गये हुए थे, सो अभीतक नहीं लौटे थे । विजयकी बुआसे यह कहकर कि रातको मैं अपनी एक सहेलीके घर ही रह जाऊँगी, सुलभा चल दी । साहसमें भी एक प्रकारका उन्माद और आनंद होता है । उसका अनुभव वह ले रही थी । शहरके बाहर जब वह मुख्य सड़कपर पहुँची, तब ज़रूर उसे एक शंका आयी । यदि तात्यासाहब और विजय दीवानके यहाँसे कारखाना गये हों और वहाँसे लौट रहे हों तो ? उनके लौटनेका यही समय हो तो ? रास्ता भी यही है । कारकी रोशनीमें विठू यदि मुझे देख ले और गाड़ी रोक ले ! उसके गाड़ी रोकते ही, तात्यासाहब पूछेंगे—‘कहाँ जा रही है ?’ तो मैं क्या उत्तर दूँगी ? यदि कहूँ कि घूमने जा रही हूँ, तो गाड़ीमें बैठकर घर वापस लौट जाना होगा । मुकुंद तो वहाँ मेरी प्रतीक्षा करता रहेगा । उसने क्या लिखा है ? हाँ, यह लिखा है कि ‘मैं यह स्वार्थभरी इच्छा कभी न करूँगा कि मेरे लिये तुम इस भयंकर घाटीमें कूद पड़ो ।’ घाटी !—अरे, घाटी ही क्या, पातालमें भी कूद पड़नेके लिये प्रीति नहीं डरती; परंतु पुरुष इसे नहीं समझेंगे । स्त्री हृदयसे प्रेम करती है; पुरुष उसे बुद्धिसे किया करता । स्त्रीके मनमें जब प्रेम उत्पन्न हो जाता है, तो वही उसकी दुनिया हो जाती है । फिर भी उस प्रेमके बाहर थोड़ी न थोड़ी उसकी दुनिया अवश्य रहती ही है ।

ऐसे मधुर विचारोंके बीच सुलभाका बहुतसा रास्ता कट गया। वह सभा-स्थानके नज़दीक पहुँच गयी। सैनेटोरिअमसे थोड़ा आगे बढ़नेपर सभा-स्थानसे आनेवाली प्रकाशकी किणें उसे दिखायी दीं। समुद्रके किनारे वैसे किसी गाँवमें, आधी रातके शान्त समय जैसी मंद-गंभीर ध्वनि सुनायी पड़ती है, उस प्रकारकी आवाज़ भी उस तरफ़से आ रही थी। सड़क छोड़कर सुलभा उस दिशामें चलने लगी। उसके मनमें आया — हमारा यह पुराना ख्याल कि बड़े बड़े पर्वोंपर समुद्रस्नान करनेसे पुण्य मिलता है कोई बिलकुल झूठ नहीं है। मेरे जीवनका मंगल पर्वकाल यही नहीं है क्या? यदि इस जनसमुद्रसे मैं एकरूप हो जाऊँ, तो सिर्फ़ खुदके सुखके लिये प्रयत्न करते रहनेके कारण मुझसे जो पाप हुए होंगे, वे क्षण-मात्रमें धुल जायेंगे।

मैदानमें एकत्रित पाँच-छः सौ किसानोंका वह समुदाय सुलभाको बड़ा स्फूर्तिदायक लगा। गैसके दीयोंकी जगमगाती हुई गेशनीमें उसे अपने पैर धूलसे भरे हुए और अपनी मुद्रा मलीन दिखायी दी। परंतु इस धूलके भीतर कितने सुवर्ण-क्षण छिपे हुए थे! दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह मीलसे पांथप बाँध इस सभाके लिये धूपमें पैदल चलकर लोग आये हुए थे। उनमें पुरुष थे, स्त्रियाँ थीं, नवजवान थे, बूढ़े थे और बच्चे भी थे।

इस समुदायके किनारेसे जाते समय सुलभाका मन उमड़ उठा। क्या, ये इसीके लक्षण न थे कि समाजरूपी पुरुष अब जाग्रत होने लगा है? पढ़े-लिखे लोगोंकी दिखावटी सभासे इस सम्मेलनमें अधिक जान थी — सच्चा तड़पनेवाला हृदय था। उसने चलते-चलते इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई, चारों तरफ़से दो-दो चार-चार किसानोंकी टोलियाँ अब भी आ ही रही थीं। उसे ऐसा भ्रम हुआ कि उस पार एक पेड़के नीचे मुकुंद खड़ा है। उस तरफ़ वह जाने लगी। इसी समय उसके ध्यानमें आया कि अनेक कृषक उसकी साड़ीकी ओर टकटकी लगाकर देख रहे हैं। वह शर्मसे जैसे बिलकुल गड़ गयी। उसके ध्यानमें आया कि मुझे एक मामूली धोती पहनकर आना चाहिए था। समताकी पूजाका यह मंगल क्षण! इस क्षणमें, ऐसी वस्तुका प्रदर्शन करना जो हज़ारोंमें किसी एक ही व्यक्तिके नसीबमें शायद आये तो आवे, एक प्रकारका गुनाह ही नहीं था क्या?

वह इतनी अधिक लज्जित हो गयी कि उसे लगने लगा कि जाकर कहीं छिप जाऊँ। क़रीब क़रीब दौड़ती हुई ही वह जहाँ मुकुंद खड़ा था, वहाँ पहुँची।

‘ओ हो ! सुलभाताई ?’ — कदमने उसका स्वागत किया ।

मुकुन्द शान्तिसे उसकी ओर देख रहा था ।

उसके पास वह बूढ़ा मुसलमान काश्तकार खड़ा था । उसने पूछा, — ‘क्या, शिरगाँवसे आ रहीं हो, बाईसाहबा ?’

‘मैं बाईसाहबा नहीं हूँ, बाबा !’ — उस वृद्धके सामने जाकर हँसते हुए वह आगे बोली, ‘अपनी बेटीको कोई बाईसाहबा नहीं कहता !’

‘बेटी !’ — बूढ़ा चकित होकर बोला ।

‘मैं दूसरे घरमें पैदा हुई हूँ; परंतु जिस घरमें मनुष्य जन्म लेता है, वह मनुष्यका सच्चा घर नहीं होता । हमारा घर यहाँ है । है न मुकुन्द ? और इस घरके पिताजी ये ही हैं !’

अंतिम वाक्य कहते समय सुलभाने जिस भावनापूर्ण दृष्टिसे उस बूढ़ेकी ओर देखा, उससे वह बिल्कुल गद्गद हो गया । उसकी आँखें सजल हो गयीं । वह सुलभाके पास आकर बोला, — ‘बेटा, मैं बच्चा था तब यह समझ मुझमें आ जाती तो — हिंदू और मुसलमान एक दूसरेके दुश्मन नहीं हैं, सच्ची लड़ाई पैसेवालों और कंगालोंकी ही है । मुकुन्द भैया, मैंने अपनेको हमेशा मुसलमान ही समझा और केवल अपनी ही जातिको मैंने अपनाया । तुम नहीं जानते ! एक खूनी पठानको सिर्फ इसलिये कि वह मेरा जातभाई था, मैंने बचाया है । हिंदू हो, मुसलमान हो, जो चूसा जाता है, वह हमारा दोस्त है — यह बात यदि सब काश्तकारोंकी एक बार समझमें आ जाये —’

उस बूढ़ेका भाषण कदम बड़े अभिमानसे सुन रहा था । बीचहीमें वह सुलभासे बोला, — देखा ? मैंने लोगोंको किस तरह तैयार किया है ! प्रत्येक गाँवमें, प्रत्येक झोपड़ीमें जाकर भाषण दिये हैं मैंने ! वह विजय इन किसानोंकी बलि लेने निकला है ! आज वह आये तो यहाँ ! यदि कुल्हाड़ीसे इन लोगोंने उसकी बोटी बोटी न कर दी तो अपना नाम बदल दूँगा मैं !’

मुकुन्द हँसकर कदमकी पीठको थपथपाता हुआ बोला, — ‘भाई कदम, बलि देना और लेना हमारा काम नहीं है !’

‘यह गांधीकी नक़ल मैं नहीं चाहता !’

‘यह गांधीकी नक़ल नहीं है, अस्सल मुकुन्द है । क्या, यह नहीं जानते कि वर्तमान सामाजिक जीवन ही इसपर स्थापित है ? बात इतनी ही है कि यह

हिंसा गुप्त रीतिसे होती है और सभ्यतासे की जाती है ! परंतु एकने यदि गाय मार डाली, इसलिये दूसरा बछड़ेको मार डाले, इसका कोई मतलब नहीं। दुनियासे हिंसाको नेस्त-नाबूद करनेके लिये जितनी हिंसा आवश्यक होगी, उतनी ही सिर्फ क्षम्य हो सकती है। पर तुम तो हर समय डंडोंकी ही भाषामें बातें करते रहते हो —’

कदमके माथपर पड़े हुए बलोंको सुलभाकी तरह मुकुन्दने भी देखा। परंतु उनकी ओर ध्यान न देकर वह उस बूढ़े मुसलमानसे बोला, — ‘बाबा, लोग अभीतक आ रहे हैं ! अभी हम शुरू नहीं कर सकेंगे ! ज़रा उस मंदिरतक हो आता हूँ। खूब ध्यानसे देखते रहना। कहीं दंगा-वंगा न हो जाये !’

मुकुन्दके द्वारा सुलभाको किये गये इशारेको कदमने देख लिया। वह दोनों चलने लगे, तो वह भी उनके साथ हो लिया। यह देखकर मुकुन्द हँसता हुआ बोला, — ‘कदम ! वैसे कोई हमारा खानगी काम नहीं है ! हम लोग सिर्फ़ इधर उधरकी गप्पे ही तो हॉकेंगे ! यहाँ बहुत भीड़ हो गयी है। हो सकता है कुछ गड़बड़ी हो जाये ! ये लोग शायद बाबाकी सुने भी नहीं। तुम्हारे सब पहचानके हैं। तुम्हें वे खूब मानते भी हैं। इसलिये तुम यदि यहाँ हाज़िर रहोगे, तो कोई गड़बड़ न हो सकेगी !’

कदम लौट आया। परंतु उसने लौटते समय बड़ी तुच्छतासे गरदन झटकी। मानो उसने मुकुन्दसे कहा — ‘हम जान गये तुम्हारा पराक्रम ! इधर तो आग भड़कनेका मौक़ा आया है और उधर आप चलि हैं एक लड़कीसे मुहब्बतकी बातें करने !’

थोड़ी दूर चलनेके बाद मुकुन्दने सुलभासे कहा, — ‘मनोहर आ गया है !’
‘कहाँ है ?’

‘उस झाड़ीके टूटे-फूटे मंदिरमें। सुनता हूँ केशरने उसे तार भेजा था। वह सीधा कारखानेमें ही आया। मनसुखलालके बंगलेपर पठान चौकीदारने उसे रोका। इसी समय वह दूसरा पठान भी वहाँ आ गया !’

‘उसका बैरी ?’

‘हाँ ! कुछ पता नहीं चलता कि वह बंबईसे कब और किसलिये यहाँ आया है। उस दूसरे पठानको देखकर मनोहर भागेने लगा। ‘चोर चोर’ कहकर लोग

चिल्लाने लगे । मैं उसी समय पत्रव्यवहारके कागज़ लिये हुए बँगलेकी ओर आ रहा था । इसलिये सब कुछ थोड़ेपर ही निपट गया, वरना — ’

दोनों चुपचाप उस मंदिरके पास आये । फुर्तीसे झाड़ीमेंसे एक जानवर निकल कर भागा । शायद गीदड़ होगा वह ! मुकुंद बोला, — ‘सुबह हो जाती, तो अच्छा होता !’

‘क्यों ?’

‘कहते हैं कि सुबह उठकर यदि गीदड़का मुँह देखें, तो भाग्योदय होता है !’

सुलभा ताड़ गयी कि अपने मनके बोझको हलका करनेका मुकुंदका यह प्रयत्न है । वह बोली, — ‘जिसे इस दुनियामें किसीकी जरूरत नहीं होती, वह भाग्यकी परवाह क्यों करेगा ?’

‘पर मैं कहाँ इतना विरक्त हूँ ? मेरे पास भी एक आशा है ही कि नहीं ?’

‘मेरा नाम क्या ‘आशा’ रखनेवाले हो, क्यों ?’

सुलभाके उस बालककी तरह श्लेषका मुकुंदने बड़े जोरमें हँसकर स्वागत किया । मंदिरके भीतरसे एकदम किसीने पूछा, — ‘कौन है ?’

‘मैं हूँ मुकुंद ! सुलभा आयी है तुमसे मिलने !’

मंदिरकी धूलसे भरी हुई सीढ़ीपर सुलभा मनोहरका हाथ अपने हाथोंमें लिये हुए केवल स्पर्शसे उसे धीरज बँधा रही थी । थोड़ी देरके बाद मनोहर कहने लगा । उसके स्वरमें विग्न कि स्पष्ट रूपसे दिखायी दे रही थी ।

‘तार्ई, मुझे अपनी दुर्बलतापर ही क्रोध हो आया है । बचपनमें तात्याने मुझे कभी भी गरदन ऊपर उठाकर बात न करने दी ! अच्छा काम भी हो, पर उसे भी चोरोमें ही करना पड़ता था ! इस भीरुताको एकदम छोड़ दूँ —’

कुछ लोग मंदिरकी दिशामें ही भागते आ रहे थे । मनोहरको लगा कि एकदम उठकर भीतर चला जाऊँ । परन्तु हिम्मत करके वह वहीं बैठा रहा ।

‘मुकुन्द, मुकुन्द !’ सुलभा पहचान गयी कि आवाज़ कदमकी है । वही बुला रहा है । इसी समय कदम और उसके साथ चार-पाँच आदमी मंदिरके सामने आ पहुँचे । मुकुन्द थोड़ा आगे बढ़ा ।

कदम कहने लगा, — ‘दो लॉरियोंमें पुलिसवाले आये हैं । उनका इरादा सभाको भंग कर देनेका दीख रहा है ! लोग घबड़ा गये हैं ! बाबा लोगोंको समझा-

बुझाकर अपनी अपनी जगहपर बैठे रहनेके लिये कह रहा है। यदि हममेंसे कोई पँवाडा^१ कहनेवाला हो, तो गड़बड़ जल्द शांत हो जायेगी !’

मनोहर एकदम आगे बढ़कर बोला, — ‘तुम्हें पँवाडा कहनेवाला चाहिए ? चलो, मैं चलता हूँ तुम्हारे साथ !’

मुलभा और मुकुन्दकी ओर न देखते हुए मनोहर कदमके साथ चल दिया।

वे जब सभा-स्थानपर पहुँचे, तब उन्होंने देखा कि लाठीधारी पुलिसवालोंको सभा-स्थानमें घूमते हुए देखकर बहुतसे काश्तकार घबड़ा गये हैं। कोई अपने स्थानसे उठकर खड़े हो रहे थे, कोई कोई स्त्रियाँ काँपती हुई आवाज़में बोल रही थीं। कोई कोई बूढ़े माथपर हाथ रखकर बैठे हुए थे।

कदम मनोहरको सीधा मंचपर ही ले गया। वह चिल्लाकर बोला, — ‘अब दो पँवाडे होंगे यहाँ। एक तानाजीका और दूसरा —’ उसने प्रश्नार्थक दृष्टिसे मनोहरकी ओर देखा।

मनोहरने कहा, — ‘गांधीजीका !’

कदमके माथपर बल पड़ गये। वह कुछ कहना ही चाहता था, तभी पुलिस सुप्रिण्डेंट मंचपर आये और मनोहरसे बोले, — ‘मनोहर कालेलकर तुम ही हो ?’

‘हाँ !’

‘तो मैं तुम्हें गिरफ्तार करता हूँ !’

कदमने गुस्सेसे पूछा, — ‘गिरफ्तार ? पँवाडा कहने मंचपर खड़े होनेके लिये गिरफ्तार ?’

‘पँवाडाके लिये गिरफ्तार नहीं कर रहा हूँ। बल्कि खूनके लिये ?’

मनोहरको हिम्मत देनेके लिये मुलभा उसके पास जाकर खड़ी हो गयी। वहाँ-से उसने चारों ओर दृष्टि घुमायी। विजयी मुद्रासे हँसता हुआ विजय उसे दिखायी दिया। उसने सामने देखा। यह देखकर कि पुलिसने एक साथ गिरफ्तारियाँ करना शुरू कर दिया है, किसान लोग घबड़ाकर तितर बितर होने लगे थे। स्त्रियाँ फूट फूटकर रो रही थीं। दोनों हाथ ऊपर उठाकर मुलभा आवेशसे चिल्लायी, — ‘डरो मत, घबड़ाओ नहीं, भागो मत, खड़े रहो !’

● ● ●

२०

मुकुन्दके हृदयमें

उस कोलाहलमें सुलभाके वे हिम्मत भरे शब्द कितने लोगोंको सुनायी दिये होंगे इसका शक ही है। मुकुन्द, कदम, बाबा तथा उनके अन्य सहकारियोंने लोगोंको रोकनेकी जी जानसे कोशिश की, परंतु शेरकी बास आनेके कारण दौड़ रही भेड़ें सिर्फ शब्दोंसे थोड़े ही रुक जाती हैं! कदम और उसके अन्य तरुण साथियोंने गाँव गाँवमें वीररस-पूर्ण भाषण करके इतने लोग इकट्ठे किये थे, परंतु इन लोगोंको उनकी लड़ाईकी पूर्ण कल्पना किसीने मी न दी थी। उनमेंसे बहुतोंका यही ख्याल था कि हम सब एक स्थानमें इकट्ठे हो जायेंगे, सभा करेंगे और हमारे ऐसा करनेसे सरकार हमारी ज़मीनें नहीं छीनेगी। वे सुन चुके थे कि रियासतके बाहर ब्रिटिश सरहदमें गांधीजीने इसी प्रकारका आन्दोलन शुरू किया है। पुलिसका नाम सुनते ही थरथर काँपनेका इन लोगोंका आजतकका स्वभाव था। इस स्वभावको बदलनेकी कोशिश कदम तथा उसके साथियोंने बिलकुल न की थी। इसलिये इस स्वभावका जो परिणाम होना था, वही हुआ। हवामें भूसा उड़ जावे, उस तरह पुलिसको देखते ही सारे लोग तितर बितर हो गये।

पुलिसवालेने मनोहरको ले जाकर लॉरीमें बैठा दिया। उसकी निश्चयी मुद्राको देखकर सुलभाको आश्चर्य हो रहा था। उसका ख्याल था कि पुलिस द्वारा पकड़

लिये जानेपर वह सिसक सिसक कर रोयेगा। परंतु उसकी मुद्रा मुकुन्दके बराबर ही गंभीर थी। मुकुन्द जान गया कि मनोहरके जीवन-विकासका यह उदात्त क्षण है। उसके हाथको अपने हाथमें लेकर वह बोला, — ‘अच्छा, ठीक है मनोहर। शीघ्र ही फिर मिलेंगे !’

‘यह संभव नहीं है !’

‘क्यों ?’

‘मैं कौन जल्दी छूटूंगा अब ?’

‘तुम न छूटो तो क्या हुआ ! पर मैं तो जल्द ही जेलमें आऊंगा न ?’ — मुकुन्द-के इस उत्तरको सुनकर पुलिसवाले भी हँस पड़े। उस हँसीके बीच लोरी छूट गयी और मनोहर दृष्टिसे ओझल हो गया।

मुकुन्द सोच रहा था कि सुलभाको किस तरह संतोष दें तभी विजय उन दोनोंके नज़दीक आया और बोला, — ‘सुलभा, चलो, अब घर चलें। आजकी सभाका काम तो ठप्प हो गया दीखता है !’

सुलभाने कोई उत्तर न दिया।

विजय हँसकर बोला, ‘आगे शायद दो ही आदमियोंकी सभा हो रही है ?’

‘जिनमें इन्सानियत नहीं है, ऐसे लोग सभाकी पूछताछ न करें, यही अच्छा है !’

विजय गुस्सेसे चल दिया।

मुकुन्द सुलभाको उसके घरतक साथ देनेके लिये उसके साथ रवाना हुआ। पाँच-छः दिन किसानोंके बीच घूमकर उनकी एक बड़ी सभा सफलतापूर्वक बुलाना आवश्यक था। मुकुन्दने सुलभासे कहा, — ‘इस काममें मैं कलसे भिड़ जाता हूँ। जहाँ यह सभा ठीक तरहसे हो गयी कि फिर मैं यह सोचूंगा कि मनोहरको किस तरह छुड़ाया जाये। मुकुन्दने कदमकी कार्य-कुशलतापर पूरा भरोसा रखकर सारी बातें उसीपर छोड़ दी थीं। इसलिये सभामें जो लोग आये थे वे मनसे तैयार होकर नहीं आये थे। यह सुलभाने भी देख लिया था। यदि दूसरी सफल सभा न की गयी, तो आजके पराभवके परिणामस्वरूप सारा आन्दोलन ही असफल हो जायेगा, यह भी स्पष्ट था। इसलिये मुकुन्दका उपाय सुलभाको भी उचित प्रतीत हुआ।

वे दोनों विजयके बँगलेके पास आ पहुँचे। तब मुकुन्द बोला, — ‘तुम्हारे पैर दर्द कर रहे होंगे आज?’

‘वैसे तो दुखने लगते; पर तुम जो साथ थे। इसलिये —’

‘मैंने तुम्हें सिरपर थोड़े ही बिठाया था?’

‘सिरपर न बिठाया हो, फिर भी —’

सुलभा सिर्फ हँसी। मुकुन्द भी हँस दिया। उससे बिदा लेते समय उसके हाथमें रखे अपने झोलेसे एक नोट-बुक निकाली और उसको सुलभाके हाथमें थमाते हुए वह बोला, — ‘इसे पढ़कर देखो एक बार।’

सुलभा ताड़ गयी कि मुकुन्द मुझे वही नोट-बुक दे रहा है जिसे मैंने बंबईमें उसके ट्रंकमें देखा था; परंतु उसने जानबूझकर ही पूछा, — ‘क्या है इसमें?’

‘एक जीवका मनुष्य होनेका कठिन प्रयत्न!’

• • •

विस्तरपर बैठकर मुकुन्दके उन फुटकर विचारोंको पढ़नेमें सुलभा पूर्ण रूपसे खो गयी। वैसे देखा जाये तो उनमें सुसंगति न थी, बुद्धिका प्रदर्शन न था, परंतु हर पन्ना अनुभवके सजीव रससे रंगा हुआ था। उस नोट-बुकके प्रत्येक विचारमें अपने हृदयमें उठी हुई किसी लहरका शब्द-चित्र मुकुन्दने अत्यंत प्रामाणिकतासे खींचनेका प्रयत्न किया था। सुलभाने एक घटेमें वह नोट-बुक पूरी पढ़ डाली। उसे प्रोफेसर गरुडके द्वारा प्राप्त टिप्पणियोंका स्मरण हो आया। मुकुन्दकी तरह गरुडने भी जीवनकी ओर सूक्ष्म दृष्टिसे देखा था। परंतु एकका दृष्टिकोन व्यापक था, तो दूसरेका संकुचित; एकका उदात्त, तो दूसरेका विकृत! मुकुन्दके उन सजीव विचारोंको दुबारा पढ़े बगैर सुलभासे नहीं रहा जाता था। अपनी रुचिके कुछ भाग खोजकर वह पढ़ने लगी।

जिस समय उसे कॉलेज छोड़ना पड़ा, उस समय मुकुन्दने लिखा था, — ‘मनुष्यका जीवन सफेद चंपाके पेड़की तरह है। बचपनमें कांकणमें जब इस पेड़को देखता, तो मेरे सामने एक पहेली खड़ी हो जाती! जब वह पत्तोंसे खूब भर जाता उस समय उसपर एक भी फूल नहीं दिखा करता था। और जब उसपर फूलके तुरें लटकने लगते, तब उसके सारे पत्ते गायब हो जाते। जैसे चंपाके पत्तों और फूलोंमें जन्मजात बैर ही है! एक जगह दोनों साथ साथ प्रेमसे रहनेके लिये तैयार ही नहीं! मनुष्यके जीवनमें भी क्या सुख और ध्येयका इसी तरह विरोध नहीं

है ? ध्येयवादको सुख नहीं मिलता और सुखी लोगोंके पास ध्येय नहीं रहता; फिर मेरे चंपाके पेड़पर सिर्फ फूल ही दिखे, तो क्या विगड़ गया ?’

सुलभाको गरुडकी टिप्पणियोंकी याद हो आयी । उन्हें निकालकर उनमेंका एक अवतरण उसने पढ़ा, — ‘यह संभव ही नहीं कि स्त्री-पुरुष एक दूसरेसे मिले बिना रह सकें । निसर्गका मानवजातिको यह अभिशाप ही है । शरीरसुखके लिये स्त्री और पुरुष एकत्र आते हैं और यह मान लेते हैं कि आगे उस शरीर-सुखमें ही जीवनका सर्वस्व है । साधारण मनुष्योंके गुणोंका संसारको कोई उपयोग नहीं होता, इसका कारण यही है । अविवाहित स्त्रीपुरुषोंका जीवन भी कामुक कल्पनाओंसे कितना भरा हुआ होता है, इसकी कल्पना भी दुनियाको न होगी ! निसर्ग मनुष्यका सबसे बड़ा शत्रु है । उसे जीत लेना असंभव है । इसलिये मनुष्यजातिका सुधार — यह एक निरा सुख-स्वप्न है ।’

मुकुन्दकी नोट-बुक खोलकर सुलभा फिर पढ़ने लगी, — ‘एक सिनेमाके स्टूडिओकी मामूली बात; परंतु उसको सुनते ही सामाजिक विपमताका विलक्षण चित्र मेरी आँखोंके सामने खड़ा हो गया । स्टूडिओकी सफाई करनेवाली औरतका एकलौता लड़का था । उसकी बड़ी इच्छा थी कि उसका एक फोटो खिंचवाऊँ; परंतु वह कहे किससे ? इस दुनियामें यह संभव ही नहीं है कि गरीबोंकी मूक इच्छाएँ अमीरोंके बहरे कानोंमें कभी सुनायी पड़ें । उस औरतका बच्चा बीमार हो गया और दुर्भाग्यसे उसे छोड़कर चल दिया । उस लड़केकी स्मृतिके रूपमें उसका एक फोटो भी उसके पास न रहा । आगे पता चला कि स्टूडिओ साफ़ करते समय दर्शनीय भागके एक फोटोको वह साफ़ नहीं करती । एक मोटर कारका फोटो था वह । मालिकके अमीर शराबी मित्रने एक नयी औरत रखी थी और उसे एक नयी कार खरीद दी थी । इस नयी गाड़ीका फोटो खींचनेकी जिस समय धूमधाम मची हुई थी उस समय वह औरत अपने बीमार बच्चेको भी स्टूडिओमें लेकर आयी थी । बड़ी हिम्मत करके आज वह यह कहनेवाली थी कि ‘मेरे इस बच्चेका भी एक फोटो खींच लीजिये !’ परंतु उस नयी गाड़ी और उस मालकिनकी उठावैठी करनेमें ही सब लोग निमग्न हो गये थे ! फिर इसकी ओर कौन ध्यान देता ? सच तो यही है कि आजके जीवनमें व्यक्तिकी भावनाओंका कोई मूल्य नहीं ! भूतदयासे किसी व्यक्तिको सुखी किया जा सकता है; परंतु समाजके

दुःखोंको दूर करनेके लिये सामाजिक औषधि ही चाहिए। मर-मरकर काम करनेवाले समाजकी वर्तमान दासताको दूर करना ही यह औषधि है !'

गरुडकी टिप्पणियोंमें कॉलेजके लड़के-लड़कियोंके प्रेमके, और समाजके सभ्य लोगोंकी कामुकताके रोंगटे खड़े कर देनेवाले, अनेक घृणास्पद उदाहरण थे। परंतु मुकुन्दके इस विचारके समान एक भी अनुभव न था। अब सुलभाके ध्यानमें आया। गरुड जैसे बुद्धिमान मनुष्य भी समाजकी ओर अपने वर्गकी विशेष दृष्टिसे ही देखते हैं। जिस वर्गमें उनका जन्म होता है, उसे दोपहरके भोजनकी बहुधा चिंता नहीं होती। शिक्षा, नौकरी या व्यवसाय और थोड़े-बहुत सुखसे रहनेकी संभावना, आदि बातें इस वर्गके लोगोंको सहजमें प्राप्त हो जाती हैं। इसके कारण प्रेमको उनके जीवनमें अवास्तविक महत्त्व प्राप्त हो जाता है। वे यह भूल ही जाते हैं कि प्रेम जीवनका एक भाग है, सर्वस्व नहीं।

गरुडकी टिप्पणियोंको दूर हटाकर सुलभा मुकुन्दकी ही नोट-बुक पढ़ने लगी—

‘जब मैं कराची गया, उस समय यदि मेरे बारेमें कोई यह भविष्य कथन करता कि मैं किसी हड़तालका नेतृत्व करूँगा, तो मैं उसकी पागलोंमें ही गणना करता परंतु ऐन मौकेपर एक नेताने विषमञ्जरके कारण विस्तर पकड़ लिया, दूसरा जाकर मिल-मालिंकोसे मिल गया। सेनापति न होनेसे लड़ाई थोड़े ही बंद कर देनी पड़ती है! सेनापतिका रिक्त स्थान कोई सिपाही भर देता है और अपने पक्षको विजय भी प्राप्त करा देता है! आजके सामाजिक युद्धके एक मामूली सैनिककी हैसियतसे मैंने बंबई छोड़ी थी; परंतु कराचीमें मुझपर सेनापतिकी जिम्मेवारी आ पड़ी और मैंने वह काम पूरा भी किया। गानेवालेका गला और पैदा करनेवालेका खेत, यही सच है। उचित अवसर प्राप्त हुए बिना मनुष्यके सुप्त गुण कभी प्रकट ही नहीं होते। परंतु आजके समाजमें अवसर पैसेका गुलाम हो गया है और इसी लिये गरीबोंके गुण गुड़गोबर हो रहे हैं।

‘इस हड़तालके समय मुझे सुलभाकी बार बार याद आने लगी। बचपनमें मैं अपनी कक्षामें हमेशा पहला नंबर रहा करता था, इसपर उसे कितना गर्व था! काश, वह इस हड़तालको देखने यहाँ होती तो? परंतु इसका क्या ठिकाना कि उसको यह हड़ताल पसंद होती ही? कुछ भी हो, आखिर वह उच्च वर्गकी है। उच्च वर्गके लोगोंको यह बात बहुधा जँचती ही नहीं है कि निम्न वर्गके लोगोंको युद्ध करके अपने अधिकारोंको प्राप्त कर लेनेका हक है। बड़े लोग दया करके

चार टुकड़े बदनपर फेंक दें और छोटे पालतू कुत्तोंकी तरह उन्हें झेलकर अपनी कृतज्ञता व्यक्त करें—यही जहाँपर समाजरचनाकी सनातन कल्पना है, वहाँ हरएकके हकको कौन मानेगा ? परंतु शरीरोंका दैनिक जीवन ही क्या एक युद्ध नहीं है ? ज़िंदा रहनेका हक है, इसी लिये लड़नेका हक भी होना चाहिए ! वह हक हर-एकको होना ही चाहिए । और हड़ताल क्या कोई बिना कारणके करता है ? जिनके हर दिनके पेट हाथपर रहते हैं, वे क्या अपने हाथ खुशीसे बाँध लेते हैं ? भूखे रहकर मज़दूर लोग जुलूस निकालते हैं और भद्र पुरुष इस फ़िरक़में कि फुरसतका समय किस तरह बीताया जाये, सभाएँ और सम्मेलन किया करते हैं ! परंतु जहाँ गांधीजी जैसे महात्माको भी यह बात नहीं जँचती कि इन दो वर्गोंके जीवनका स्वभावतः ही विरोध है, वहाँ दूसरोंकी क्या कथा ? गांधीजीको लगता है कि ज़मींदारों और मिलके मालिकोंकी मनोवृत्तिको बदल दो, तो सब ठीक तरहसे चलने लगेगा । कल कोई यह कल्पना भी निकाल देगा कि शेरकी मनोवृत्तिको बदलकर गायकी रक्षा करो । आजके समाजके दुःखका भूल मनुष्यके स्वभावमें नहीं है । मालकीके हककी मोहिनीमें है ।’

गरुडकी टिप्पणियोंको कुछ देखा-अनदेखा करके, सुलभाने मुकुन्दकी नोटबुकका दूसरा पन्ना खोला, — ‘हड़तालके दिनोंका एक एक क्षण मुझे जीवनका ज्ञान करा दे रहा था । बड़े लोगोंकी क्षुद्रता, क्षुद्र माने गये लोगोंका बड़प्पन, जल रही होली पर रोटियाँ सेंक लेनेकी मनुष्योंकी मनोवृत्ति, दिये गये वचनके लिये प्राणोंपर उदार होनेकी मनुष्योंकी मनोवृत्ति, — सच्चे जगका दर्शन मुझे हड़तालमें ही हुआ । स्वयं मेरे अनुभव भी क्या कम विलक्षण थे ? मैं सिनेमा जाता ज़रूर था । परंतु खेल देखते समय अभिनेत्रीके रूपको देखनेकी अपेक्षा मुझे कहानीकी उत्तमताका ही आकर्षण अधिक लगता था । ऐसी वृत्तिवाला था मैं । प्रेमका खेल खेलनेके लिये मुझे कभी अवकाश ही न मिला । मनुष्य जब अकेला होता है, तो अपने एकान्त-में वह कुछ स्वप्नोंको खुली आँखोंसे देखता रहता है न ? ऐसा सपनोंमें एकाध ही प्रेम मुझे दिखा करता । उस स्वप्नकी स्वामी सदा सुलभा ही रहा करती । अपने इस स्वप्नपर मैं ही हँस पड़ता और फिर वह स्वप्न शरमाकर इतने दूर भाग जाता कि बहुत दिनोंतक मुझे अपना मुँह ही न दिखाता था !

‘परंतु वह दिन—और उससे अधिक वह रात ! मिल-मालिकोंके पिङ्गू ऐसी चाल खेल रहे थे कि जिससे हड़ताली चिढ़ जायें और चिढ़नेपर जहाँ उन्होंने उत्पात

शुरू किये कि पुलिसको उनपर गोलियाँ बरसानेका मौका मिल जाये। इस चालको विफल कर देनेके लिये उस दिन मैं हवाकी तरह दौड़ता रहा। रातको दस बजे-तक सब ठीक था। यह सोचकर कि अब सब ठीक हो गया है, मैं जाकर अपने विस्तरपर लेट ही रहा था, तभी तीन-चार आदमी मुझे बुलाने आ गये। किसी सुंदर लड़कीको कुछ मज़दूरोंने घेर लिया था। जब मुझे मालूम हुआ कि लड़की एक मिल-मालिक—मनसुखलालकी है, तब तो मैं थोड़ा घबड़ा ही गया। मेरे वहाँ पहुँचनेके पहले ही यदि कोई उसकी इज्जत उतार दे तो ? चिनगारीसे दावानल होनेमें देर न लगेगी। मैं दौड़ता हुआ ही गया। कुछ लोगोंने यह कहना शुरू कर दिया था कि उसका अंचल खींच लो। सच यही है कि मनुष्यके भीतरके गुंडापनको जागनेमें देर नहीं लगती ! मेरे वहाँ पहुँचते ही सब लोग दूर हट गये। वह लड़की भयसे काँप रही थी। लेकिन उसका सौंदर्य अवश्य बड़ा मोहक था। उसकी रक्षाके लिये दौड़े गये मनुष्यके मनमें उसके सौंदर्यका विचार आवे, यह कितना अस्वाभाविक था। परंतु मनुष्यका मन आखिर अजायबघर ही तो ठहरा।

‘मैंने उसे हिम्मत दी और उससे सब बातें मालूम कर लीं। वह मोटरसे कहीं दूर घूमने गयी हुई थी। रास्तेमें मोटर बिगड़ गयी। यह सोचकर कि धीरे धीरे पैदल चलकर मैं सरलतासे अपने घर पहुँच जाऊँगी, वह वहाँसे अपने घरके लिये खाना हो गयी। जगह जगहपर मज़दूरोंकी टोलियोंको देखकर वह घबड़ायी और रास्ता भूल गयी। मनसुखलालके बँगलेपर सकुशल पहुँचा देनेका जब मैंने उसे आश्वासन दिया, तब कहीं वह थोड़ी शान्त हुई।

‘परंतु पहले मिल-मालिकके बँगलेपर मामूली कामके लिये गये हुए एक नेताने मज़दूरोंका विश्वासघात किया था, इसलिये सब मज़दूर मुझे वहाँ जानेसे रोकने लगे। उनका कहना था कि मैं खुद लड़कीको अपने साथ लेकर वहाँ न जाऊँ परंतु वह लड़की किसी दूसरेके साथ जानेके लिये तैयार ही न थी। मेरे पीछे कानाफूसी चल रही थी। वह भी मुझे सुनायी पड़ रही थी। मनसुखलालकी रखैलकी लड़कीकी हैसियतसे सब लोग उसे तुच्छतासे देखते थे। इस पंचसे उसीने राह निकाली। वह बोली,—‘आप मेरे बँगलेपर खबर भेज दे। जबतक वहाँसे कोई मुझे लेने नहीं आता है, तबतक मुझे आप अपने कमरेमें शान्तिसे बैठनेके लिये स्थान दे दीजिये।’ मैंने उस तरहका प्रबंध कर दिया।

‘यह सोचकर कि बाहर खड़े तमाशबीनोंसे उसे तकलीफ होगी, मैंने कमरेका

दरवाज़ा लगा दिया। मेरी समझमें न आता था कि उसको किस तरह संतोष दूँ। क्षणभर वह स्वस्थ थी। फिर वह सिसक सिसककर रोने लगी। मैं उसके पास गया। 'डरो नहीं, थोड़ी ही देरमें तुम्हारे घरसे कोई आ जायेगा।' इस तरह मैं कुछ कह रहा था, तभी वह मेरे चरणोंपर गिर पड़ी ! उसे उठानेके लिये मैंने झुककर उसके हाथ पकड़े। परंतु उसका मन ही नहीं किंतु शरीर भी बिलकुल शिथिल हो गया होगा। मेरे नीचे बैठते ही उसने मेरी जंघापर अपना सिर रख दिया। धीरे धीरे उसकी सिसकियाँ कम हो गयीं।

'इसके बाद क्या हुआ यह मैं सिर्फ इसलिये लिखकर रखता हूँ, कि प्रौढावस्था-में मुझे इस प्रसंगका स्मरण हो और मैं तरुणोंकी भावनाओं और विकारोंका कभी उपहास न करूँ। लेकिन मैं जो कुछ लिख रहा हूँ उसका अक्षर अक्षर सत्य है, यह मैं स्वयं भी नहीं कह सकूँगा। क्या, कोई स्वप्नको ज्योंका त्यों कह सकता है ?

'तरुणीके अंगका पहला स्पर्श कितना उन्मादक होता है, इसका मुझे आज पता चला। हम बड़े अभिमानसे कहते हैं कि मनुष्यने निसर्गको अपना गुलाम बना लिया है। मनुष्यमात्रका यह अभिमान बिलकुल व्यर्थ है, यह मुझे आज पूरी तरहसे मालूम हो गया। जबसे म उस सुंदर लड़कीको कमरेमें लाया था, तबसे मेरे मनपर विलक्षण मीठा नशा चढ़ा होगा ! उसके मंरे जंघापर सिर रख देनेके बाद तो मैं करीब करीब अपनेको भूल ही गया। उसके केशोंपरसे हाथ फेरते हुए मेरा हाथ कितना काँप रहा था ! पुलिसकी बंदूकोंसे न डरनेवाला मुकुन्द एक तरुणीके कोमल स्पर्शसे भ्रांत हो गया। मुझे स्वयं अपने आपपर ही क्रोध हो आया। परंतु उस तरुणीका मस्तक दूर करनेके लिये मेरे हाथ तैयार नहीं होते थे। दोनों हाथोंमें मृदुतासे मैंने उसे पकड़ा और थोड़ा ऊपर उठाया। पुरुषकी आँखोंमें होनेवाले निसर्गके पाशवी नृत्यको स्त्री शायद बहुत जल्द पहचान लेती होगी। मेरे हाथोंको पता चला कि वह चौंक पड़ी। परंतु उसकी उन सुंदर आँखोंसे कृतज्ञता जैसे बिलकुल उमड़कर बह रही थी। इस समय मुझे अनुभव हुआ कि स्त्रीके दातृत्वको आँखें नहीं होतीं। किसी भी वस्तुको दान करनेके लिये स्त्री एकदम तैयार न होगी। परंतु जब वह दान देना आरंभ कर देती है, तब सर्वस्वको दान किये बिना उसे संतोष ही नहीं होता। उस लड़कीकी भी यही स्थिति हो गयी होगी ! उस समय उसे सिर्फ यही एक बात दीख रही होगी कि संकटसे मैंने उसकी रक्षा

की ! मेरे द्वारा हाथमें पकड़े हुए मस्तकको पीछे न हटाकर, उसने जरा ऊपर देखकर मोहक स्मित किया, कि —

‘उसका चुंबन लेनेके लिये मेरी गर्दन झुकी भी होगी । लेकिन, शायद दैवका यह संकेत होगा कि जिसके कारण जीवनमें मुझे गर्दन झुकानी पड़े ऐसा कोई भी काम मेरे हाथसे न हो । उस लड़कीका चुंबन न लेकर मैंने उसके हाथ कसकर पकड़ लिये और कहा,— ‘मुझे माफ कर दो । मुझसे भूल हो रही थी !’

‘उसकी समझमें न आया कि मुझमें ऐसा परिवर्तन क्यों हो गया । कोई भी इसे नहीं समझ सकता । सुलभाकी मूर्ति एकदम मेरी आँखोंके सामने आकर खड़ी हो गयी थी । निसर्ग मुझे पशु बनाने जा रहा था । परंतु सुलभाने मेरी इन्सानियत बना रखी । हरे चंपाके फूलकी सुगंध दूरसे मनुष्यको मोहित कर देती है । सफल न हुआ प्रेम भी इसी प्रकार मनुष्यको उदात्त कर सकता है । सच यही है कि ध्येय और प्रेम—ये ही दोनों बातें मनुष्यका विकास कर सकती हैं ।’

इस मजमूनको पढ़ते हुए सुलभाका हृदय लगातार धड़क रहा था । उसे लगा कि इस समय यदि मुकुन्द सामने होता, तो जिस तरह छोटे बच्चेको दुलारसे चपते जमाते हैं, उस तरह मैं उसके साथ करती । उसके मनमें आया—‘मुकुन्दके जीवनमें मैंने कितनी क्रांति कर डाली !’ तुरंत ही वह मन बोला,—‘तेरे जीवनमें वह भी क्रांति कर रहा है । प्रीति क्रांतिकी माता है । अपने प्रिय मनुष्यकी तरह जो नहीं बदला, वह सच्चा उत्कट प्रेम कर ही नहीं सकता ।’

सुलभा बड़े उत्साहसे नोटबुकके आगेके पन्ने उलटाने लगी । वसंतमें जैसे कोई बाग फूलोंसे खिल जावे, उस तरह वह नोटबुक उसे लगी । मुकुन्दके जीवनका सारा वसंती वैभव उसके पन्ने पन्नेमें नाच रहा था ! एक स्थानपर लिखा था,—‘लोग चिल्लाया करते हैं कि शहरमें बिल्कुल हवा नहीं है, परंतु शहरके पास जो टेकड़ी है उसपर जानेका कष्ट कोई नहीं उठाता । वहाँ वायु-लहरियाँ कितनी स्वच्छन्दतासे नाचती रहती हैं । वैयक्तिक और उपभोगात्मक जीवनमें बहुतांश दम घुट जाता है । परंतु इस जीवनके नज़दीक ही थोड़ेसे ऊँचे स्थानपर सामाजिक और त्यागात्मक जीवन आनंद देनेके लिये सिद्ध रहता है । परंतु वह दीखता ही नहीं है हमें । जीवनमें रोते रहनेवाले प्रत्येकको मैं एक ही मंत्र दूँगा,—‘ऊँचेपर जाकर रहो और फिर देखो !’

दूसरे स्थानपर मुकुन्द कह रहा था,—‘घरमें स्वयं अपनेको छोड़कर और किसी-

की भी फिक्र न करनेवाला आदमी निर्दयी माना जाता है। तब अपने कुटुंबके परे समाज भी है, इसका होश भी न रखनेवाले लोग क्रूर नहीं हैं क्या? समाजके सब खा-पीकर सुखी लोगोंकी ओर देखो। कृति तो दूर रही, सिर्फ सेवाका ज्ञान भी किसीमें नहीं। गरीब औरतोंको चक्की-चाँकेसे फुरसत नहीं, तो नयी फिल्म, नये उपन्यास, ब्लाउज-जंपरकी नयी नयी फैशनोंमेंसे भद्र महिलाओंका सिर ही ऊपर नहीं निकलता !’

त्यागका कितना सुंदर समर्थन किया है उसने, — ‘एक बार फूलोंको लगा — हम हमेशा पत्थरोंकी पूजा करते रहे, यह क्या न्याय हुआ ? वे रूठ गये। निसर्गने कहा — ‘यदि तुम्हें पत्थरोंकी पूजा न करनी हो, तो पत्थर तुम्हारी पूजा करेंगे; परंतु पूजाके बिना दुनिया न चलेगी!’ फूलोंने बड़े आनंदसे यह बात स्वीकार कर ली। परंतु जैसे जैसे एक एक पत्थर एक एक फूलपर गिरने लगा, वैसे वैसे वह फूल चकनाचूर होने लगा। सारे फूल निसर्गसे बोले — ‘हम इस सम्मानकी ज़रूरत नहीं। पूजा कर लेनेकी अपेक्षा उसे करनेमें ही अधिक सुख है!’

नोट-बुकके अंतिम पृष्ठपर मुकुन्दने लिखा था, — ‘मनुष्य जब पतित हो जाता है तब हम उससे घृणा करने लगते हैं। परंतु हममेंसे कितने लोग यह जानते हैं कि हम पतित हैं ? जगके जीवनका प्रवाह मनमाने मोड़ लेकर बह रहा है और सूखे पत्तोंकी तरह बहुतसे लोग उसके साथ बहते जा रहे हैं। इस प्रवाहमें, हम जिस तरफ़ चाहते हैं उस तरफ़ तैरकर जानेकी शक्ति कितने थोड़े लोगोंमें होती है ! इस प्रवाहको योग्य दिशा दिखानेकी कोशिश लाखोंमें एकाध ही कोई करता होगा। जीवनके अनंत चंचल सुख-स्वप्नोंको मैंने तिलांजलि दे दी है। जो एकाध मधुर स्वप्न मेरे हृदयके अन्तरतलमें छिपकर बैठा हुआ है, वह भी कदाचित् वहीं घुल जायेगा। लेकिन मेरी इच्छा है कि मेरे जीवनमें एक बात अवश्य हो। मृत्युशैयापर यह पश्चात्ताप करनेका मौका मुझपर न आये कि मेरा जीवन-प्रवाह पतितकी तरह बीता।’

इस सारे मज़मूनको फिरसे पढ़नेकी सुलभाको इच्छा हुई। परंतु इसी समय बाहरसे एक कठोर पुकार सुनायी दी, — ‘सुलभा, — सुनू —’

उसने दरवाज़ा खोला। तात्यासाहब भीतर आये।

‘तू मुकुन्दकी सभामें गयी थी ?’

‘हाँ !’

‘यदि यह वाहियातपन बंद कर दे, तो क्या कुछ नुकसान है तेरा ?’

‘यह मेरा प्रश्न है !’

‘पर तू मेरी लड़की है !’

‘और मुकुन्दकी मित्र हूँ !’

‘मित्र ! कल तू उससे विवाह करनेके लिये भी तैयार हो जायेगी ?’

‘कलकी बात क्यों कर रहे हैं ? आज ही तैयार हूँ मैं तो । परंतु वह तैयार हो, तब न ?’

‘वह कैसे तैयार नहीं होगा ? तेरा पति बननेके लिये वह तो बड़ी खुशीसे नाचता हुआ आयेगा । परंतु मैं उसे अपने घरकी सीढ़ी नहीं चढ़ने दूँगा !’

‘विवाह हो जानेपर आजकलकी लड़कियोंको मायकेकी याद ही नहीं आती !’

‘उस मुकुन्दने तुझपर क्या कोई जादू-वादू कर दिया है ?’

‘विजयने ज़रूर आपपर जादू कर दिया है ! उसीने आपसे कहा होगा कि मैं गयी थी । परंतु सभामें मनोहरको देखते ही पुलिससे कहकर उसने उसको किस तरह गिरफ्तार कर दिया यह न कहा होगा आपसे विजयवाबूने ?’

‘मनोहर ! उस छोकरेका नाम भी न ले मेरे सामने, और विजयके बारेमें ऐसी उहड़तासे बातें न किया कर । उसके साथ तेरा विवाह होना है !’

‘उसके साथ ? अभी जाकर कहे देती हूँ उससे —’

‘वह है कहाँ ? कुछ समयके पहले उसे रावसाहबकी मृत्युका तार मिला और वह तुरंत ज़मींदारीके गाँवको चला भी गया !’

● ● ●

पूरे जीवनमें सुलभाने तात्यासाहबको कभी दुःख न दिया था। इसलिये जब तात्यासाहब कमरेसे बाहर चले गये तब उन्हें तड़ातड़ उच्चर देनेका स्वयं सुलभाको बहुत दुख हुआ। वह यह समझती थी कि वे कोई बुरे उत्तर न थे; परंतु जिनसे हम मनसे प्रेम करते आये हैं, उनपर क्रोध करना सहज नहीं होता। दो हृदयोंको गूँथनेवाले रेशमके धागे किसी भी तरह नहीं सुलझते! और वे जब नहीं सुलझते, तब जैसे टूटें उस तरह उन्हें तोड़ डालनेका मौक़ा आ जाता है! सुलभा भी इसी कठिन परीक्षासे गुज़र रही थी।

सुकुन्द अब उसे कितने नज़दीकका लगता है! और तात्यासाहब? वे ज़रूर हर क्षण उससे दूर जा रहे थे। उसने दुखसे आँखें मूँद लीं। उसे भ्रम हुआ जैसे मौसीजी उसके सिरको थपथपा रही हैं। वह शान्तिसे सो गयी।

सुबह काफ़ी धूप निकल आनेपर वह जागी। तब मौसीजी सचमुच ही उसके नज़दीक बैठी हुई उसके मस्तकको सहला रही थीं। सुलभाकी समझमें न आया कि क्या इतनी देरतक वह स्वप्न देख रही थी। उसने आँखें बंद कर लीं। 'चाय पीने उठती हो न, बेटा?'—मौसीजीके ये शब्द उसके कानोंमें पड़े। तब कहीं उसे विश्वास हुआ कि मौसीजी सचमुच ही शिरगाँव आ गयी हैं। सुलभाके मनपर छाये हुए बादल एकदम दूर हो गये।

चायके बाद दोनों बातें करने लगीं। सुलभा चटसे ताड़ गयी कि मौसीजी और तात्यासाहबसे सभी बातोंके विषयमें बातचीत हो चुकी है। किलेकी अपेक्षा अत्यंत सुरक्षित मोरचेको जीतना ही अधिक कठिन होता है। सुलभा यह जानती थी कि तात्यासाहबका सामना करनेकी अपेक्षा मौसीसे बहस करना अधिक कठिन है। उसने मौसीजीके सारे उपदेशको शान्तिपूर्वक सुन लिया और फिर जिस तरह कोई बछिया गायके बदनसे अपना सिर रगड़ती है, उस तरह मौसीकी जांघपर करती हुई वह बोली, — 'मौसीजी, आपने जातिकी बात निकाल ली! पर कृष्णजी ग्वाल ही थे न?'

मौसी सिर्फ हसीं।

'देखिए मौसीजी, दुनियामें सिर्फ दो जातियाँ हैं। एक वह जिसमें इन्सानियत है और दूसरी वह जिसमें इन्सानियत नहीं है! शबरी भिल्लनी थी, फिर भी क्या हमको उसकी और सीताजीको जाति एक ही नहीं लगती? शूर्पणखा रावणकी बहन थी और कहते हैं रावण ब्राह्मण था! इसलिये शबरीसे शूर्पणखा श्रेष्ठ नहीं मानी जा सकती!'

'बड़ी शरीर छोकरा है री तू! सब पुराणोंको जैसे घांटकर पी गयी है।' — मौसीने प्रेमसे उसकी पीठपर हाथ फेरते हुए सराहना-भरे स्वरमें कहा।

'अच्छा, पुराणोंको हटाइये! बिल्कुल आजकलके ज़मानेकी ही बात बताती हूँ आपको। शक्करके कारखानेके लिये यहाँके किसानोंकी ज़मीनें छीननेकी कार्रवाई हो रही है! इस काममें क्या कोई भी इन काश्तकारोंकी फ़िक्र कर रहा है? विजय, तात्या सब अमीरोंकी तरफ़ हैं। मौसी, आप 'तू माझी माऊली' वाला पद कहती हैं न? सारे ग़रीब अमीरोंकी ओर उसी दृष्टिसे देखा करते हैं, उनकी उसी तरह बिनती करते हैं, उनसे दयाकी भीख माँगते हैं! परंतु उनकी यह 'माँ' सगी नहीं, सौतेली है! अब मुकुन्द एक बार और किसानोंकी सभा भरा रहा है! उसे देखनेके लिये आप मेरे साथ चले और फिर — उससे पहले तो मैं मुकुन्दसे विवाह नहीं कर रही हूँ!' — इस तरह कहते हुए सुलभाने बड़े लाड़से मौसीके गलेमें अपनी बांहें डाल दीं।

१ 'तू मेरी माँ'।

उसे हृदयसे कसकर चिपकाते हुए मौसीने कहा, — ‘बेटा, जो तेरा सुख, वही मेरा सुख !’

सुलभा एकदम उछलकर बोली, — ‘देखिये मौसी ! तात्या यही भूल करते हैं ! उन्हें लगता है, जो मेरा सुख, वही बच्चोंका सुख ! मनोहरका नाश केवल उसकी किस्मतने नहीं किया है । तात्याकी कठोरताके कारण वह घरसे भाग गया । कल रातको पुलिसने यहाँ गिरफ्तार किया, तो खुदका बेटा होनेपर भी तात्याकी आँखसे आँसूका एक बूँद भी न गिरा ! स्वयं अपने बड़प्पनके आगे स्नेह, प्यार आदि कुछ नहीं है उनमें !’

‘पुरुष ऐसे ही होते हैं, सुल !’

सुलभा अभिमानसे बोली, — ‘नहीं, मेरा मुकुन्द ऐसा नहीं है ।’

कितनी ही देरतक दोनों मनकी बातें कर रही थीं । उस संभाषणका मुख्य विषय यही था कि मनोहरको जेलसे किस तरह छुड़ा जाये । सुलभाके लिये भी वह एक पहेली ही थी । परंतु दूसरोंको हिम्मत देनेमें बड़ी चतुर होनेके कारण उसके बातोंसे मौसीको ऐसा लगा कि वह आठ चार दिनमें ही जेलसे रिहा हो जायेगा । धीरे धीरे मौसीको प्रसन्न करके सुलभाने चार-पाँच दिन मुकुन्दके साथ गाँवोंमें घूमनेकी उनसे अनुमति प्राप्त कर ली ।

• • •

सुलभा जब कारखाने गयी तब उसने देखा कि केशरकी सारी हिम्मत पस्त हो गयी है । केशरने अपने बालोंकी कंधी चोटी भी न की थी । माँके आग्रहसे थोड़ीसी चाय पीकर वह चुपचाप पड़ी हुई थी । इस कल्पनासे कि पिंजड़ेका खुला हुआ एक द्वार भी अब बंद हो गया है, उसका मन बिलकुल उदास हो गया था । सुलभाने कई प्रकारके मज़ाक करके उसकी कलीको खिलानेकी कोशिश की; परंतु केशरकी खिन्नता किसी भी प्रकारसे कम नहीं होती थी । वह अकड़कर ही बोली, — ‘मेरे मनको तुम कभी न जान सकोगी !’

‘क्यों, मैं भी मनोहरकी बहन हूँ, सुना ?’

‘बहनकी बात दूसरी और —’

‘यह ‘और’ हरएकके जीवनमें होता है, समझी ?’

‘लगता है, इसी लिये मुकुन्दके साथ गाँवोंमें दौरा करने निकली हो ? हनीमूनका यह एक नया प्रकार है शायद !’

‘केशर, मुकुन्दके साथ मैं ही क्यों, हममेंसे हरएकको जाना चाहिए !’

‘किस लिये ? वह मुकुन्द कितना चंचल है ! बचईमें पिताजीके पीछे लगकर मैंने उसे नौकरी दिला दी । और आज इस्तीफा देकर आंदोलन करने चला है ।’

‘केशर, अकेले मनोहरके लिये तुम इतनी बेचैन हो रही हो । मुकुन्द तो हजारों लोगोके लिये बेचैन हो रहा है । तुम अभी छः-सात दिन और धीरज रखो । इसके बाद मैं और मुकुन्द दोनों मनोहरकी रिहाईके बारेमें सोचेंगे ।’ उसके समीप जाकर सुलभा फिरसे धीरेसे बोली, — ‘तुम्हें भाग जानेके लिये कोई साथी चाहिए है न ? तो मैं चलींगी तुम्हारे साथ । फिर तो हो गया ? हम ऐसी जगह जाकर रहेंगे, कि वहाँ तेरे पिताजी और रतिलालको आनेकी हिम्मत ही न पड़ेगी !’

‘मतलब यह कि अब ये छः-सात दिन बिलकुल एकान्तमें गुज़रेंगे ! सुलभा, मनकी तरह मनुष्यका दूसरा कोई बैरी नहीं !’

‘मुझे यदि फुरसत मिलेगी, तो पत्र लिखकर मैं तुझे बुलवा दूँगी । आ जाना हमारी किसी सभामें ! तुम्हें क्या तकलीफ़ है ? मोटर है तुम्हारे दफ़्तरकी । आधी रातको भी तुम एक घंटेके भीतर चाहे जहाँ चली आओगी !’

सुलभाने सहज-भावसे मुड़कर देखा । दरवाज़ेमें रतिलाल खड़ा हुआ था । न जाने वह कबसे वहाँ आकर खड़ा हुआ था !

• • •

मुकुन्दके साथ घूमने और जंगलोंमें घूमते हुए सुलभाने महसूस किया, रामके साथ ब्रजवासको जाते समय सीताजीको कितना आनंद हुआ होगा । वैसे उन गाँवोंमें एक मिनट भी बिताना उसके लिये कठिन हो जाता, परंतु अब उन्हीं गाँवोंमें उसके तीन-तीन, चार-चार घंटे कब समाप्त हो जाते थे, इसका स्वयं उसे ही कोई पता नहीं चलता था । मुकुन्दके सहवासके कारण उसे एक नयी दृष्टि ही प्राप्त हो गयी थी । उस दृष्टिसे देखनेपर उसे गाँवोंमें भी बहुत-सी देखने लायक चीज़ें दीखने लगीं । मंदिरके बाहर लगे पीपलके पेड़से लेकर मंदिरके भीतर मस्तीसे गाये जानेवाले भजनोंतक कितनी ही बातोंमें उसका मन रमने लगा । अशुद्ध भाषामें अपनी चित्ता-भर झोपड़ीके भीतर मेहमानोंका स्वागत करनेवाले ग्रामीणोंका मन कितना शुद्ध और उदार होता है, इसके नमूने तो वह प्रतिदिन देख रही थी । उसे लगने लगा कि गाँवोंमें ऐसी कोई गुप्त भाषा जरूर होनी चाहिए जिसके

द्वारा कुत्ते, गायें, बछड़े, पेड़, लताएँ, खेत, ईश्वरकी मूर्तियाँ और मनुष्य ये सब मिलकर एक दूसरेसे बातें करते हैं। निसर्ग और मनुष्य हाथमें हाथ डाले हुए गाँवोंमें रहते हैं। वहाँ यदि कोई दुख उत्पन्न होता है, तो वह निसर्गके कारण नहीं होता, बल्कि मनुष्यके कारण होता है! मुफ्तखोर ज़मींदार, वाममार्गसे धनी होनेकी इच्छा रखनेवाले साहूकार, दुख और दारिद्र्यकी जलनको शान्त करनेके लिये आग बढे हुए शराबके दूकानदार, झूठी गवाहियाँ देकर अपना पेट जलानेवाले हरामी, निठल्ले होकर गुलछरें उड़ाने मिलें इसलिये गाँवोंमें झमेले पैदा करनेवाले शातिर बदमाश—ऐसे लोग ही गाँवोंमें अमृतको विष बना देते हैं। यह सब मुलभाको अनायास ही देखनेको मिल गया।

जिन गाँवोंकी ज़मीनें कारखानेकी दी जानेवाली थीं, उन्हीं गाँवोंमें मुकुन्द प्रचार कर रहा था। काश्तकारोंके छोटे छोटे दलोंके सामने वह बहुत सरल पर परिणामकारी भाषण दिया करता! बड़ी आवाज़ नहीं। व्यर्थ ही ज़ोरज़ोरसे बकना या चिल्लाना नहीं। बड़े बड़े शब्द नहीं, कुछ नहीं। अपने प्रत्येक भाषणमें वह एक ही संदेश दिया करता—‘मनुष्यकी तरह ज़िंदा रहनेकी कोशिश करो, इस कोशिशमें मौत भी आ जाये, तो कोई परवाह नहीं! तुम्हारी राखकी खाद प्राप्त होकर तुम्हारे बाल-बच्चोंकी फसलें पकेंगी!’ जब वह इन शब्दोंको कहता तब मुलभाके रोंगटे खड़े हो जाते। वह किसानोंसे समझाकर कहता कि पूँजीपतियोंके चरखेमें किसान और मज़दूर किस तरह पेरे जा रहे हैं। परंतु उसका सारा रक्त पद्धतिकी ओर रहता। व्यक्तिकी निंदा उसने कभी न की।

जिस भी झोपड़ीमें जो कुछ रूखा-सूखा भोजन मिल जाता उसे खा लेना और कड़ी धूपमें एक गाँवसे दूसरे गाँव पैदल जाना—इस तरह दोनोंका प्रवास चल रहा था! पुलिसके डरसे जिस स्थानसे उस दिन किसान भाग गये थे, उसी स्थानपर ठीक सात दिनके बाद फिरसे सभा करनेका मुकुन्दका निश्चय था। वह उन्हें यह झूठी आशा नहीं दे रहा था कि इस सभासे उन लोगोंको कोई बड़ा फ़ायदा हो जायेगा। इसके विपरीत वह यही कहा करता था कि यदि हम सभा करने लेंगे तो हमें बहुत कष्ट उठाने पड़ेंगे। परंतु इन कष्टोंको सहनेपर ही आगे चलकर हमें सफलता मिलेगी—यह बात वह अत्यंत मीठे शब्दोंमें उन अनाड़ी किसानोंको पूरी तरहसे जँचा दिया करता था।

छः दिनके त्राससे मुकुन्दका गला भयंकर रीतिसे फूल गया। एक सुंदर नालेके

किनारे बसे हुए गाँवमें उसे अंतिम भाषण देना था। परंतु बहुत कोशिश करने-पर भी उसके मुँहसे शब्द ही नहीं निकलते थे। मंदिरमें पूर्वनियोजित कार्यक्रमके अनुसार करीब दो सौ किसान इकट्ठे हो गये थे! मुकुन्दने सुलभाकी ओर देखा। सुलभा खड़ी हो गयी और भाषण देने लगी। मुकुंद श्रोता हो गया।

कितनी आस्थासे गरीबोंके प्रश्नोंकी सुलभाने उन लोगोंके सामने समझाकर उपस्थित किया! जिसे एक बार अपना मान लिया, उसपर वात्सल्यकी वर्षा करना, फिर वह चीज़ चाहे छोटी गुड़िया हो, पति हो, लड़का हो या ध्येय हो, स्त्रीके इस स्वभावकी साक्ष मुकुन्दको सुलभाके उस दिनके भाषणसे पूर्ण रूपसे पट गयी।

सभा समाप्त होतेतक शाम हो गयी थी। दोनों विश्रातिके लिये नालेके किनारे एक प्रशान्त स्थानमें जाकर बैठ गये। ऊपरसे शुक्ल पक्षकी चाँदनी अमृतके फुहार उड़ा रही थी। उसके कारण नालेके किनारेकी चट्टानोंको संगमरमरके पत्थरोंकी और बबूलके पेड़ोंको हरसिंगारके वृक्षोंकी शोभा प्राप्त हो गयी थी! मंदिरके घंटेका गंभीर नाद, थोड़ी दूरपर हो रहा था गाय और बछड़ेका संवाद और बीचहीमें चक्कर काटकर उड़ जानेवाले पक्षीके युगल द्वारा नीचेके दृश्यका किया हुआ मधुर अनुवाद — इनके कारण सुलभा और मुकुन्द उस शान्त और सुंदर वातावरणसे पूरी तरह एकरस हो गये।

बहुत देरके बाद उस शान्तिको भंग करते हुए मुकुंदने सुलभासे पूछा, —

‘तुम कितना सुंदर बोली, सुलभा!’

‘तुम तो अपनी पीठ स्वयं ही ठोक ले रहे हो!’

‘सो किस तरह?’

‘मैं और तुम — क्या, हम दो हैं?’

‘अब यह विनय न बघारो — बहुत हो चुका! यह बताओ, क्या इनाम चाहती हो?’

‘माँगूंगी, वह दोगे?’

‘हाँ हाँ, क्यों नहीं? जो माँगोगी, वही दूँगा!’

‘देखो, सोच लो — नहीं तो पीछे हट जाओगे फिर!’

‘हट!’

‘फिर जो तुम दोगे वही इनाम मुझे अधिक पसंद होगा!’

‘खैर, देखेंगे!’

मुकुंदने सुलभाकी ओर हँसते हुए देखा। इसी समय चंद्रबिंब मेघोंकी ओट

छिप गया। दूसरे ही क्षण वह मेघोंकी ओटसे बाहर निकलकर सुलभाकी ओर देखने लगा। उसकी मुद्रापर जैसे प्रीतिदेवी गा रही थी। रमणीके जीवनका पहला अमर क्षण उस तालपर मधुर गीत गा रहा था।

• • •

जिस दिन सभा थी उस दिन शामको करीब चार-पाँच बजे वह शिरगाँव लौटकर विजयके बंगलेमें आयी। यहाँ आकर केवल मौसीजीसे मिलनेका ही उसका इरादा था। परंतु पुष्पा, पुष्पाके पिताजी, उनके वे शास्त्रीजी और प्रोफेसर गरुड आदि लोगोंको वहाँ इकट्ठा हुआ देखकर उसे आश्चर्य हुआ। समाचार-पत्रोंमें यह पढ़कर कि शिरगाँवमें सत्याग्रह होगा, प्रोफेसर गरुड उसको देखने आये थे। विजयको ज़मींदारीका हक मिला, इसलिये बंबईकी मंडली उसे बधाई देने आयी होगी, ऐसा सुलभाको दिखायी दिया। सुलभाने किसीसे भी विशेष बातें न कीं। आते समय शिरगाँवके नज़दीक कदम और उसके कुछ साथियोंसे मुकुन्द और सुलभाकी भेंट हो गयी थी। उन्होंने मुकुन्दसे कहा था कि लाठी चार्ज करके आजकी सभाको भी भंग करनेका सरकारका इरादा है। यह एक ही विचार सुलभाके मनमें चक्कर काट रहा था। उसे एक बात थोड़ी अच्छी लगी। विजयका तार आनेके कारण तात्यासाहब उसकी ज़मींदारीके गाँव गये हुए थे।

गीताबहादुर शास्त्रीजीको किसानोंकी ऐसी सभामें क्या दिलचस्पी हो सकती थी? पेन्शनर होनेके कारण पुष्पाके पिताजी अपने स्वास्थ्यकी चिंतामें ही मग्न रहा करते थे। आधी रातको अकेली पुष्पा इतनी दूर सभामें कैसे आ सकती थी? यह भी संभव न था कि उसके पिताजी उसे इसकी इज़ाज़त दे देते।

भोजन हो जानेके बाद सुलभाने विठूसे गाड़ी निकालनेके लिये कहा। मौसीजी और गरुडके साथ सुलभा जब सभास्थानपर पहुँची, तब सैकड़ों किसान एकात्रित हो चुके थे। अलग अलग रास्तोंसे वे अभी भी चले आ रहे थे। मौसी और गरुडको ठीक स्थानपर बैठा देनेका प्रबंध करके, सुलभा जहाँ मुकुन्द खड़ा था, वहाँ गयी। कदमको छोड़कर बाकी सारे कार्यकर्ता उसे दिखायी दिये। लेकिन उसकी समझमें यह नहीं आया कि सिर्फ कदम ही क्यों गैरहाज़िर है। मुकुन्द सुलभाको एक तरफ़ ले गया और उसने कहा, - 'मैंने कदमको मंदिरमें बैठा दिया है। भयंकर क्रोधी हैं हज़रत! हमारी तरफ़से लाठीचार्ज करनेके लिये कोई मौक़ा न

मिलना चाहिए। इसलिये जानबूझकर मैंने उसे दूर बैठा दिया है। सभाका काम ठीक तरहसे पूरा हो जानेपर उसे बुला लेगे।'

सुलभा इधर-उधर घूमकर अपनी पहचानके किसानोंसे बातें करने लगी। पहले दिनकी तरह आज वह स्वयं अपने आपपर लज्जित न हुई। चाँदनीमें कतारसे बैठे हुए किसानोंके दल देखकर मुकुंदकी कार्यशीलताके प्रति उसका आदर द्विगुणित हो गया।

सबकी आँखें मैदानकी ओर चली आ रही मोटरकी ओर मुड़ गयीं। एक - दो - तीन - चार भरी हुई लॉरियोंमेंसे पुलिसवाले उतरे। वे बन्दुकों और लाठियोंसे सज्ज होकर आये थे। सुलभा ताड़ गयी कि आजकी सभाका रंग कुछ अलग है! वह अस्वस्थ दृष्टिसे मुकुंदकी ओर देखने लगी। मुकुंद शान्त था। बीचहीमें सुलभाको अपनी मोटरके हॉर्नकी आवाज़ सुनाई दी। 'क्या, तात्यासाहब आ गये?' उसके भ्रांत मनने कहा। तुरंत ही उसे अपनी भीरुतापर स्वयं ही हँसी आयी।

सभाका कार्य आरंभ करनेके लिये मुकुंदने सभा-मंचके दोनों तरफ़ दो ऊँचे झंडे लगा दिये। एक झंडेपर हलिया और हथौड़ेका चिन्ह था। दूसरा भारतका तिरंगा राष्ट्रीय झंडा था।

मुकुन्द मंचपर चढ़ा। जनसमुदाय शान्त हो गया; परंतु मुकुन्दके मुँहसे शब्द निकलनेसे पहले ही एकदम एक पिस्तौलकी आवाज़ आयी। सबकी आँखें उस गिरे हुए मंदिरकी ओर मुड़ीं। एक पुलिस ऑफ़िसर कुछ पुलिसवालोंको साथ लेकर उस तरफ़ खाना भी हो गया। मुकुंदने बाबा और सुलभाको आँखसे इशारा किया। वह मुसलमान बूढ़ा सुलभाको लेकर मंदिरकी ओर तेज़ीसे चल दिया। चार-पाँच स्वयं-सेवक भी उनके पीछे पीछे गये।

दूर उस गिरे हुए मंदिरमें क्या हुआ होगा, इसके बारेमें लोग भिन्न भिन्न तर्क कर रहे थे। पुलिस सुप्रिन्टेन्डेंटको लगा, इस आंदोलनके किसी नेताने पुलिसको डटानेके लिये यह हिकमत लड़ाई होगी। लोगोंका ख्याल हुआ कि हमें डटानेके लिये पुलिसने यह गोली चला दी होगी।

परंतु सभी तर्क गलत निकले। उस मंदिरकी ओरसे जो लोग लौटकर आये उनके साथ हाथमें पिस्तौल लिया हुआ कदम तो था ही; परंतु सुलभाका हाथ पकड़े चली आ रही केशर भी थी। उनके पीछे स्वयंसेवक एक बेहोश घायल

मनुष्यको काँधेपर लिये चले आ रहे थे। सबको तुरंत पता चल गया कि वह घायल व्यक्ति एक पटान है। कदमको पुलिसने गिरफ्तार कर लिया। उस पटानके ज़ख्मका क्या प्रबंध किया जावे, यह एक प्रश्न था। परंतु पुलिस सुप्रिटेण्डेंट और मुकुन्दने यही निश्चय किया कि उसे नज़दीककी मिशन अस्पतालमें ही तुरंत भरती कर दिया जाये। संभव था कि उसका घाव घातक हो। मुकुन्दने यह भी सलाह दी कि डॉक्टरनीकी हैसियतसे सुलभा भी उसके साथ अस्पताल जावे। केशरको मौसीके पास बैठाकर सुलभा सैनेटोरिअमकी ओर खाना हो गयी।

• • •

वहाँ जानेपर उसे पता चला कि मुख्य डॉक्टर अभीतक जाग रहे हैं। किसी नर्सने कहा कि एक औरतकी तबीयत एकदम बिगड़ गयी और वह बिलकुल अंतिम साँसें ले रही है। उसीके कारण बड़े डॉक्टर अब भी अस्पतालमें हैं। सुलभाने जब और भी पूछताछ की तब उसे पता चला कि अंतिम साँसें गिनने-वाली यह औरत दीदी ही है। डॉक्टरकी इज़ाज़त लेकर वह दीदीके बिस्तरके पास गयी।

‘दीदी, पहचाना मुझे?’

दीदीने शून्य दृष्टिसे सुलभाकी ओर देखा।

‘दीदी, दीदी, मैं सुलभा—’

‘दीदीकी शून्य दृष्टिमें एकदम जीवन आ गया! क्षीण स्वरमें वह बोली, — ‘सुलभा बहन, मुकुंद—’ आगे उससे बोला नहीं जाता था; लेकिन उसकी आँखोंसे सावनकी झड़ी लग गयी।

इसकी कोई पूछताछ न कर कि पटानकी क्या व्यवस्था हुई है, सुलभा पागलकी तरह दौड़ी गयी। उसके मनमें एक ही विचार नाच रहा था—मुकुंद और दीदीकी भेट तो हो जायेगी न? मुझसे यदि एक मिनटकी भी देर हो गयी तो—

वह सभा-स्थानपर हाँफती हुई ही पहुँची और सीधी मंचकी ओर गयी। यह तो सोचनेका उसे होश ही न था कि लोग क्या कहेंगे। परंतु मुकुंदको उससे बातें करनेका अवकाश ही कहाँ था? वह पुलिस सुप्रिटेण्डेंटसे अगर मगर कर रहा था।

पुलिसबहादुर कह रहे थे, — ‘तुम अपने दोनों झंडोंको हटा दो यहाँसे। रियासतमें सिर्फ़ रियासतके झंडेको ही सम्मान प्राप्त होना चाहिए!’

‘आप अपना झंडा लेकर यहाँ शौक्रसे लगा दीजिये। मुझे कोई आपत्ति न होगी। हम उसे उखाड़कर नहीं फेंक देंगे। परंतु ये दो झंडे—एकके पीछे तैंतीस करोड़ लोगोंकी भक्ति है और दूसरेके पीछे दुनियाके सारे मज़दूरोंकी ताकत है। ये दोनों झंडे यहाँ गर्दन तानकर खड़े रहेंगे!’

‘पुलिसके हाथकी बंदूकें और लाठियाँ देखीं हैं न?’

सुलभासे अब न रहा जाता था। वह आगे बढ़ी और मुकुन्दका हाथ पकड़कर बोली,—

‘मुकुन्द—’

‘चुप रहो तुम, सुलभा!’

‘उधर दीदीकी हालत बहुत खराब हो गयी है।’

‘दीदीकी?’

‘दीदी हमें छोड़कर जा रही है! तुम जाकर यदि उससे भेट कर आओ, तो कम-से-कम सुखमे तो मरेगी!’

‘सारा जीवन ही जब दुखमें बीता है तब मृत्युके समय भी सुख कहाँसे मिलेगा? सुलभा, दीदी मुझे छोड़कर जा रही हो, फिर भी अपने इन झंडोंको, अपने इन आदमियोंको छोड़कर इस समय मैं कहीं भी नहीं जा सकता!’

तुरंत ही लोगोंकी ओर मुड़कर वह आवेशसे बोला,—‘भाइयो और बहनो, बोलो वंदे मातरम्, किसान और मज़दूर जिंदाबाद, किसानोंकी जय, मज़दूरोंकी जय!’

उस प्रचण्ड जनसमुदायसे वंदे मातरम्, जय और जिंदाबादके नारोंकी प्रति-ध्वनियाँ सौगुनी बुलंद होकर लौटीं। परंतु ये सारी ध्वनियाँ हवामें विलीन भी न हो पायी थीं, तभी एक कर्कश सीटी सुनायी पड़ी। तुरंत ही लाठीधारी पुलिसकी एक टोली झंडोंकी दिशामें आगे बढ़ी। किसान भी चिढ़कर उठे। आगेकी कतारवाले लोग झंडोंकी रक्षाके लिये एकदम दौड़ पड़े। लाठीचार्ज शुरू हो गया।

मुकुन्द सुलभाके पास आकर बोला,—‘तुम पीछे जाकर लोगोंको हिम्मत दो एकबार। भागा-भाग शुरू हो गयी तो—प्राण भी चले जाये कोई हर्ज़ नहीं, आज सभा होकर ही रहेगी। हमारी जीत होगी—होनी चाहिए।’

सुलभा बिजलीकी तरह चली गयी। पीछे लोग आगे न बढ़ें इसलिये पुलिस-वाले उनपर भी लाठियाँ बरसा रहे थे। उन लोगोंके सामने सुलभा जाकर खड़ी

हो गयी । हाथ, पाँव, सिर कहीं भी लाठीकी मार पड़ती, फिर भी लोग ज़रा भी प्रतिकार न कर थोड़ी भी हूँ या चूँ न कर अपने अपने स्थानोंपर खड़े थे । एक भी मनुष्य डरकर न भागा ।

मंचके आसपास बहुत भीड़ इकट्ठी हो रही थी । बाबाको अपने लोगोंपर नज़र रखनेकी हिदायत देकर सुलभा मुकुन्दकी ओर दौड़ी । उस भीड़मेंसे घुसते हुए वह पसीनेसे तरबतर हो गयी । बड़े कष्टसे भीड़के बीचमें पहुँचकर उसने देखा । मुकुन्द निश्चेष्ट पड़ा हुआ था । उसके सिरसे खून बह रहा था । नीचे बैठकर उसके सिरको अपनी गोदमें लेनेके लिये सुलभा थोड़ी झुकी भी होगी । इसी समय कोई चिल्ला पड़ा, — ‘झंडा सम्हालो !’

सुलभा वेगसे उस झंडेकी दिशामें दौड़ पड़ी । नीचे गिरते हुए मनुष्यके हाथसे, त्रिलकुल ज़मीनको लगते लगते उसने झंडा उठाया और उसे ऊँचा उँचा फहरा दिया । राष्ट्रीय झंडा था वह ! उसने आवेशसे चिल्लाया, — ‘वन्दे मातरम् !’

‘वन्दे मातरम्’के जयघोषसे सारी दिशाएँ गूँज उठीं ।



२२

एक ही फूल

सुलभाके हाथपर एक लाठी पड़ गयी फिर भी उसकी झंडेकी पकड़ न छूटी । उसने मनमें निश्चय कर लिया कि बेहोश होतेतक मैं हाथसे झंडा न छोड़ूंगी । निश्चेष्ट मुकुन्दकी मूर्तिका स्मरण कर वह खड़ी रही ।

पुलिस सुप्रिटेन्डन्टका ध्यान उसकी ओर जाते ही उसने लाठीचार्जको रोकनेका हुक्म दिया । वह चिल्लाया, — ‘बेवकूफो ! औरतोंको क्यों मारते हो ?’ सुलभा तात्यासाहबकी बेटी और विजयकी मेहमान है यह मालूम होनेके कारण ही स्त्रीदाक्षिण्य जाग्रत हो गया था । बेचारे हुक्मके तावेदार सिपाही ! उन्हें इस अन्दरूनी बातका क्या पता ?

पुलिस सभास्थानसे हट गयी । तुरंत ही मंचके आसपास अपार भीड़ लग गयी । मुकुन्द अभीतक बेहोश ही था । सुलभाने सब लोगोंको घर जानेके लिये और पुलिस कितना भी कष्ट दे फिर भी उससे न डरते हुए फिरसे सभामें आनेके लिये कहा । किसानोंकी इच्छा मुकुन्दके चरणोंको छूकर फिर जानेकी थी । परंतु यह कहकर कि उसे तुरंत ही अस्पताल ले जाना होगा, सुलभाने उन्हें अपने अपने घर रवाना कर दिया । उनकी इच्छा पूरी न हो पायी ।

पठानके जख्मकी मरहमपट्टी जारी थी, तभी मुकुन्दको लेकर लोग अस्पताल

पहुँचे। डॉक्टर जब मुकुन्दकी जाँच कर रहा था, तबतक सुलभा उसके नज़दीक खड़ी थी। परंतु उसने अभीतक जो हिम्मत रखी थी, वह उसके ज़रम बाँधते समय ज़रूर टूटने-सी लगी। इस भयसे कि मेरी आँखोंमें आँसू आ जायेंगे, वह केशर और मौसीजीको लेकर बागमें आकर बैठ गयी। गरुडजी भीतर ही रहे।

केशर आधी रातको उस गिरे हुए मंदिरमें कैसे पहुँची, यह सुलभाके लिये एक पहेली ही हो गयी थी। केशर जैसे जैसे सारा हाल कहने लगी, वैसे वैसे सुलभाके मनमें पूर्ण प्रकाश पड़ने लगा।

कितना विलक्षण हाल था वह! विठू डाइवर केशरके नामका पत्र लेकर केशरके घर गया। रतिलाल केशरके साथ जानेको तैयार हो गया था। इसलिये मनसुखलालने केशरको जानेकी इज़ाज़त दे दी। रतिलाल विठूसे किसी पूर्व-नियोजित स्थानपर गाड़ी ले जानेके लिये कह रहा था। इसी बीच कुछ बहाना बनाकर विठूने मंदिरकी दिशामें गाड़ी मोड़ दी। गाड़ीके रुकते ही झाड़ीमेंसे एक पठान बाहर आया और एक हाथमें छुरा लिये हुए दूसरे हाथसे वह केशरको गाड़ीके बाहर खींचने लगा। उस समय विठू क्या कर रहा था इसका केशरको पता ही न चला! उसने यह ज़रूर देखा कि रतिलाल मोटरसे बाहर आकर हाथमें पिस्तौल लिये खड़ा है। रतिलालकी ओर दृष्टि जाते ही उस पठानने केशरका हाथ छोड़ दिया और वह रतिलालके सीनेमें छुरा घुसेड़नेके लिये वेगसे आगे बढ़ा। उसे देखते ही रतिलालके छक्के छूट गए। उसे यह भी होश न रहा कि मेरे हाथमें पिस्तौल है। वह काँपने लगा। पठानने एक क्षणमें ही रतिलालका काम तमाम कर दिया होता। परंतु जाने कहाँसे, कदम फुर्तीसे आगे बढ़ा और रतिलालके हाथसे पिस्तौल छीनकर उसने पठानपर गोली चला दी। पठान धम्मसे नीचे गिर पड़ा। इस अवधीमें केशर मोटरसे उतरकर, नज़दीककी झाड़ियोंमें जाकर छिप गयी थी। कदमने उसे देख लिया होगा। उसे हिम्मत देनेके लिये वह उसकी ओर मुड़ा। यह मौक़ा पाकर विठू और रतिलाल गाड़ीमें जाकर बैठे और उन्होंने गाड़ी बेतहाशा दौड़ा दी।

आगेका सब हाल सुलभाको मालूम ही था। लेकिन घटी हुई घटनाकी अनेक कड़ियाँ केशरको नहीं मिल रही थीं। उन्हें ढूँढ़कर सुलभाने जंजीर ठीक तरहसे तैयार करके उसको दिखा दी। गैरेजके नज़दीक उसने दो मनुष्योंके बीच उस दिन जो संवाद सुना था वह उसने केशरको सुना दिया। उससे जो निष्कर्ष

निकलता था वह इस तरह था : विठू पठानका कर्जदार था। वह उसका कर्ज सरलतासे अदा नहीं कर सकता था। पठानने उससे कहा कि तू केशरको भगानेमें मेरी मदद करे, तो मैं अपने कर्जका बहुतसा हिस्सा छोड़ दूंगा। विठू राजी हो गया। विठूकी समझमें नहीं आ रहा था कि यह मौक़ा कैसे लाया जाय। लेकिन इसी बीच उसको रतिलालकी तरफ़से अचानक मदद मिल गयी जिसकी कि उसको कोई आशा न थी। एक बार सुलभाने केशरसे कहा था - 'मैं तुझे पत्र लिखूंगी, तब तू आ जाना।' उस समय रतिलाल दरवाज़ेमें खड़ा था और उसने यह सुन लिया था। वह केशरपर बलात्कार करनेके लिये उसे किसी एकान्त जगह ले जाना चाहता था। इस कामके लिये उसने विठूको अपने षट्यंत्रमें शामिल किया। अंधा क्या चाहे दो आँखें - विठू बड़ी खुशीसे राजी हो गया। रतिलालने विठूके हाथ केशरको सुलभाका एक बनावटी पत्र भेजा। इधर विठूने पठानसे कह दिया कि वह मंदिरकी झाड़ीमें छिपा रहे। उसे ठीक समय और दिन भी बता दिया। विठूने अपने दिलमें सोचा होगा कि मंदिरके पास पठान और रतिलाल आपसमें निपटते रहेंगे। उसे रतिलालकी विशेष चिन्ता न थी। वह तो पठानको खुश करना चाहता था। रतिलाल विठूके खिलाफ नहीं जा सकता था। उसे डर था कि यदि मैं विठूसे कुछ गड़बड़ करूंगा तो वह सारा भंडा फोड़ देगा। यदि पठान केशरको लेकर भाग जाता फिर भी मोटरमें रतिलालके होनेके कारण विठू किसी भी गुनाहसे साफ़ छूट सकता था।

इस विचित्र घटनाके सारे धागे हाथमें आ गये थे। साथ ही, इसकी और भी अधिक चर्चा करनेसे कोई लाभ न था। इसलिये केशर सुलभासे बोली, - 'कोयलेकी क्या बात करे ? जितना वह घिसा जायेगा, उतना काला ही निकलेगा !'

'परंतु कोयलेको रत्न माननेवाले लोग भी हैं न ? काले पानीकी सज़ा पानेकी योग्यता रखनेवाला यह रतिलाल कल किसानोंकी ज़मीनें हड़प कर लेगा और किसानोंपर अत्याचार न हो, इसलिये जी-जानसे कोशिश करनेवाला मुकुन्द अपने जख़मके अच्छे होनेसे पहले ही जेल जायेगा।'

केशर गद्गद स्वरमें बोली, - 'सुलभा, प्राण भी चले जायें, पर अब घर लौटकर नहीं जाऊँगी मैं ! तुम्हारे साथ ही रहूँगी। तुम जहाँ जाओगी, वहीं तुम्हारे साथ मैं भी चढ़ूँगी !'

'कहीं भी ?'

‘हाँ, दुनियामें कहीं भी !’

‘मुझ बूढ़ीको भी अपने साथ ले जाओगी न तुम लोग ?’—हँसते हुए मौसीजीने प्रश्न किया ।

• • •

सुबह मुकुन्द होशमें आया । सुलभाकी ओर देखकर उसने पूछा, — ‘क्या, पुलिसने झंड़े हटा दिये ?’

‘नहीं । जीत हमारी हुई ।’

‘हमारी ?’—मुकुन्दने हाथ उठाया । सुलभाने उसके हाथको अपने हाथमें ले लिया । अपना आनंद व्यक्त करनेके लिये उसने सुलभाका हाथ दबाया ही था ! वह ताड़ गया कि बड़े कष्टसे वह कोई दर्द सह रही है ।

‘तुम्हें क्या होता है, सुलभा ?’

‘बहुत खुशी हुई है मुझे ।’

‘मनको या शरीरको ? तुम्हारे हाथपर लाठी लगी है न ?’

सुलभा सिर्फ हँसी ।

मुकुन्दने उसका दर्द-भरा हाथ अपने हाथमें लिया और उसे अपने हाँठोंके पास ले जाकर चूम लिया । आनंदकी मधुर वर्षासे उसकी मुद्रा कितनी उज्ज्वल हो गयी थी !

लेकिन उसके आनंदको देखकर सुलभाका हृदय ज़रूर व्याकुल हो गया । यह देखकर कि मुकुन्द होशमें आ रहा है, डॉक्टर सुलभाको उसके कमरेमें अकेली छोड़कर, बाहर चले गये थे । उसे जो समाचार देना था वह ऐसे समय उसको अत्यन्त प्रिय व्यक्तिके द्वारा ही मालूम होना इष्ट था ।

अपनी तंद्रासे जागकर, मुकुन्दने सुलभाकी ओर देखा । उसकी आँखोंमें आँसु भरे थे ।

‘मेरे लिये रो रही हो तुम ?’

सुलभाने ‘हाँ’ कहा ।

‘इसलिये कि मुझे ये घाव हो गये हैं ?’

सुलभाने गर्दन हिलाकर ‘ना’ कहा ।

‘फिर ?’

‘ये घाव अच्छे हो जायेंगे । पर—’

‘पर क्या ?’

‘यह दूसरा घाव कैसे भरेगा ?’

‘दूसरा घाव ?’

‘दीदी हमें छोड़कर चली गयीं, मुकुन्दबाबू !’

‘दीदी’ – सिर्फ इतना ही शब्द मुकुन्दके रुद्ध कंठसे बाहर निकला। उसकी आँखोंसे आँसूकी धाराएँ बहने लगीं। उन्हें पोंछनेके लिये सुलभा आगे बढ़ी। झुककर वह उसके आँसू पोंछनेवाली थी, तभी उसकी भी आँखोंसे टप टप आँसू गिरने लगे। दोनोंके आँसू एक हो गये !

• • •

डॉक्टरने मुकुन्दको एक दिनके लिये भी अपनी जगहमें न हटनेकी चेतावनी दे दी थी। इसलिये दीदीकी लाशको ही सुवह सात बजे उसके कमरेमें लानेकी व्यवस्था डॉक्टरने कर दी। मुकुन्दने शान्तिसे दीदीकी मूक मुद्राकी ओर देखा। उसके चरण अपने मस्तकपर लगा लिये और दोनों हाथ जोड़कर, संसारको त्याग कर चली गयी अपनी अत्यन्त भावुक बहनको उसने अंतिम प्रणाम किया।

उस पठानकी कुल मिलाकर हालत ठीक न थी। घाव उसके मर्मस्थानमें लगा था, इसलिये उसके ज़िंदा रहनेकी क़रीब क़रीब संभावना ही न थी। बीचहीमें वह टोरकी तरह चिल्ला पड़ता ! उसका बयान ले लिया गया था। केशरने जो हाल बताया था, उससे वह बहुत कुछ मिलता-जुलता भी था।

उसके चिल्लानेके कारण दूमरे रोगी डर जाया करते थे। अंतमें यह तय हुआ कि उसकी चारपायी बरामदेमें ले जाकर रख दी जाय। मुकुन्दको इसका पता लगते ही उसने उसको अपने कमरेमें रखनेके लिये डॉक्टरसे बहुत अनुनय-विनय की।

दो खिड़कियोंके नज़दीक दो चारपाइयोंपर पड़े हुए मुकुन्द और पठान-दोनों जब एक दूसरेकी ओर देखने लगे, तब सैंकड़ों विचित्र प्रसंग देखे हुए उस वृद्ध अमेरिकन डाक्टरके मनमें भी विचारोंका विलक्षण कोलाहल उठे बिना न रहा। दोनों जख्मी हुए थे, परंतु मुकुन्द बहादुर सिपाही था और वह पठान क्रूर कसाई था। दीन-दुखियोंकी रक्षा करनेवाला देव और ग़रीबोंको निचोड़कर और लड़कियाँ बेचकर गुलछर्रे उड़ानेवाला राक्षस – ये दोनों एक ही मनुष्यजातिमें पैदा हो, यह कितने आश्चर्यकी बात थी ? मुकुन्दके बिस्तरके पास जाकर अत्यंत प्रेमसे वह वृद्ध

डॉक्टर बोला, — ‘मुकुन्द, कलकी तुम्हारी वीरताके लिये मैं तुम्हारा हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।’

‘मैंने अपना कर्तव्य किया, डॉक्टर !’

‘तुम्हारे जैसा तरुण यदि मेरी मातृभूमि — अमेरिकामें जन्म लेता, तो लोग उसकी भगवानकी तरह पूजा करते। परंतु यहाँ — खैर, गजनीति मेरा विषय नहीं है। परंतु पिछले तीस साल मैंने हिंदुस्तानमें बिताये हैं। तिलकको जब देशनिकालेकी सज़ा मिली थी, तब भी मैं यहीं था। तीस वर्षमें तुम लोगोंने जो तैयारी की है उसको देखकर मैं यह भविष्यवाणी कर सकता हूँ कि हिंदुस्तान शीघ्र ही स्वतंत्र होगा !’

‘वंदे मातरम् !’ — मुकुन्दने आनंदसे कहा।

‘वंदे मातरम् !’ — दरवाज़ेमें खड़ा हुआ बाबा बोला।

मुकुन्द और उस बूढ़े मुसलमान काश्तकारके इन उद्गारोंको सुनकर, उस पठानके हाँठ हिले। वह क्या पुटपुटाया सो वही जाने। लेकिन डॉक्टर द्वारा की गयी मुकुन्दकी प्रशंसा सुननेके बादसे वह लगातार मुकुन्दकी ओर आदरसे देख रहा था। सदाके लिये आँखें बंद होते समय मनुष्यकी आँखें खुलती हैं क्या, कौन जाने।

मुकुन्दको अधिक न बोलनेकी सूचना देकर, डॉक्टर चल दिये। बाबा मुकुन्दके पास बैठा हुआ उसके बंधे हुए जूँवोंकी ओर देख रहा था। उसकी पीठ उस पठानकी ओर थी। बाबाकी आँखोंमें आँसू भरे हुए देखकर, मुकुन्दने कहा, — ‘बाबा, सच्ची लड़ाई तो अब आगे है ! मेरे अच्छे हो जानेपर हम फिरसे एक सभा करेंगे। काश्तकारोंके सत्याग्रह किये बगैर और जेलोंको भर दिये बगैर सरकार और मिल-मालिकोंकी आँखें नहीं खुलेंगी।’

एकदम जैसे कुछ स्मरण-सा हो आया हो, मुकुन्दने कहा, — ‘पुलिसने कदमको छोड़ दिया क्या ?’

‘सुलभाताई अभी गयी हैं वहाँ !’

‘यह भी देखना होगा कि मनोहर छूट सकता है या नहीं !’

बूढ़ा कोई उत्तर दे इससे पहले ही दूसरी चारपायीसे क्षीण आवाज़ आयी, — ‘मनोहर ! मनोहर कालेलकर ?’

बाबाने एकदम पीछे मुड़कर देखा। उस कराहनेवाले पठानकी ओर उसकी

दृष्टि गयी। एकदम उसे कोई पुरानी बात याद हो आयी। उस पठानके नज़दीक जाकर वह बोला, — ‘तुम, तुम ही हो क्या?’

‘हाँ, मैं ही हूँ वह खूनी! जातभाईके नाते तुमने मुझे छिपा दिया था, नहीं तो मुझे ही फाँसी होती उस समय! वेश्याका खून मैंने किया था, मनोहरने नहीं।’

मुकुन्दने एकदम बिस्तरसे उठकर बैठनेका प्रयत्न किया, परंतु पीठमें एकाएक टीस उठ जानेके कारण उससे उठते न बनता था। जैसे पागलपनकी लहर आ गयी हो वह पठान बड़बड़ा रहा था, — ‘मनोहर उस वेश्याके घर गाना सुनने आया करता था। मैंने उस वेश्यासे बंबई चलनेके लिये कहा। उमने मेरी न सुनी। मुझे क्रोध आ गया और क्रोधावेशमें मैंने उसे मार डाला। मनोहरको मैंने उसकी इज्जत जानेका डर दिखाया और उसे भाग जानेकी सलाह दी। उसके भाग जानेके कारण मेरा काम सरल हो गया। अब मौतके दरवाज़ेमें झूठ क्या बोल्छू, बाबा?’

मुकुन्दने चिल्लाकर कहा, — ‘बाना, बैठे बैठे सुन क्या रहे हो? उठो, जाओ — जल्दी डॉक्टरको बुलाओ, पुलिसको बुलाओ!’

• • •

गरुड और मौसीको घर भेजकर, सुलभा केशरको साथ लेकर पुलिस थानेमें गयी। उन दोनोंकी और कदमकी मुलाकात हुई ही नहीं। लेकिन शिरगाँवके दरबारी छापखानेने रातोंरात जल्दी करके ‘शिरगाँव-दरबार गैज़ेट’का जो पूरक अंक निकाला था, वह उन्हें वहाँ देखनेको मिला। ज्वार, चना, गुड़ और मिर्च आदिके दैनिक भाव देनेवाले इस दरबारी गैज़ेटमें आज जैसा साहित्य कभी भी छपकर नहीं आया था। कलक़ी सभामें काश्तकार किस तरह इकट्ठा किये गये थे — यहाँसे दीवानजीने उसमें वर्णन आरंभ किया था। सुलभाको आभास हुआ कि इतिहासके किसी प्रसिद्ध युद्धका वर्णन ही शब्दोंमें कुछ हेरफेर करके उसमें छाप दिया है। कोई कथावाचक रावण या कुंभकर्णका वर्णन करे उस तरह मुकुन्द और कदम आदिके विषयमें उसमें लिखा था। उसमें एक यह भी उल्लेख था कि मनोहर जैसा खूनी भी इस आन्दोलनमें शामिल है। कदमके बारेमें जो मज़बूत था उसे पढ़कर तो केशर और सुलभा हँस-हँसकर दुहरी हो गयीं। एक पठानके चंगुलसे एक असहाय लड़कीको मुक्त करते समय उसने जो प्रसंगावधान दिखाया था,

उसका दरबारको कोई पता ही न था। 'दूसरेके पिस्तौलका उपयोग करनेवाला भयंकर अत्याचारी नेता'—कहकर उसका गौरव किया था!

कदमका उदाहरण देकर दीवानजीने यह घोषणा भी की थी कि किसानोंका नेता कहलानेवाले लोगोंका आन्दोलन उत्पातकारी होनेके कारण, इसके आगे उनकी सभाएँ कानूनन रोक दी गयी हैं। जब कि सरकारके द्वारा मिल-मालिकों और काश्तकारों—दोनोंके हितोंकी रक्षाका प्रयत्न हो रहा है तब काश्तकारोंने सरकारके प्रति अपना अविश्वास प्रकट किया है। इसलिये कलसे उनकी ज़मीनें पुलिसके पहरेमें मिल-मालिकको दी जायेंगी—यह भी उस गैज़ेटमें लिखा हुआ था। यह भरपूर आश्वासन देकर, कि मुआवज़ेका विचार सरकार यथासमय करेगी और टेनिस कोर्टके उस पारकी ज़मीनें कलसे ही कारखानेके मालिकको दी जाने लगेगी, दीवानजीने अपना घोषणा-पत्र समाप्त किया था।

• • •

सुलभा केशरको लेकर जब घर आयी तब उसने देखा कि तात्यासाहब और विजय प्रोफेसर गरुडके साथ गप्पें हाँक रहे हैं। उनकी बातचीतसे सुलभा इतना ही समझ सकी कि शिरगाँवमें कल टेनिसका एक अच्छा मैच होनेवाला है। वह जब केशरके साथ अपने कमरेकी ओर जाने लगी, तब तात्यासाहबने रुखे स्वरमें उससे कहा,—‘सुलभा, तू स्वयं चाहे जो कर, परंतु दूसरेकी लड़कियोंको बिगाड़नेका यह उद्योग—’

सुलभाने झलझली हुई शेरनीकी तरह उनकी ओर देखा।

तात्यासाहब किंचित नरम हुए। वे मृदु स्वरमें बोले,—‘हम भी क्या करें? दो घंटेमें तीन संदेश आ गये मनसुखलालके—‘सुना है, केशर तुम्हारी सुलभाके साथ है। घर आयेगी तो जल्द भेज देना।’

सुलभाने केशरकी ओर देखा।

केशरने तात्यासाहबसे कहा,—‘मैंने माँको खबर भेज दी है।’

‘क्या खबर भेजी है?’

‘मैं फिर घरमें कदम न रखूंगी!’

‘मतलब?’—तात्यासाहबने आश्चर्यसे कहा, ‘न जाने शहरमें लड़कियोंके दिमागको घुमानेकी कोई बीमारी ही आ गयी है क्या?’

• • •

जब सुलभा अपने कमरेमें केशरको लेकर गयी, तब मौसी स्वयं चायके दो प्याले लेकर वहाँ आयीं। तात्याका एक सप्ताहके भीतर सूख गया हुआ प्रेम और मौसीका पूरे जीवनमें तिलमात्र भी कम न हुआ स्नेह—दोनोंकी तुलना करते सुलभा पुलकित हो गयी। उसकी आँखोंमें आँसू देखते ही मौसी बोली,—
‘निबर होकर इतना बड़ा खंडा फहरा दिया तूने कल ! और अब—’

‘आँसू कोई भयके ही नहीं होते, मौसी !’

‘फिर ?’

‘वे प्रेमके भी होते हैं !’

मौसीके साथ दुलारसे खिलवाड़ करती हुई सुलभा बोली,— ‘मैं यदि कहीं गयी, तो आप मुकुन्दके स्वास्थ्यकी रोज़ जाकर पूछताछ करती रहेंगी न ?’

‘कहाँ जा रही है तू ?’

‘आपको छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊँगी। लेकिन मुकुन्द अभी कुछ दिन काँई काम करनेके योग्य नहीं हैं। फिरसे यदि सभा करनी होगी, तो क्या मुझे ही उसका सारा प्रबंध न करना होगा ? मुझे सब गाँवोंमें दौरा करना चाहिए !’

‘फिरसे सभा ! मैं तो अब कोई सभा नहीं देखना चाहती ! पुलिसवालोंमें थोड़ी भी मनुष्यता होती है क्या ? गरीबोंको व्यर्थ ही मारते हैं—’

‘घर बैठे बैठे गरीबोंकी यह मार न रुकेगी, मौसी !’

‘तेरा हाथ दर्द करता होगा ! है न बेटा ?’

‘मुकुन्दके घाव कितने दर्द करते होंगे ?’

‘सच ? कितना बहादुर लड़का है वह ! कल रातको तिलभर भी नहीं हिला वह अपने स्थानसे। उस समय मुझे अभिमन्युका स्मरण हो आया था !’

‘अभिमन्यु क्यों कहती हैं आप उसे ?’

‘क्यों ?’

‘अभिमन्यु बहादुर था। परंतु वह लड़ाईमें काम आ गया। मेरा मुकुन्द कोई—’

मौसी और केशर दोनों हँसने लगीं, तब सुलभाके ध्यानमें आया कि मैंने सिर्फ ‘मुकुन्द’ नहीं कहा और ‘मेरा मुकुन्द’ शब्द मेरे मुँहसे निकल गये। वह अपने आप ही हँसी।

दरवाज़ेके सामने किसीकी मोटर-सी रुकी। सुलभाने खिड़कीमेंसे देखा।

केशरकी माँ मोटरसे उतर रही थी। वह और केशर टैडकर उसके पास गयीं। टग्वाजेपर ही माँने अपनी बेटीको कसकर गले लगा लिया। 'बेटा, घर चल न!'— वह रोते रोते बोली।

अपनी बाहें माँके गलेमें डालकर गरदनके इशारेसे केशर घर जानेसे इन्कार कर रही थी। सुलभाकी समझमें ही न आ रहा था कि इस समय मैं क्या कहूँ।

इसी समय तात्यासाहब और विजय भीतरसे बाहर आये। तात्यासाहबपर नज़र पड़ते ही केशरकी माँ पागलकी तरह उनकी ओर देखने लगी। एकदम गोल गोल आँखें घुमाती हुई वह चिल्ला पड़ी, — 'अरे चंडाल!' सुलभा चकित होकर देखने लगी। तात्यासाहबकी ओर अँगुली दिखाकर केशरकी माँ चिल्लायी, — 'यही—यही है वह राक्षस। यही मुझे उस जजके घर ले गया था। मेरी इज्जत लूटी—मेरे जीवनका सत्यानाश कर दिया।'।

तात्यासाहब भौचकके-से होकर केशरकी माँकी ओर देख रहे थे। उन्हें यह कल्पना ही न थी कि अपना पाप इतने दीर्घ कालके बाद और ऐसे विचित्र प्रसंगके रूपमें प्रकट होगा।

केशरकी माँ विलक्षण क्रूर दृष्टिसे तात्यासाहबकी ओर देख रही थी। एकदम वह बेहोश हो गयी। सुलभाने उसे एकदम समझाल लिया इसलिये सब ठीक रहा, वरना वह धड़ामसे ज़मीनपर ही गिर पड़ती।

घबराई हुई केशरकी जंघापर उसकी माँका सिर रखकर सुलभा तात्यासाहबसे बोली, — 'कुछ समयके पहले आपने मुझसे कहा था न, कि मैं केशरको बिगाड़ रही हूँ? और आप एक निरपराधनी स्त्रीका बलि देकर, आपने अपनी वकालतका रंग जमाया! मुझे शर्म आती है कि इस तरहके पापसे लथपथ अन्नपर मैं छोटीसे बड़ी हुई! आप मनोहर भैयाका मुँह देखनेको भी तैयार नहीं हैं— फिर आपका मुँह भी दूसरे क्यों देखें? तात्या, माफ़ करना। अपने माँ-बाप भी हों, फिर भी उनके द्वारा किये गये सामाजिक गुनाह सौम्य नहीं माने जा सकते। आपने अपने बच्चोंसे प्रेम किया होगा, परंतु वे सुखसे रहें इसलिये इस स्त्रीको बलि देनेका आपको क्या अधिकार था? देव, धर्म, नीति, मनुष्यता आदिकी बड़ी बड़ी बातें और आपपर छाया हुआ वह थिऑसफीका पागलपन—क्या, यह सब निरा ढोंग ही था? तात्या, मनुष्य मनुष्यका मित्र है, एक मित्र अपने सुखके लिये दूसरे मित्रका कभी बलि देगा क्या? पर आप, यह विजय, वह रतिलाल—ये क्या इन्सान हैं?

ये क्या मनुष्य हैं ? नरबलिके बिना संतुष्ट न होनेवाले क्रूर देवता और आप जैसे बड़प्पनके लिये लालायित रहनेवाले लोग — दोनोंमें क्या फ़र्क है ? ऐसे घरमें तो किसीको पानी भी न पीना चाहिए !’

सुलभाका क्रोध मर्यादासे बाहर निकल गया था ! आगे आगे तो स्वरके साथ उसका शरीर भी काँपने लगा । उसके लाल लाल चेहरेकी ओर देखनेकी केशरको हिम्मत ही नहीं पड़ती थी । जब सुलभाने ज़मीनकी ओर देखा तभी केशरने पुकारा, — ‘सुलभा ।’ सुलभाको होश आया । जैसे कुछ भयंकर हुआ ही नहीं है इस तरहकी शांत मुद्रासे वह केशरसे बोली, — ‘चलो केशर, हमें अभी बहुत काम करने हैं ।’

सुलभा, केशर और केशरकी माँको लेकर, मोटर कभीकी चल दी थी । लेकिन तात्यासाहब शून्य दृष्टिसे देखते हुए खड़े ही थे ।

• • •

दूसरे दिन भी तात्यासाहबकी दृष्टिमें वही शून्यता कायम थी । सुलभा फिर घर आयी ही नहीं । यह कल्पना कि सुलभा मुझे छोड़कर चली गयी, तात्यासाहबको बिल्कुल असह्य हो गयी थी । रातभर वे तड़प रहे थे । मौसीके मीठे शब्दों एवं उनके मधुर पदोंसे भी उनकी घबराहट शान्त न होती थी ।

सुबह ही मौसीको बाहर जाते हुए देखकर तात्यासाहबने पूछा,—‘कहाँ चली?’

‘उस मुकुन्दको देख आती हूँ । बहुत लग गया उसे, और सुलू भी उसको देखनेके लिये कल मुझसे कह गयी है !’

मौसीके इस दूसरोंके साथ रंग जानेवाले हृदयसे तात्यासाहबको ईर्ष्या हुई । उनके मनमें आया — मैं भी मौसीके साथ चला जाऊँ और मुकुन्दकी पूछताछ करूँ । सुलभासे भेट होनेपर वह उससे कहेगा कि मैं उसको देखने आया था । तब सुलभाके मनमें मेरे प्रति इस समय जो मनमुटाव है वह कम हो जायेगा । एकदम उनका मन पलट गया । स्वाभिमान बेचकर उसके बदलेमें दया लूँ ? इससे तो—

पुष्पा और विजय हाथमें हाथ डाले टेनिसका मैच देखनेके लिये जा रहे थे । विजयने तात्यासाहबसे पूछा,—‘आप चलेंगे क्या?’

अपने हृदयके बहते हुए घावको तात्यासाहबको किसी तरह बंद करना ही था । वे हँसते हुए बोले,—‘वाह, यह भी कोई पूछनेकी बात है ? टेनिसका मैच हो और मैं देखने न जाऊँ, ऐसा कभी होगा भी?’

परंतु नगारेके सामने तृतीकी आवाज़ कौन सुनता है? टेनिस कोर्टके उस पार्ककी ज़मीनें आज ही मिल-मालिकको देनेका निश्चय हुआ था। पुलिसको पता ही न था और सुबहसे ही न जाने कितने काश्तकार वहाँ सत्याग्रह करनेके लिये एकत्रित हो गये थे। स्वयं टेनिसका मैच खेलनेवाले खिलाड़ी ही इस सत्याग्रहको देखनेके लिये उत्सुक थे। फिर टेनिस कोर्टपर लोग जाते ही क्यों? तात्यासाहब, विजय और पुष्पाको भी टेनिस कोर्टके उस पार फैले हुए जनसागरमें मिल जाना पड़ा।

उस दृश्यमें दुर्बलोंको भी स्फूर्ति देनेकी शक्ति थी, इसमें संदेह नहीं। आज मौक़ेपर दीवानसाहब स्वयं हाज़िर थे। मनसुखलाल, रतिलाल इत्यादि बड़े बड़े लोग इधर उधर गड़बड़ करते हुए घूम रहे थे। सूर्यकी किरणें पुलिसकी बंदुकोंपर पड़नेके कारण वे विलक्षण रीतिसे चमक रही थीं। परंतु अपने खेतोंकी ज़मीनोंको आसपास घेरकर खड़े हुए उन सौ दो सौ अनाड़ियोंको इन सब बातोंकी कोई परवाह ही नहीं मात्तम हो रही थी। वे सब लोग हँस रहे थे, हँसी मज़ाक उड़ा रहे थे और मौज कर रहे थे। इस भावनासे कि हमारे कपड़े भले ही फटे हों, पर हमारे मन मज़बूत हैं, वे लोग बड़े अभिमानसे दर्शकोंकी ओर देख रहे थे। तात्यासाहबको भी क्षणभरके लिये यह आभास हुआ कि हमारी अपेक्षा इन काश्तकारोंमेंसे हर एकके जीवनमें कुछ न कुछ अधिक है।

भीड़मेंसे एक मनुष्य आगे बढ़ा। मनोहर था वह। वह एक गीत ज़ोरसे गाने लगा। सत्याग्रहियोंके सामने खड़ी हुई सुलभा और केशर मनोहर द्वारा गाये गये गीतकी पँक्तियाँ दोहरा रही थीं। जब वे दोहरा चुकतीं तब उन्हीं पँक्तियोंको सारे सत्याग्रही बुलंद आवाज़से दोहराते थे। तात्यासाहबने वह गीत कभी भी न सुना था। परंतु उसका अर्थ उनके मनको आकर्षित करने लगा।

उस गीतका मतलब यह था :

‘ ईश्वर पत्थरमें नहीं, मनुष्यमें नहीं, पैसोंमें नहीं, पसीनेमें है।

‘ माँको भूखी रखकर स्वयं पकवान उड़ानेवाले मनुष्यको तुम क्या कहोगे ?
अमीर क्या यही नहीं कर रहे हैं ? बुद्धि और श्रमकी शक्ति ही जगकी
माता है ।

‘ यदि ज़िंदा रहना है, तो आओ, हम मनुष्य बनकर जीवित रहें ! पशुकी तरह या पत्थरकी तरह जीनेके लिये हमने जन्म नहीं लिया है ।

‘और आओ, मनुष्यकी तरह ही मरें। निरपराधी रक्तका स्पर्श धरती-माताको कभी भी बरदाश्त नहीं होता। आज हमारा खून बहेगा, परंतु उसके कारण ही माता क्रुद्ध हो जायेंगी। वह क्रोधसे कांपने लगे तो शानशौकतके ये सारे ऊँचे मंदिर लड़खड़ाकर नीचे गिर पड़ेंगे और उनकी नीचोंमें गाड़े गये रत्न चमकते हुए बाहर निकल आयेंगे।’

इस गीतके समाप्त होते ही सत्याग्रहियोंने ‘वंदे मातरम्’का नारा बुलन्द किया। दर्शकोंने उन्हींका अनुकरण किया। ‘वंदे मातरम्’ की लहरें आसमानसे टकगाने लगी।

झल्लाए हुए मनसुखलाल और रतिलाल दीवानजीसे कानाफूसी करने लगे। दीवानजीने पुलिस सुपरिन्टेण्डन्टके कानमें कुछ कहा और तुरंत ही पुलिसका एक दल बंदूकें तानकर सत्याग्रहियोंके सामने खड़ा हो गया। सब ओर विलक्षण सन्नाटा छा गया।

पुलिस सुपरिन्टेण्डन्टने सत्याग्रहियोंको संबोधित करके कहा,—‘इस जगहसे तुम लोग फौजन हट जाओ। वरना गोलियाँ चलाकर तुम्हें भगाना पड़ेगा।’

सुलभा आगे बढ़कर बोली,—‘ठीक है। आपकी गोलियाँ खत्म होती हैं या हम लोग खत्म होते हैं—यह देखनेके लिये आज हज़ारों लोग यहाँ आये हैं। हाँ, अब आप अपना पवित्र कार्य शौकसे आरंभ करें।’

सुलभाका यह तेजस्वी उत्तर सुनते ही पुलिस सुपरिन्टेण्डन्ट थोड़ा नरम हुआ।

दर्शकोंकी ओरसे एकदम किसीकी आवाज़ आयी,—‘सुलभादेवीकी जय!’

जन-समूह गर्ज उठा,—‘सुलभादेवीकी जय!’

उस पहली आवाज़से सुलभाका शरीर पुलकित हो गया। मुकुन्द यहाँ आया? और वह कैसे? उसने पीछे मुड़कर देखा, एक पेड़के तले आरामकुर्सीपर मुकुन्द लेटा हुआ था। उसके पीछे मौसीजी खड़ी हुई थीं। कुर्सीकी दाहिनी ओर वह सज्जन अमेरिकन डॉक्टर और बार्थी और प्रोफेसर गरुड दीग्व रहे थे। सुलभाको लगा—इसी समय दौड़कर जाऊँ और मुकुन्दसे पूछूँ—‘कहिये, क्या हाल है, महाराज?’ परंतु संसारकी अनेक इच्छाएँ, कुमारिका रहनेके लिये ही पैदा होती हैं!

दीवानजी, पुलिस सुपरिन्टेण्डन्ट, मनसुखलाल, रतिलाल और विजय आदि लोगोंने बहुत समयतक अपने सिर रगड़े और अन्तमें सबने सत्याग्रहियोंको

फतार करनेका निश्चय किया। सुपरिन्टेन्डन्टने मुलभाको दीवानजीके आक्षरका गिरफ्तारीका वॉरंट दिखाया, तो तुरंत मुलभा, केशर और दूसरे आग्रही उन लोगोंके साथ चलने लगे। दीवानजीके पाससे जब ये लोग गुज़रे तब भाने ज़ोरसे कहा,— ‘विजय, यहाँकी जेलमें सब लोग समा जायेंगे न? कल ने ही लोग फिरसे आयेंगे!’

मुकुन्दसे भेट किये बिना आगे बढ़ जानेकी मुलभाको हिम्मत न हुई। पुलिसने भेटकी अनुमति दे दी। किसी छोटी बालिकाकी तरह वह दौड़ती हुई ही नन्दके पास गयी।

उसे देखते ही प्रोफ़ेसर गरुड गद्गद स्वरमें बोले,— ‘मुलभा, मैंने तुम्हें जो पणियाँ दी थीं, उन्हें अब फाड़ डालो। जीवनका मतलब जीवित रहनेसे ही झमें आता है, सिर्फ़ देखनेसे नहीं!’

मौसीजीकी आँखोंमें आँसू देखकर मुलभा बोली,— ‘अब जल्द ही बड़ी और ड आदि बनाकर रखिये!’

अब ज़रूर मौसीजीको हँसी आये बग़ैर न रही।

सारे सत्याग्रहियोंकी ओर देखकर मुलभाने कहा,— ‘ये सब लोग आयेंगे रे विवाहमें।’

वह अमेरिकन डॉक्टर मुलभाकी ओर बढ़े कुतूहलसे देख रहा था।

गरुडसे चुप नहीं रहा जाता था। वे बोले,— ‘विवाह कब होगा यह तो से-कम हमें बताती जाओ?’

‘ज्यों ही मैं जेलसे छूटी कि विवाह होगा। क्यों मुकुन्द, है न?’

‘लेकिन तबतक शायद मैं भी जेलमें चल दूँगा। मैं बाहर आऊँगा तबतक। तुम जेलमें पहुँची रहोगी!’

‘तब तो ऐसा रंग दीखता है कि हमारा विवाह जेलमें ही होगा। उस विवाह आरंभमें इन लोगोंमेंसे कितने लोग वहाँ आयेंगे, यह एक बड़ा प्रश्न ही है।’

यह कहते हुए गरुडके पीछे आकर खड़े हो जानेवाले तात्यासाहबकी ओर भाका ध्यान गया। उनकी निस्तेज मुद्राको देखकर उसे भी बुरा लगा।

‘बिदा दीजिये, तात्या’ कहकर वह लौटने लगी। इसी समय उसे कुछ ग-सा हो आया। झटसे पीछे मुड़कर वह मुकुन्दसे बोली,—

‘आजका तुम मुझे क्या इनाम दोगे?’

‘इनाम?’ – मुकुन्दकी आँखोंके सामने उस गाँवकी चाँदनीका वह मधुर प्रसंग खड़ा हो गया। वह हँसकर बोला, – ‘इनाम एक ही है!’

‘क्या?’

‘यह हरे चम्पाका फूल। आज सुबह डॉक्टरने दिया है यह सुझे!’

अपने हाथमें रखा हुआ चम्पाका फूल उसने सुलभाको दे दिया। उसकी सुगंध लेते हुए ही वह सत्याग्रहियोंमें जाकर शामिल हो गयी।

सत्याग्रहियोंने नारा लगाया, – ‘वंदे मातरम्!’

सुलभाकी आँखोंके सामने हिन्दमाता खड़ी हो गयी। उसने मूक मनसे मातासे पूछा, – ‘हरे चम्पाका यह एक ही फूल मैं तुम्हारी पूजाके लिये लायी हूँ, माँ! तुम उसे पसंद करोगी न?’ माता हँसी। उसकी आँखोंमें आँसू चमकने लगे – पर वे दुखके न थे, आनंदके थे।

● ● ●

पार्श्वभूमि

‘ हिरवा चाँफा ’^१ नामकी मेरी पाँचवीं कादम्बरी^२ सन १९३८ में प्रकाशित हुई। मतलब यह कि आज वह अधिकसे अधिक दस वर्षकी छोटी बालिका है। परंतु उसके विषयमें दो शब्द लिखनेके लिये जब मैं उसकी ओर देखने लगा, तब मेरे मनमें आया — मेरे हिसाबमें कहीं बड़ी भूल हो रही है। यह ‘कादम्बरी’ दस वर्षकी फ्रॉक पहननेवाली लड़की तो नहीं दीखती ! प्रणयके स्वप्नसुन्दर प्रांगणमें कुछ ही दिन पहलेसे पदार्पण करनेवाली मुग्धा भी नहीं है वह। उसका सब मिलाकर रंग-रूप चार-पाँच सालतक सुचारु रूपसे घर-गृहस्थी चला चुकी गृहिणीकी तरह लगता है। कोई नया बना हुआ बँगला दो-चार बारिशोंमें ही पुराना-सा दीखने लगता है, उसी प्रकारका कुछ परिवर्तन इस उपन्यासमें हो गया है। उसपर भविष्यकालकी अपेक्षा भूतकालकी ही छाया अधिक गहरी फैली हुई दिखायी देती है।

मुझे यदि ऐसा लगता है तो अस्वाभाविक क्या है ? इन दस सालोंके भीतर संसारके अंतरंग और बहिरंगमें कितने वेगसे परिवर्तन हो गये हैं। बड़े बड़े राजनीतिज्ञों, और भविष्यकालको देख सकनेकी क्षमता रखनेवाले तत्त्वज्ञानियोंकी भी इन परिवर्तनोंकी पहले कोई कल्पना न हुई होगी।

१ ‘ हिरा चंपा ’ का मराठी नाम।

२ मराठीमें उपन्यासको कादम्बरी कहते हैं।

एकाएक मुझे नौ-दस वर्ष पूर्वकी एक बात याद हो आयी और मैं अपने आप ही हँस पड़ा। उस ज़मानेमें यह उपन्यास हज़म होनेके लिये ज़रा कठिन मालूम होता था ! किसी विश्वविद्यालयके बी. ए. के पाठ्य-क्रममें इस उपन्यासको स्वीकृत करनेका प्रश्न निकाला था, तब ! पाठ्य-क्रमके लिये पुस्तकें स्वीकृत करनेका अधिकार रखनेवाले पंडितोंमेंसे एक प्रोफ़ेसर-साहबने उस समय कहा था, — ‘क्या, इस उपन्यासको आप बी. ए. के लिये स्वीकृत करेंगे ? अवब्रह्मण्य ! अजी साहब, इस उपन्यासमें सोशलिज्म है।’

उनके इन उद्गारोंसे किसीका भी यह मत हो जाता कि शींगुर, पिशान्च अथवा ब्रह्मराक्षसकी तरह, सोशलिज्म भी कोई अत्यंत तिरस्करणीय और भीति-प्रद चीज़ होगी। सौभाग्यसे, केवल दस वर्षके भीतर ही, सोशलिज्मके कार्यको इन पुस्तकी पंडितोंकी अपेक्षा सड़कके तोंगेवाले ही अधिक समझने लगे हैं ! अल्पावधिमें इस उपन्यासपर भूतकालकी छाया फैल जानेका मुझे जो आभास हो रहा है, उसका कारण, बीचकी अवधिके ये दस तूफ़ानी वर्ष ही हैं।

इस उपन्यासको पढ़नेके बाद पाठक निश्चिन्त होकर, अवकाशसे, यह तय करें, कि इसमें समाजवाद है या नहीं। किसी भी वादकी चर्चा, अथवा किसी भी तत्त्वकी चर्चा करनेके उच्च उद्देश्यमें, उपन्यास लिखनेको प्रवृत्त होनेवाले विद्वान साहित्यिकोंकी पंक्तिमें बैठनेकी योग्यता, मुझमें नहीं। वैसे देखा जाये तो समाचार-पत्रोंको पढ़नेकी, मुझे बचपनसे रुचि है। सन् १९०८ में लोकमान्य तिलकको छः सालकी देशनिकालेकी सज़ा हुई। तब मैंने कुछ ही दिन पहलेसे, अँग्रेज़ी स्कूलमें पढ़ना शुरू किया था। मुझे आज भी धुँधली-सी याद आती है, कि उस समय रोज़ मैं किस तरह धड़कते हुए हृदयसे ‘ज्ञानप्रकाश’^१ खोलता था। किन्तु पिछले चालीस सालोंमें भिन्न भिन्न समाचार-पत्रोंको अखंड रूपसे पढ़ते हुए भी, उनमेंकी रोमांचकारी घटनाओं, चित्रविचित्र मानवी मनो, अथवा शोभनजनक प्रचलित राजनीतिका उपयोग करके, कहानी लिखनेकी कला अभी भी मुझे अवगत नहीं हुई है। जो स्थिति समाचार-पत्रोंके विषयकी है, वही विद्वानोंके समय समयपर जोरशोरसे रंगनेवाले बड़े बड़े वादविवादोंके विषयकी भी है। मैं जानता हूँ कि इन वादविवादोंको कारणीभूत होनेवाली विचार-प्रणालीमें, मानवी

जीवनपर निरंतर संस्कार करनेकी शक्ति होनी है। मैं इन सारे वादविवादोंको ध्यानपूर्वक सुनता हूँ, वक्त मौकेपर उनमें खो भी जाता हूँ। किन्तु मेरा खो जाना क्रिकेट खेलको देखनेवाले शौकीन दर्शककी तरह होता है। क्रीड़ांगणपर कोई अद्भुत, अथवा अनपेक्षित बात हो जाये, तो वह दर्शक होश भूलकर, अपने स्थानसे उठकर खड़ा हो जाता है, और जोर जोरसे तालियाँ बजाने लगता है। मैं पिछले बीस-पचीस सालोंसे इन राजकीय और सामाजिक संघर्षों और वादविवादोंकी रस्सा-ग्विचाईको इसी तरह एकरस होकर देखता आया हूँ। लेकिन यह जानते हुए भी, कि ताज़ा भुना हुआ पापड़ जिस तरह कुरकुरा लगता है, उसी तरह प्रचलित विषयपर आधारित कहानी पाठकोंको मजेदार लगती है, मेरे मनमें कभी भी यह नहीं आता, कि मैं भी किसी ऐसे संग्रामका चटसे कहानीमें रूपान्तर कर दूँ। साहित्यिककी कलाका विषय अखिल और अथाह मानवी जीवन है। तात्कालिक घटनाओंमें निरंतर जीवनका जहाँ दर्शन होता है, वहीं उसकी कला-दृष्टि स्थिर हो सकती है। अभिनिवेशसे प्रेरित हुए, दलों, अथवा पंडितोंके वादविवाद, तूफानकी तरह होते हैं। उनमें बीच-बीचमें, बिजलीकी तरह बुद्धिकी चमक प्रकट होती है; गरजनेवाले बड़े बड़े बादलोंकी तरह, रुद्र और रम्य शब्दोंकी गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती है; तूफानी हवास जिस तरह सारी पृथ्वीके मथ जानेका आभास होता है, उस तरह इस प्रकारके विवादोंमें, प्रत्येक बात तर्क और शास्त्रकी कसौटीपर कठोरतासे कसी जाती है। परंतु तूफानका पहला जोर धीमा हुए बिना, भूतलपर शान्त पर्जन्य-धाराओंका अखंड अभिषेक कभी आरंभ नहीं होता। बड़े बड़े सामाजिक संघर्षोंका भी वही होता है। जबतक उनकी सब धूल नीचे नहीं बैठ जाती, तबतक कलाकारको उनकी ओटमें छिपे हुए भव्य जीवन-तरंगोंका दर्शन, अथवा सूक्ष्म मानवी भावनाओंका साक्षात्कार, नहीं होता। वह दर्शन अथवा वह साक्षात्कार ही कला-कृतिका बीज हो सकता है। उस बीजका विकास सौन्दर्य-दृष्टिसे किये गये एकाग्र चिन्तनसे होता है। और जब कलाकारकी बुद्धि, कल्पना और भावनामें उस विकासको सहज रूपमें प्रकट करनेका योग्य सुसंवाद निर्मित हो जाता है, तब कला-कृति जन्म लेती है।

कलाके विषयमें मेरी थोड़ी-बहुत यही कल्पना है। इसलिये जब लोग यह कहने लगते हैं, कि मेरे अमुक उपन्यासमें अमुक 'वाद' आया है, अथवा अपनी किसी कहानीमें मैंने अमुक प्रचार किया है, तब मुझे मन-ही-मन हँसी

आये बिना नहीं रहती। मानवी हृदयपर सौन्दर्यके द्वारा उन्नत संस्कार करना कलाका प्रमुख कार्य है। केवल प्रशोभ उसका ध्येय नहीं हो सकता। प्रचारकी प्रष्ट-भूमिपर लिखनेवाले लेखकोंमें, यह संस्कार-शीलता, बहुधा बहुत कम परिमाणमें दिखाई देती है। यही कारण है कि ऐसा साहित्य, जिसकी आत्मा केवल प्रचार ही है, अल्पजीवी होता है। उसमें शोभकी शक्ति होती है। परंतु शोभका अर्थ जागृति नहीं है और विकास तो है ही नहीं !

चार्ल्स मॉर्गन ^१ के 'Portrait in a Mirror' नामक उपन्यासके चित्रकार नायकने कला-निर्माणके अपने अनुभवोंका वर्णन करते समय बड़ी अच्छी तरहसे बताया है, कि कलामें संस्कार-क्षमता किम तरह निर्मित होती है। वह कहता है—

'Painting is a contemplative as well as an executive act—to paint a Portrait is to discover the spring of life, to know what courses the streams come down from the hills, of childhood, to perceive how and with what earthly stain or heavenly reflection they are gathered together in the torrents of youth; perhaps to guess little of the seas to which they go. But, as this contemplation has a material fruit—or else is the picture dreamed of, not made—so it can be no infinite wandering, such as love is, whose delight is unending search, but must somewhere conclude. It must conclude, before the portrait can justly be begun not in intellectual understanding of the subject, for understanding can proceed only from a knowledge of past facts, that may be hidden from the artists but in an imaginative synthesis which is satisfying to him. It is not necessary to the peace of a religious soul that its wisdom be perfect; it is necessary that its faith be sure. So an artist need not be all-knowing; but of his own vision he dare not remain in doubt.'

१ चार्ल्स मॉर्गन : विद्यमान मशहूर अंग्रेज़ उपन्यासकार। अंतर्मुखता और चिंतन-शीलता इसके उपन्यासों और इतर लेखनमें अधिकांशमें दीख पड़ती है।

किसी भी विषयके संपूर्ण ज्ञानसे, अथवा केवल बौद्धिक ज्ञानसे, कलाकी निर्मिति नहीं होती। यदि वह इस तरह हुआ करती, तो हमारे यहाँके अनेक इतिहास-अन्वेषकोंने स्कॉट^१, हरिभाऊ आपटे^२, और कन्हैयालाल मुनशी^३ की अपेक्षा बढ़िया ऐतिहासिक उपन्यास लिखे होते। कलाका उद्गम बुद्धिमें नहीं, बल्कि कल्पना और भावनाके अपूर्व संगममें है। भावना किसी भी अनुभूतिके भीतर सनसनानेवाले मानवी जीवनका दर्शन लेती है, और उसके द्वारा खोजकर निकाले गये अशुद्ध सुवर्णको शुद्ध करके, उसको सुन्दर अलंकारका स्वरूप देनेका काम करती है। बुद्धिका प्रमुख धर्म विश्लेषण है। लेकिन विश्लेषण विज्ञानकी आत्मा भले ही हो, परंतु कलामें उसका दूसरा नंबर है। संजीवन कलाकी जान हैं इसी लिये 'Portrait in a Mirror' का नायक कहता है, — 'धार्मिक मनुष्य को जो मनःशान्ति मिलती है, वह इसलिये नहीं कि वह कोई सर्वज्ञ पंडित होता है। बल्कि इसलिये कि उसमें उत्कृष्ट श्रद्धा होती है।' कलाकारका भी वही है। यह बिलकुल आवश्यक नहीं कि कलाकार सर्वज्ञ हो। लेकिन अपनी कलादृष्टिके ज़रिये होनेवाले जीवन दर्शनपर उनकी अडिग श्रद्धा होनी चाहिए।

यदि पाठ्य-क्रमके लिये पुस्तकें निश्चित करनेवाले हमारे पंडितोंको यह मालूम होता, कि लेखककी इस प्रकारकी श्रद्धा ही कला-निर्मितिके लिये प्रेरक होती है, तो यह कहकर, कि 'हिरवा चाँफ़ा' नामक उपन्यासमें समाजवाद है। और इसलिये विद्यार्थियोंको उसका स्पर्श भी वर्ज्य है, आठ-नौ वर्ष पूर्व, वे इतनी दक्षता दिखानेकी शृंखलामें न पड़ते। क्योंकि मनुष्यकी परंपरा-प्रियताका बदला, जितनी कुशलतासे समय ले सकता है, उतनी कुशलतासे और कोई नहीं ले सकता! यद्यपि यह उपन्यास अभीतक किसी भी विश्वविद्यालयके पाठ्य-क्रममें समाविष्ट

१ स्कॉट : अंग्रेजी भाषाका जगद्विख्यात उपन्यासकार। इसके ऐतिहासिक उपन्यास बहुत मशहूर हैं। इसके उपन्यासोंने ही अलग अलग भारतीय भाषाओंमें ऐतिहासिक उपन्यासोंकी निर्मितिमें स्फूर्ति दी है।

२ हरिभाऊ आपटे : श्रेष्ठ मराठी उपन्यासकार। अनेक सुंदर सामाजिक उपन्यासोंके साथ ही सामर्थ्यशाली ऐतिहासिक उपन्यास भी इन्होंने लिखे हैं।

३ कन्हैयालाल मुनशी : गुजरातके सुप्रासिद्ध लेखक। इनके ऐतिहासिक उपन्यास लोकप्रिय हैं।

नहीं हुआ है, फिर भी 'उल्का' और 'दोन ध्रुव' नामक उपन्यास जो इस उपन्यासके मातृस्थानमें हैं, अनेक विश्वविद्यालयोंने अपने पाठ्य-क्रमोंमें इससे पहले ही स्वीकृत कर लिये हैं। कदाचित्, इसका कारण यह हो, कि विद्वानोंकी दृष्टिमें, उनमें समाजवाद न होगा! शायद हमारे पंडित 'भेड़िया आया रे! भेड़िया आया!' चिल्लाकर, विद्यार्थियोंको जिससे दृष्टपूर्वक दूर रखनेकी कोशिश करते थे, उस समाजवादको, समयने अपने जादूसे मानो मंमना बना दिया हो! कौन कह सकता है, ये पंडित लोग भी आजकल समाजवादपर भाषण देनेमें निमग्न होंगे! उनके इन भाषणोंका संग्रह शीघ्र ही किसी परीक्षाके लिये स्वीकृत भी हो जायेगा!

• • •

मैंने ऊपर जो यह कहा है कि 'उल्का' और 'दोन ध्रुव' उपन्यास इस उपन्यासके मातृस्थानमें हैं, वह अनेक दृष्टिसे सच है। उन दो उपन्यासोंको मैंने सन् १९३३-३४ में लिखा। उनको लिखते हुए मेरी आँखोंके सामने जो अनेक सामाजिक समस्याएँ खड़ी हुईं, उन्हें हल करनेका प्रयत्न करने हुए ही 'हिरवा चाँफा' नामक उपन्यासका कथानक मुझे मिल गया। बाणभट्टने अपने कादम्बरी नामक उपन्यासमें ऐसा वर्णन किया है, कि शिकारकी धुनमें, राजकुमार चन्द्रापीड़ अपने साथी सैनिकोंको पीछे छोड़कर, अकेला ही घने जंगलमें दौड़ता हुआ जाता है, और आगे चलकर, उसे अकस्मात् अद्भुतरम्य अच्छोद सरोवरका दर्शन होता है। मुझे लगता है कि हर एक कलाकारको थोड़े-बहुत परिमाणमें इस प्रकारका अनुभव जरूर होना चाहिए। एक कृतिका निर्माण करते समय, उसके अनुषंगसे मनमें कई नयी कल्पनाएँ अस्पष्ट रूपसे आ जाती हैं, और अनेक बार इन्हीं कल्पनाओंमें, कलाकारको अपनी आगामी कृतिके लिये, प्रेरणा मिलती है। 'उल्का' और 'दोन ध्रुव' लिखते समय मेरा भी यही हुआ। उन उपन्यासोंसे प्रत्यक्ष संबंध न रखनेवाले सामाजिक प्रश्नों, विचारों, कथा-प्रसंगों और स्वभाव-चित्रोंकी उस समय मेरे मनमें इतनी भीड़ लग गयी थी, कि उसे विवाह-घरकी उपमा देनेका मोह मैं संवरण न कर सका! उसी भीड़ और उन्मादमें मैंने अपने 'क्रौंचवध' और 'हिरवा चाँफा' नामक उपन्यासोंकी स्थूल रूपरेखा तैयार की।

'हिरवा चाँफा' उपन्यासके दो पात्रों— मुकुन्द और सुलभा—की ओर पाठक ज़रा

बारीकीसे देखें, तो जो मैं कह रहा हूँ, वह सरलतासे उनकी समझमें आ जायेगा। 'उल्का' का चन्द्रकान्त बाह्यतः मध्यम वर्गका भले ही हो, पर वास्तवमें वह दलितवर्गका ही प्रतिनिधि है। इसी कारण, उसके स्वभावमें विद्रोह उत्पन्न हो गया है। उसकी सामाजिक क्रांतिकी कल्पनाएँ, निरी पुस्तकी नहीं हैं। भद्र समाजमें जन्म लेकर भी, वह बचपनसे ही गरीबीकी आगमें जलता आया है। उसे बचपनसे यह कटु अनुभव हुआ है, कि हम मनुष्योंकी दुनियामें नहीं रहते, बल्कि भक्ष और भक्षककी दृष्टिसे एक दूसरेकी ओर देखनेवाले दो पैरोंके हिंस्र प्राणियोंकी सृष्टिमें रहे हैं। उसे अल्प वयमें ही, यह विश्वास हो चुका है, कि संस्कृतिके मोहक नकली चेहरे लगाकर, मनुष्यकी पाशविक प्रवृत्ति, आज भी सर्वत्र अनिरुद्ध संचार कर रही ही है। दलितवर्गके त्रिलकुल नज़दीक पहुँचे हुए इस प्रकारके एक मध्यम वर्गीय तरुणके, अन्यायसे लड़नेवाले मनको, इस स्वभाव-चित्रके द्वारा, मैंने 'उल्का'में चित्रित करनेकी कोशिश की। लेकिन इस तरह ज़िंदा दिन-रात जलनेवाला मन, मध्यम वर्गमें, शायद ही देखनेको मिलता है। मध्यम वर्गके सर्वसाधारण प्रतिनिधि 'दोन ध्रुव' के दादा, रमाकान्त और विद्याधर तथा 'उल्का' के वसंतराव, माणिकराव और बाबूराव हैं। मध्यम वर्ग बुद्धिमान भले ही हो, पर एकदम विद्रोही बन जानेवाला वर्ग नहीं है। उसकी बुद्धि और भावनाके बीच, हमेशा ही एक निष्फल संघर्ष होता रहता है। उसकी आत्मशक्ति इस तरह द्विधा होनेके कारण, जब कसौटीका वक्त आता है, तब वह अनेक बार दुर्बल सिद्ध होता है।

ऐसा होनेका कारण यही है, कि आजकी समाज-रचनामें, मध्यम वर्गका स्थान त्रिशंकुकी तरह है। पुराणका त्रिशंकु, पृथ्वी और आकाशके बीचकी पोलमें लटकता रहा। पृथ्वीने उसे अपनेमें दूर नहीं किया था। उसे नीचे ढकेल दिया था स्वर्गने! परंतु वह उस उच्चतम स्वर्गको ही चाहता था। उसे पृथ्वीका प्यास बुझानेवाला मामूली पानी पसंद न था। अमर करनेवाले अमृतकी आशाने उसे पागल बना दिया था। किसी साँवली लड़कीसे प्रेम करके, वह इस मृत्युलोकमें खुशीकी ज़िंदगी बिता सकता था। परंतु इस प्रकारका मामूली प्रेमका सुख, उसे पसंद न था। जिसकी नज़रोंके सामने रंभा, मेनका, उर्वशी और तिलोत्तमाका रूप नृत्य कर रहा था, उसे यह कल्पना कैसे जँच सकती थी? दुर्लभ स्वर्गसुखके अरोक आकर्षण, और सुलभ पृथ्वीके विषयमें मनमें भरे हुए तिरस्कारके कारण त्रिशंकु बीचहीमें अधर लटका रहा।

अंग्रेज़ी राज्य आरंभ होनेके बाद, जो मध्यम वर्ग बना उसकी भी ठीक यही स्थिति थी। उसकी आँखें हमेशा ऊपर ली हुई होती थीं। लड़कीकी शादी किसी आइ. सी. एस. से करें, लड़केको हाइ-कोर्टका जज बनाये, एक सुंदर बंगला बने, शानदार पोशाक पहने, पत्नीको नखसे शिखतक जेवरोंसे इतना मढ़ दें कि वह सोनेकी पुतली दिखे—ऐसी और इसी तरहकी आध्यात्मिक दृष्टिसे क्षुद्र महत्वाकांक्षाओंसे, इस वर्गके अधिकांश लोग प्रेरित हो गये थे। कुवेर उनका आराध्य देवता था। उन्हें इस बातका स्मरण भी न रहा था, कि कुवेरसे सौगुना दरिद्री परंतु हजार गुना शक्तिशाली शंकर उसी हिमालयपर आसपास कहीं रह रहा है। खाने, पीने, रहने, पोशाक, पुस्तकों, प्रतिष्ठा, प्रेम, नीति, भक्ति इत्यादिके विषयकी उनकी सारी कल्पनाओंपर, इस नये उथले और भोगलोलुप जीवनके आदर्शका रंग चढ़ गया था। उन्हें लगता, कि अपने घनिष्ठ मित्रोंको अंग्रेज़ीमें पत्र लिखना बड़ी विद्वत्ता है। उनका विश्वास हो चुका था, कि कुरता, धोती और साफ़ाकी पोशाक बिल्कुल गेब्रदार नहीं है। स्वाभाविक तौरसे सर्वत्र यह धारणा फैल गयी, कि सज्जनताके बजाय, सूट-बूट धारण करनेसे ही, मनुष्यको बड़प्पन प्राप्त होता है। अपनी भाषा, अपना धर्म, अपना वेश, अपनी अंतर्मुख संस्कृति और इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण, अज्ञान और दरिद्रताके पंखमें फँसा हुआ हमारा बहुजन समाज—इन सबकी ओरसे मुख मोड़कर, अंग्रेज़ी शासनके क्लर्कसे लेकर अफसरतकके कामोंको, ईमानदारीसे करनेमें उस कालके मध्यम वर्गकी अधिकांश बुद्धि खर्च होने लगी। अनजाने इस वर्गकी आशाएँ और आकांक्षाएँ संकुचित हो गयीं। वह वर्ग विलासको विकास, और तोतारटन्तको ज्ञान समझने लगा, और सभा-सम्मेलनोंमें टाटसे भाषण देना ही अपना कर्तव्य मानने लगा। गत शताब्दिमें अंग्रेज़ी शासनके द्वारा निर्मित की गयी मोहिनीने इस वर्गकी आत्माको गहरी नींदमें सुला दिया।

परंतु किसी भी व्यक्ति, राष्ट्र अथवा समाजकी आत्मा, चिरकालतक मोह-निद्रामें नहीं रह सकती। शांतिर गुनहगारके कठोर कलेजेके कोनेमें भी, किसी जगह, जिस तरह इन्सानियतकी छोटी-सी मन्द ज्योति जलती रहती है, उसी तरह हाथ-पाँवमें पड़ी हुई सुवर्ण शृंगलाओंको मूल्यवान अलंकारकी दृष्टिसे देखनेवाले गुलामोंके अन्तःकरणमें भी, स्वातंत्र्यलालसा गुप्त रीतिसे वास करती रहती है। मौजसे ज़िंदगी बितानेका जिन्हें चसका लग गया है, और जो स्वार्थके

पीछे दौड़ते रहते हैं, उन मनुष्योंके मनको भी, कर्तव्यके लिये प्रेरणा देनेवाली बुद्धि, बीच-बीचमें कर्तव्यके लिये उकसाकर जागृत करती रहती है। सन् १८७५के बाद, महाराष्ट्रके मध्यम वर्गकी आत्मा इसी प्रकार मोहनिद्रासे जागृत होने लगी। रानडे^१, ज्योतिबा^२, चिपलूणकर^३, तिलक^४, आगरकर^५ इत्यादि असाधारण पुरुषोंने इस बीच बुझती जा रही आत्मज्योतिपर लगे काजलको झड़ा डाला। उस नये उज्ज्वल प्रकाशमें अपने पैरोंमें पड़ी हुई राजकीय और सामाजिक शृंखलाओंका भयंकर स्वरूप स्पष्ट रूपसे उन्हें दिखायी दिया। उन शृंखलाओंको तोड़नेके लिये मध्यम वर्ग सज्जित होने लगा। मध्यम वर्गके तरुणकी इस नयी आध्यात्मिक भूखका, और राजकीय एवं सामाजिक दामतासे ऊबकर, उनके द्वारा पढ़ायी गयी क्रान्तिकी नयी पताकाका दर्शन, मराठीके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार हरिभाऊ आपटेके 'मी', 'यशवंतराव खरे', 'कर्मयोग', 'मायेचा बाज़ार' इत्यादि

१ रानडे : महादेव गोविंद रानडे : उन्नीसवीं शताब्दिक महाराष्ट्रके और भारतके थोर नेता। 'ठंडा गोला होकर पड़े हुए' महाराष्ट्रमें रानडेजी गरमाहट लाये।' इस तरह इनके कर्तृत्वका वर्णन लोकमान्य तिलकजीने किया है। ग्रंथलेखन, इतिहास-संशोधन, समाज-सुधार, राजनैतिक आन्दोलन इत्यादि सब क्षेत्रोंमें रानडेजीका कर्तृत्व बहुत बड़ा था। 'राष्ट्रीय सभा'की स्थापनामें रानडेजीका साथ था ही।

२ ज्योतिबा : महाराष्ट्रमें 'महात्मा फुले' नामसे संबोधित करते हैं। सामाजिक और आर्थिक विषमताकी चिढ़से छटपटाकर उसके खिलाफ आन्दोलन करनेवाला उन्नीसवीं शताब्दिका बहुजन समाजका महाराष्ट्रीय नेता।

३ चिपलूणकर : विष्णु कृष्ण चिपलूणकर : 'मराठी भाषाके शिवाजी' करके ये प्रसिद्ध हैं। आधुनिक मराठी गद्यके ये प्रमुख प्रवर्तक थे। अपनी ओज-भरी कलमसे इन्होंने स्वदेश, स्वधर्म और स्वभाषाके बारेमें महाराष्ट्रमें अभिमान निर्माण किया।

४ तिलक : लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक : 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध हक है' यह घोषणा करके अंग्रेजी हुकूमतकी पकड़से भारतको मुक्त करनेके लिये आमरण झगड़नेवाले श्रेष्ठ राजनैतिक नेता और पंडित।

५ आगरकर : गोपाल गणेश आगरकर : लो. तिलकजीके मित्र। सर्वोपीण समाज-सुधारका अपनी ओजभरी कलमसे आजीवन पुरस्कार करनेवाले श्रेष्ठ समाज-सुधारक और लेखक।

उपन्यासोंमें होता है। उपन्यासकारके नाते, बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ, शरच्चन्द्र, मुनशी प्रेमचंद इत्यादि उपन्यासकारोंकी पँक्तिमें हरिभाऊका स्थान है, इस विषयमें भारतीय साहित्यका परिशीलन करनेवाले किसी भी विद्यार्थीका भिन्न मत होना असंभव है। लेकिन मध्यम वर्गके जीवनके अनेक प्रश्नोंका उनके द्वारा किया गया सूक्ष्म वास्तविक और सहृदय चित्रण उनकी एक अद्वितीय विशेषता है। रवीन्द्र-बाबूकी अलौकिक काव्य-कल्पकता हरिभाऊमें नहीं दिखायी देती, शरच्चन्द्रकी मनोविश्लेषणकी अनुपम कुशलता उस परिमाणमें उनमें नहीं मिलती, और 'गोदान' सरीखे उपन्यासमें प्रेमचंदजीने गाँवोंके कृषक वर्गका जिस वास्तविक सहानुभूतिमें चित्रण किया है, वह हरिभाऊमें मध्यम वर्गके ही सीमित हो गया है। इसे हमें मानना पड़ेगा। परंतु इन तीनोंमें भी न दीखनेवाली एक उत्कृष्ट विशेषता उनमें है, और वह है मध्यम वर्गके स्त्री-पुरुषोंके सुख-दुःखों, आशा-आकांक्षाओं, उनकी इच्छाओं और उनके ध्येयोंका अत्यंत मार्मिक और मनोहर चित्रण। उनके ये उपन्यास मन् १८९० में लेकर १९१५ की पांच शताब्दिके महाप्राचीन जीवनका विशाल और सुदृग चित्रपट ही है।

हरिभाऊके उपन्यासोंकी नायक नायिकाओंके प्रश्न अवश्य अत्यन्त भिन्न थे। स्त्रीके वैयक्तिक जीवनके विकासको कुंठित करनेवाली रूढ़ियोंकी शृंखलाएँ उनकी नायिकाओंको तोड़नी थीं। इसके विपरीत, पुरुष वर्गको यद्यपि उन शृंखलाओंकी दासता महसूस हो रही थी, फिर भी उन्हें यह लगता था, कि जन-साधारणके पैरोंमें पड़ी हुई शृंखलाओंको तोड़ना अधिक महत्त्वका काम है। उस समय स्त्रीकी दासता दुहरी थी। यही इस अन्तरका मुख्य कारण है। पाठकोंको यह अन्तर स्पष्ट रूपसे ध्यानमें आ जाये, इसलिये एक उदाहरण देता हूँ। यह व्रतानेके लिये, कि सन्यासी-वृत्तिसे रहकर समाजसेवा करनेकी इच्छा मेरे मनमें क्यों उत्पन्न हुई, हरिभाऊके 'मी' उपन्यासका नायक कहता है —

‘आजतक हम सुशिक्षित लोगोंने अन्न-वस्त्र आदि प्राप्त करनेके सिवा, कर्तव्य समझकर, और कौनसा दूसरा काम किया है ! जिन लोगोंके राजस्वपर हमने अपनी सारी शिक्षा प्राप्त की, उनका ऋण चुकानेके लिये हमने अणुमात्र भी प्रयास किया है क्या ? जो काम हमने किये होंगे, वे सब ऊपरी ऊपरी और दिखाऊ रहे हैं। हम कभी भी गरीबोंमें घुलमिलकर नहीं रहे। हम कभी भी यह पूछताछ नहीं की, कि उनकी बाज़ाएँ, हेतु और

आकांक्षाएँ क्या हैं? उनके जिन हेतु और वांछाओंको - जो हमें अयोध्य लगते हैं, - निकाल देनेके लिये, हमने कभी प्राणपनसे चेष्टा नहीं की। उनमें और हममें जो भेदभाव है, उस नष्ट कर डालनेके लिये हमने कोई प्रयास नहीं किया। इस स्थितिको कौन अस्वीकार करेगा? हम उच्च वर्गके लोग भी तो निचले वर्गके लोगोंमेंसे ही कुछ आनुवंशिक बुद्धिके कारण, और भी अन्य असंख्य कारणोंसे उच्च वर्गमें आये हुए लोग हैं। मेरा विश्वास हो गया है, कि उन्हें भुला देनेसे काम नहीं चलेगा।'

हरिभाऊके उपन्यासोंमें ऐसे विचार पन्न-पन्नपर मिलेंगे। परंतु वे सब नायकोंके हृदयकी व्याकुलताको व्यक्त करनेवाले उद्गारके रूपमें ही प्रकट हुए हैं। परंतु नायिकाएँ अपने हृदयकी वेचैनीको इस प्रकार प्रकट नहीं करतीं। यही नहीं बल्कि उनके मनमें ऐसे विचार अस्पष्ट रूपमें भी पैदा नहीं होते। इसका कारण यही है कि वे एक बड़े जेलके भीतरके छोटे जेलमें कैद थीं। उनके इस जेलकी अंधेरी कोठरीमें, नये विचारोंकी किरणोंका पहुँचना, बड़ा कठिन था। उन कोठरियोंकी दीवालके बाहर खड़े हुए लोगोंको, पहले उनकी अन्दर-ही-अन्दर दबा दी गयीं सिसकियाँ भर किसी तरह सुनायी पड़ती थीं। हरिभाऊकी पीढ़ीमें वे सिसकियाँ बाहर निकल पड़ीं। उनकी कोठरियोंकी खिड़कियाँ धड़ाधड़ खोल दी गयीं। उनसे बाहर सुनायी पड़नेवाले करुण उद्गारों, और दर्द-भरी पुकारोंने बाहरके लोगोंको यह कल्पना करा दी, कि भीतर उनपर आजतक कितना जुल्म हो रहा था। शंकरराव^१ सरीखे समुद्रकी यंत्रणा और विधवापर लाद दी गयी बाल बन्वानेकी क्रूर रुढ़िकी बलि हुई 'पण लक्षांत कोण घेतो?'^२ उपन्यासकी यमुना, कायर और व्यसनी पतिके लिये जिसने अपना जीवन-पुष्प गिंजा डाला वह 'मायेचा बाजार'^३ की पद्मा, पुरुषकी भ्रमर-वृत्ति और समाजकी निर्दय नीतिकी कैचीमें फँसी हुई 'कर्मयोग' उपन्यासकी नायिका नर्मदा - इन सब स्त्रियोंके चित्रणमें करुण रसके सिवा और कुछ नहीं दीख पड़ता।

पर सन् १९१५ से लेकर १९३५ तकके २५ वर्षोंकी अवधिमें, महाराष्ट्रके

^१ शंकरराव : शंकर मामाजी : हरिभाऊ आपटेजीके 'पण लक्षांत कोण घेतो?' इस लोकप्रिय-उपन्यासका, दकियानूसी मतोंका पुरस्कार करनेवाला पात्र।

२ 'पर ध्यान कौन देता है?'

३ 'प्रीतिका बाजार।'

मध्यम वर्गमें स्त्री-शिक्षाका बड़े वेगसे प्रचार हुआ। पूनाकी अनाथ-बालिकाश्रम^१, कर्वे विद्यापीठ^२, सेवा-सदन^३ आदि संस्थाओंने शिक्षा और स्वावलंबनके द्वारा मध्यम वर्गकी स्त्रीको दासतासे मुक्त करनेका जो मार्ग दिखाया उसकी प्रतिध्वनियाँ जगह जगहपर परिणामकारी रीतिसे उमड़ी। कॉलेज जानेवाली लड़की पहलेकी तरह कोई कुतूहलकी चीज़ नहीं रह गयी। भद्र समाजकी लड़कियाँ बहुत संख्यामें पढ़ने लगीं, साइकिलपर सवार होकर शानसे घूमने लगीं, सभा-सम्मेलनोंमें दीठतासे भाषण देने लगीं—और तो और रूढ़िकी परवाह न करके, निर्भयतासे प्रणय-क्षेत्रमें भी उन्होंने नयी व्यक्ति-स्वतंत्रताकी पताका खड़ी कर दी। सहजमें ही पुरानी पीढ़ीके पुरुषोंकी तरह, उनकी भी आँखोंके आगे समाज-सेवाके आगे छोटे-बड़े ध्येय, धुंधले धुंधले रूपमें तैरने लगें। उस समय बीसकी उम्रके आसपासकी ऐसी तरुणी कहीं न मिलती जिसके मनमें कभी न कभी ऐसे विचार न उठे हो, कि हमें अपनी शिक्षाका सदुपयोग करना चाहिए, अपनी अनाथ और अशिक्षित बहनोके उद्धारके लिये प्राणपनसे चेष्टा करनी चाहिए, हमें इसलिये डॉक्टरनी नहीं बनना चाहिए कि किसी बड़े डॉक्टरसे विवाह करके कारमें मौज करती हुई घूमें, अथवा इस प्रकार किसी अन्य रीतिसे अपनी जिंदगी चैनमें बिताये बलिके दान-दुखियोंकी सेवा करना हमारा ध्येय होना चाहिए। यौवनकी सीमा-रेखापर खड़ी हुई इस लड़कीके, ऐतिहासिक दृष्टिसे, बातूनी, उतावली, स्वप्न देखनेवाली, व्यवहार-कुशल, भावना-प्रधान आदि भेद होंगे। तारुण्य-सुलभ स्वप्न देखनेकी वृत्ति, और ध्येयोंके अदृश्य खिंचावसे आत्माको प्राप्त होनेवाली जागृति इन दोनोंमें जो अन्तर है, वह उनमेंसे बहुत थोड़ोंकी समझमें आया होगा। लेकिन इसमें ज़रा भी शक नहीं, कि उनके जीवनमें प्रीति और क्रान्तिकी कल्पनाएँ, दोनों एक दूसरेके हाथमें हाथ डाले ही प्रवेश करने लगी थीं।

१ **अनाथ बालिकाश्रम** : विधवाओंकी शिक्षाके लिये महर्षि धोंडो केशव कर्वेजीने ई. सन् १८९६ में पूनामें स्थापन किया आश्रम।

२ **कर्वे विद्यापीठ** : स्त्रियोंकी शिक्षा स्वतंत्र रीतिसे और उनके विकासको अधिक उपयुक्त हो इस पद्धतिसे देनेके लिये महर्षि कर्वेजीने पूनामें स्थापन किया विद्यापीठ।

३ **सेवा-सदन** : हर तरहकी गोरगरीब स्त्रियोंकी शिक्षाके लिये, एक थोर समाज-सेवक गोपाल कृष्ण देवधरजीने पूनामें स्थापन की हुई संस्था।

‘उल्का’ और ‘दोन ध्रुव’ उपन्यासोंको लिखते हुए इस प्रकारकी एक ध्येय-वादी लड़कीका चित्रण करनेकी इच्छा मेरे मनमें प्रचल हुई। इस तरहकी तरुणी सन् १९३५ में केवल कल्पनासृष्टिमें ही नहीं देखनी पड़ती थी। मेरे आसपास भी यह स्त्री प्रत्यक्ष रूपसे विचरण कर रही थी। इसकी परवाह न करके कि माँ-बाप क्या सोचेंगे अथवा लोग क्या कहेंगे, हम वही करना चाहिए जो हमारी विवेकबुद्धिको जेचे ओर हमारे अन्तःकरणकी प्रवृत्ति हमें जिम ओर ले जाये वहीं हमें जाना चाहिए, ऐसी श्रद्धा रखनेवाली मेरी एक बुद्धिमान विद्यार्थिनी रह-रहकर मुझे याद आने लगी। दुर्भाग्यसे उसका असमय ही देहान्त हो गया था। अपनी कल्पनासे सिर्फ एक ही क्रीड़ा करनेके विचारसे, मैं मन-ही-मन यह चित्र खींचने लगा, कि उसके ध्येयवादी मनका आगे चलकर किस तरह विकास होता और अपना ध्येय प्राप्त करनेके लिये उसे कौनसे छोटे-बड़े संघर्ष करने पड़ते। इस काल्पनिक क्रीड़ा और सन् १९३४-३५ सालकी सामाजिक परिस्थिति—दोनोंके संगमसे ही इस उपन्यासकी नायिका—सुलभा निर्मित हुई है।

सुलभाके पहलेकी मेरी सारी नायिकाएँ पिंजड़ेमें कैद कर रखे हुए पक्षियोंकी तरह थीं। निर्दय रूढ़ि, क्रूर दारिद्र्य, पद पदपर मनुष्यमें दिवायी देनेवाली आत्माकी बधिरता, अंधे समाजपुरुषकी मूर्खतापूर्ण परंपरा-प्रियता इत्यादि फौलादी सीकचोंसे बना हुआ यह पिंजड़ा था। अपनी सुकुमार चोंच बार बार पटककर, उस सीकचको तोड़ डालनेका, या कम-से कम नया देनेका प्रयत्न करनेके सिवा, पिंजड़ेके उन अभागे पक्षियोंके लिये और कुछ करना संभव ही न था। उनकी रक्तर्जित चोंचें, पंखोंकी फड़फड़ाहटसे पद पदपर व्यक्त होनेवाली उनकी स्वातंत्र्यलालसा, सीकचोंपर बार बार पंख पटकनेके कारण इतस्ततः झड़कर गिरे हुए पंख, इत्यादि बातें उस उपन्यासके चित्रणमें थीं। परंतु इस तरहके पिंजड़ेके द्वार खुलते ही भीतरके पक्षी जो आनंद-भरी हलचल करेंगे, जिस तरह अधूरी स्वप्निल (स्वप्न देखनेवाली) दृष्टिसे पिंजड़ेके बाहरके ऊँचे वृक्षोंकी चोटियोंकी ओर, और दूरतक फैले हुए नील आकाशकी ओर देखेंगे, उनका चित्रण मेरे पहलेके चारों उपन्यासोंमें, कहीं भी नहीं हुआ था। ‘सुलभा’के रूपसे मैंने वह प्रयत्न करके देखा। इस बातपर विश्वास रखनेवाली, कि प्रीति क्रान्तिकी बैरिन नहीं, वह उसकी मित्र है, जो नयी तरुणी महाराष्ट्रमें पैदा होने लगी थी, उसके मानसिक, पारिवारिक और सामाजिक संघर्षका चित्र सन् १९३५

ईसवीकी पार्श्व-भूमिपर चित्रित करना भी, इस उपन्यासको लिखते समय, मेरा मुख्य उद्देश्य था।

मुझे यह स्वीकार करना ही होगा कि इस चित्रको रंगते समय मध्यम वर्गके विषयमें, मेरे मनमें उतनी अश्रद्धा न थी, जितनी आज है। उस समय मुझे लगता था, कि मध्यम वर्ग बड़ा चतुर और बुद्धिमान वर्ग है। वह अंधतासे भले ही क्रान्तिकारी न हों सके, पर इस वर्गकी महात्मता जब जब उत्कट ध्येयसे प्रेरित होनी है, तब तब वह सहजमें क्रान्तिका नेतृत्व कर सकता है। हर तरहकी सामाजिक विषमताके विरुद्ध महाराष्ट्रमें आजतक जो संग्राम हुए, उनमें मध्यम वर्ग ही अग्रसर रहा है। केवल पंडितोंकी ही समझमें आ सकनेवाली संस्कृत भाषाका जुआ फेरकर समाजकी समझमें आ जानेवाली प्राकृत भाषामें अपने काव्य और तत्त्वज्ञानका भांडार हँसते हँसते प्रकट करनेवाले प्रतिभाशाली ज्ञानदेव^१; चित्पावली धूपमें गोदावरीके रेतीले किनारेपर प्याससे व्याकुल होकर खड़ी हुई अछूतकी लड़कीको देखकर, ब्राह्मणकी पवित्रताके कृत्रिम पाशोंको क्षणार्धमें तोड़कर वास्तव्यसे उसे अपने हृदयसे लगाकर पानी पिलानेवाला भावुक एकनाथ^२; यह विश्वास होते ही कि निर्धृग रुढ़ियोंसे घिरे हुए कारागारमें सभाजका शरीर सड़ रहा है, उसकी आत्माको मुर्चा लग गया है, उस कारागारकी दीवारोंको ज़मीनदोस्त करनेके लिये लेखनीको तलवार बनानेवाले तत्त्वनिष्ठ आगरकर^३; यह देखकर कि मध्यम वर्ग यह भूल गया है, कि दासताकी घी-शक्करकी अपेक्षा नमक रोटी ही राष्ट्रकी उन्नति कर सकती है, उस दासताकी शृंगला तोड़नेके लिये हथेलीपर जान लिये जीवन-भर जूझनेवाले शूर लोकमान्य तिलक—महाराष्ट्रके मध्यम वर्गकी इस उज्ज्वल परम्पराको देखकर, मुझे बारह वर्ष पहले उसके विषयमें बहुत बड़ी आशा बंध रही थी। उस समय मेरी यह श्रद्धा थी कि भविष्यमें राजकीय क्रान्तिकी तरह सामाजिक क्रान्तिका भी नेतृत्व यह वर्ग सफलतापूर्वक कर सकेगा। अपने देशकी पिछले छः वर्षोंकी अनेक घटनाओंने, और इस अवधिमें मुझे जो विविध अनुभव हुए उन्होंने, मेरी इस श्रद्धाको डोँवाडौल कर दिया है। मुझे यह विश्वास हो गया है, कि

१. ज्ञानेश्वरीके लेखक।

२. महाराष्ट्रके एक संत।

३. महाराष्ट्रके पहले समाज-सुधारक।

सामाजिक क्रांतिके बारेमें, मध्यम वर्गका कर्तृत्व बहुत सीमित हो गया है। आज-कल मुझे बड़ी तीव्रतासे यह महसूस हो रहा है कि इन सीमाओंमेंकी कुछ अपरिहार्य हैं, और बहुत-सी अनुल्लंघनीय हैं। परंतु मध्यम वर्गकी अश्रद्धाका उम समय जिस तरह व्यक्तिशः मुझे कोई भान न था, उसी प्रकार सामाजिक मनमें भी उसका प्रतिबिम्ब दिखायी नहीं देता था। मैं स्वीकार करता हूँ, कि अपने वर्तमान सामाजिक अनुभवोंकी कसौटीपर कसनेसे सुलभाका चित्रण अधिक कल्पना-रम्य (Romantic) लग सकता है। उसका कारण एक ही है। मेरे भीतरका 'मैं' बारह वर्ष पूर्व अधिक स्वप्निल था।

इसका अर्थ यह बिलकुल नहीं है, कि कम्प्यूनिस्टोंकी मध्यम वर्गके विषयकी सारी कल्पनाएँ मुझे स्वीकार हैं कि सामाजिक क्रांतिकी अन्तिम सीमातक पहुँचनेकी शक्ति इस वर्गमें पैदा न हो। पददलित वर्गका श्रोम ही सच्ची क्रान्तिके दावानलको जला सकनेवाली चिनगारी हो सकता है। लेकिन ऐसी क्रान्तिके अवतारके लिये जो साधना करनी पड़ती है, वह मध्यम वर्गके द्राग होना ही अधिक संभव होता है। ऐसे व्यक्ति अपनी आत्मिक प्रेरणा (Spiritual impulse) के कारण, उस सीमाको जो उनके वर्गके लिये बनी रहती है, सहजमें पार कर लेते हैं। प्रभुताकी लालसासे प्रेरित हुआ उच्च वर्ग सदैव सत्ता और संपत्तिकी पूजामें निमग्न होनेके कारण, उसकी सामाजिक भावनाएँ बिलकुल मरी पड़ी हुई होती हैं। देवीके प्रसादके लिये नर-मुंड अर्पण करते समय क्या शाक्त पंथके उपासकोंको विवेकबुद्धिकी यह चुभन कभी लगी होगी, कि उसके हाथसे मनुष्य-हिंसा हो रही है? पैसा, प्रतिष्ठा और प्रभुताके असीम मोहके कारण, इन्सानियतको भूला हुआ समाजका ऊपरी तबका भी नीचेके तबकेके विषयमें, इसी तरह लापरवाह, बधिर बल्कि क्रूर हो सकता है। इसके विपरीत, जीवनके दैनिक दुःखोंसे बहुत त्रसित, और हर घड़ी कलेजेके टुकड़े टुकड़े कर देनेवाले अन्यायोंके कारण चिढ़ गया हुआ नीचेका वर्ग, अंधी भावनाओंका, और उसमेंसे पैदा होनेवाली बदला लेनेकी भावनाका शिकार होकर, क्रांतिका कल्पना-चित्र खींचता रहता है।

मध्यम वर्गके उन चुने हुए विशेष व्यक्तियोंमें ही, जिनकी आध्यात्मिक भूख प्रबल होती जाती है, क्रान्तिके लिये पोषक बुद्धि और भावनाका मेल दिखाई दे सकता है। केवल वर्गकलहके तत्त्वज्ञानसे इस आत्मिक प्रेरणा (Spiritual

impulse) पर पूरा प्रकाश पड़े यह संभव नहीं। ड्रिक्वॉटर^१ के 'अब्राहम लिंकन' नामक नाटकके आरंभकी नीचे लिखी पंक्तियोंमें मानवी हृदयकी इस अलौकिक शक्तिका मार्मिक वर्णन हुआ है। वे पंक्तियाँ ये हैं —

This is the wonder, always, everywhere,
Not that vast mutability, which is event,
The pits and pinnacles of change,
But man's desire and valiance that range,
All circumstance, and come to port unspent.

मानव-धर्मकी यह पुकार कुछ समयके पहलेके मध्यम वर्गकी एक सुशिक्षित तरुणीको किस तरह सुनाई पड़ी, इसका चित्रण इस उपन्यासमें है। ऐसा मुझे हमेशा ही लगता आया है, कि सामान्य पुरुष जिस तरह गगनचुंबी शिखरपर घर बनाकर नहीं रह सकता, उसी प्रकार जीवनका चित्रण करनेवाला उपन्यास असामान्यका चित्रण करके अपना कार्य पूरा नहीं कर सकता। सामान्यमेंसे असामान्यत्व निकालकर, उसे चित्रित करना ललित-साहित्यका प्रधान कार्य है। उस दृष्टिसे पाठक सुलभाकी ओर देखे। यदि चालू पीढ़ीके वाचकोंको यह लगा, कि सुलभा बारह वर्ष पहलेकी सुशिक्षित तरुणीकी प्रतिनिधि है, व्यवहार और ध्येयवाद, तरल प्रीति और उत्कट भक्ति, आत्म-प्रेम और मानवता धर्म, इत्यादि धागोंसे उसका जीवन पट बुना गया है, तो मैं समझूँगा कि मेरा काम हो गया। फिर इस उपन्यासमें उन्हें समाजवाद दिखे अथवा न दिखे और अगर किसीको दिखा तो वह शास्त्रसंगत हो अथवा न हो!

कोल्हापुर }
६-७-१९४७ }

वि. स. खांडेकर

^१ ड्रिक्वॉटर : एक मशहूर अंग्रेज़

नाटककार और साहित्यिक ।

देशमुख आणि कंपनोका

हिन्दी साहित्य

वि. स. खांडेकर

उपन्यास

- १ आँसू
- २ सूना मविग
- ३ दो ध्रुव
- ४ उल्का
- ५ कौचवध
- ६ पहला रे.म
- ७ झुलसी मंजरी
- ८ दो मन
- ९ सपहले बादल
- १० ययाति